प्रकाशक—
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (म. प्र.)

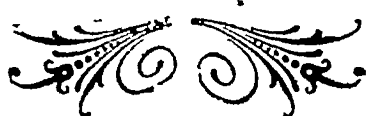


मूल्य दो रुपया

तृतीयावृत्ति २०००

वीर संवत् २४८६

जैन तत्त्वज्ञान का मौलिक सूत्र



हमारे अनेक बन्धु कहा करते है कि हमारे समाज में जैन तत्त्व ज्ञान का प्रकाशक, ऐसा एक भी स्वतन्त्र सूत्र नहीं है कि जिससे एक ही पुस्तक से जैन धर्म के उद्देश्य और उपदेश को सरलता से जान सकें। साधारण लोग विशाल आगमों के अभ्यासी नहीं होते। उनके लिये तो एक ही पुस्तक ऐसी हो कि जिसमें धर्म के मुख्य मुख्य विषयों का संकलन किया गया हो। अजैन सम्प्रदायों में गीता, बाइबल, कुरान आदि स्वतन्त्र शास्त्र है, वैसे जैन समाज में नहीं है। इस प्रकार की शिकायत जब सुनते है, तब यही विचार होता है कि शिकायती बन्धुओं को जैन साहित्य का विशेष पता नहीं है, इसीसे ऐसी शिकायत करते है। जैन साहित्य में श्री उमास्वाति रचित "तत्त्वार्थ सूत्र", स्व० पूज्यश्री अमोलकऋषिजी महाराज साहब का "जैनतत्त्व प्रकाश," पूज्यश्री आत्मारामजी महाराज साहव सम्पादित "जैन तत्वकलिकाविकास" +ऐसे ग्रन्थ है, जो आगमों में से तात्विक वस्तुओं का संकलन कर सम्पादित किये गये है। इनसे तात्विक जानकारी अच्छी मिल सकती है। यह तो हुई सम्पादित ग्रन्थों की बात, किन्तु जिनागमों में एक "उत्तराध्ययन" नामका मूल आगम सूत्र ऐसा है कि जिसमें समस्त तत्त्वज्ञान भरा

+ तथा संघ से प्रकाशित "मोक्ष मार्ग"।

हुआ है। यदि इस एक ही सूत्र की अनुप्रेक्षा पूर्वक स्वाध्याय की जाय, तो पाठकों को अतीव आनन्द के साथ तात्विक ज्ञान मिल सकता है। श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र, विविध तत्त्व ज्ञान का सरल प्रतिपादक और वैराग्य भावना का प्रेरक है। पाठको को इस जिनागम के अध्ययनों का सक्षिप्त परिचय कराया जाता है:–

१. विनयश्रुत नामक प्रथम अध्ययन में आत्मार्थी के लिये सर्व प्रथम कर्त्तव्यरूप विनयधर्म का उपदेश किया गया है। इस एक ही तत्त्व का दृढता से पालन करने वाले, सर्व सयोगों से मुक्त साधक के नियमों और कर्त्तव्यों की विस्तृत विधि बताकर पूरी साधना–एक विनयधर्म में ही समावेश की गई है। पृ० १ से १३

२ परीषहाध्ययन में उन "सजोगा विप्पमुक्कस्स' अनगारों के सयमी जीवन में आने वाली बाधाओ–परीषहों की जानकारी कराकर ध्येय पर दृढ रहने की शिक्षा दी गई है। पृ० १३–२५

३ दुर्लभ तत्त्व, कर्म की विचित्रता, एव जन्म मरण के कारण बताकर धर्म पालन करने का उपदेश दिया गया है। पृ० २६–३०

४. जीवन की क्षणभगुरता, गया समय फिर नहीं आता, पाप-कर्म करने वाले को ही भुगतना पडता है, धन और परिवार, पाप फल से छुडा नहीं सकते, आदि उपदेश। पृ० ३१–३४

५ मृत्यु बिगडने और सुधरने के कारण। मृत्यु–परलोक सुधारने के लिये जीवन सुधारने का उपदेश। पृ० ३५–४२

६ अज्ञान और अनाचार को त्यागकर सम्यग्ज्ञान और शुद्धा-चार पालने का उपदेश। पृ० ४२–४६

७ बकरे के और मूलधन गँवा देनेवाले व्यापारी के उदाहरण से, अधर्मी और काम भोग में आसक्त जीवों की होनेवाली दुर्दशा का दिग्–

इस प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र का प्रत्येक अध्ययन बड़ा ही महत्व पूर्ण और तत्वज्ञान का खजाना है । मुमुक्षुओ की धर्म भावना को बढाने वाला और आत्मा को पवित्र करने वाला है । अट्ठाइसवें "मोक्ष मार्ग" नामक अध्ययन की ३६ गाथाओं में तो विश्वभर का तत्वज्ञान भर दिया गया है । "सम्यक्त्व पराक्रम" संज्ञक २९ वें अध्ययन में आत्मा को पवित्र बनानें वाले प्रश्नोत्तर बहुमूल्य वस्तु है । कहा तक बतावे, प्रत्येक अध्ययन भव्यात्माओं के लिये महान् उपकारी है । स्वय त्रिलोक पूज्य भ० महावीर प्रभु नें, निर्वाण प्राप्त करते समय हमारे जैसे पञ्चम काल के दुर्बोध प्राणियों के हित के लिये, बिना किसी के पूछे, इस सूत्र का उपदेश किया । इसके नामसे ही इसकी विशिष्टता ज्ञात होती है । उत्तराध्ययन अर्थात्–अध्ययन करनें योग्य उत्तमोत्तम प्रकरणो का संग्रह । निर्युक्तिकार तो यहा तक कहते है कि जो भवसिद्धिक और परिमित ससारी जीव है, वे ही उत्तराध्ययन की भावपूर्वक स्वाध्याय करते हैं । जैसे कि–

जे किर भवसिद्धिया, परित्तसंसारिआ य भविआ य ।
जे किर पढंति धीरा, छत्तीसं उत्तरज्झयणे ॥१॥
जे हुंति अभवसिद्धिया, गंथीअसत्ता अणंतसंसारा ।
ते संकिलिट्ठकम्मा, अभविय उत्तरज्झयणे ॥२॥
तम्हा जिणपण्णत्ते, अणंतगमपज्जवेहि संजुत्ते ।
अज्झाए जहाजोगं, गुरुपसाया अहिज्झिज्जा ॥३॥

अर्थात्–जो भवसिद्धिक जीव शीघ्र मुक्ति पाने के योग्य हैं, जिनका ससार भ्रमण बहुत ही थोडा रह गया है, ऐसे भव्यात्मा ही श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययनों को भाव पूर्वक पढते हैं। और जो अभवसिद्धिक, ग्रथिसत्त्व तथा अनन्त ससारी जीव हैं वे अत्यन्त क्लिष्ट अशुभ कर्मों के उदय से उत्तराध्ययन सूत्र का अध्ययन करने में अयोग्य हैं। इसलिये जिनेन्द्र प्रणीत शब्द तथा अर्थ के अनन्त पर्यायवाले इस उत्तराध्ययन के अध्ययनों को विधि सहित उपधानादि तप पूर्वक गुरुजनों की प्रसन्नता के साथ पढना चाहिये।

यह कथन सर्वथा सत्य है। हलुकर्मी जीवों को ही आत्मोद्धारक सम्यग् श्रुत की रुचि एवम् भावपूर्वक स्वाध्याय मिलता है। प्रत्येक धर्म प्रेमी को सदैव इस सूत्र का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। अधिक नहीं बन सके तो कम से कम एक अध्ययन का स्वाध्याय तो सामायिक के साथ करना ही चाहिये।



* अस्वाध्याय *

निम्न लिखित चौंतीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	कालमर्यादा
१ बड़ा तारा टूटे तो	एक प्रहर
२ उदय अस्त के समय लालदिशा . .	जबतक रहे
३ अकाल में मेघ गर्जना हो तो	दो प्रहर
४ ,, बिजली चमके तो	एक प्रहर
५ ,, बिजली कडके तो...... . .	दो प्रहर
६ शुक्ल पक्ष की १-२-३ की रात	प्रहर रात्रि तक
७ आकाश में यक्ष का चिन्ह हो.	जब तक दिखाई दे।
८-९ काली और सफेद धूअर. .. .	जब तक रहें
१० आकाश मण्डल धूलि से आच्छादित हो .	,,

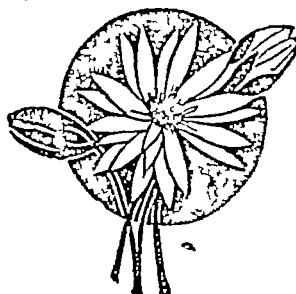
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३ हड्डी, रक्त और मास, ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो तो १२ वर्ष तक।

१४	अशुचि की दुर्गन्ध आवे या दिखाई दे	तब तक
१५	श्मशान भूमि-.	सौ हाथ से कम दूर हो तो
१६	चन्द्रग्रहण-खण्ड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर।	
१७	सूर्य ग्रहण ,, १२ ,, १६ ,,	
१८	राजा का अवसान होने पर।	जब तक नया राजा घोषित न हो।
१९	युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले।
२०	उपाश्रय में पचेन्द्रिय का शव पडा हो।	जब तक पडा रहे।
२१-२५	आषाढ, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, और चैत्र की पूर्णिमा।	दिन रात
२६-३०	इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा।	,,
३१-३४	प्रात, मध्यान्ह, सध्या और अर्द्धरात्रि।	१-१ मुहूर्त।

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुँह नही बोलना तथा दीपक के उजाले मे नही बाचना चाहिए।

नोट—मेघ गर्जनादि में अकाल, आर्द्रा नक्षत्र से पूर्व और स्वाति से बाद का माना गया है।



यह तीसरी आवृत्ति

श्री उत्तराध्ययन सूत्र की यह तीसरी आवृत्ति है। पहली आवृत्ति श्रमणोपासक जैन पुस्तकालय सैलाना से प्रकाशित हुई थी। उसके बाद दूसरी आवृत्ति सघ की ओर से प्रकाशित हुई थी। यह भी थोडे ही समय में निकल गई, और इसकी माँग बनी ही रही। हमारा विचार पुनरावृत्ति करने के बनिस्वत नये सूत्र प्रकाशित करने का था, किन्तु उत्तराध्ययन की विशेष माँग रहने के कारण तीसरी आवृत्ति छपवानी पडी। इस आवृत्ति में शुद्धि का विशेष ध्यान रखा गया, साथ ही अर्थ के शब्दो में भी थोडा परिवर्त्तन कर सरलता लाई गई। इस बार कागज भी २८ पौंड का काम में लिया गया है। पूर्वापेक्षा कलेवर में कुछ पृष्ठों की वृद्धि हो गई है। कव्हर भी पहले के बनिवस्त अच्छा लगाया है।

सघ के प्रकाशन, स्वाध्याय प्रिय धर्मबन्धुओ और बहिनों को रुचिकर और प्रिय लगे। इसका कारण भी है। सघ सरल अनुवाद सहित मूल आगमो और तदनुकूल धर्म साहित्य ही प्रकाशित करता है। सघ की ओर से प्रकाशित 'मोक्षमार्ग' ग्रन्थ का जिस धर्म-प्रेमी ने अवलोकन किया, वही मुग्ध हुआ। इसकी सामग्री बहुत ही उपयोगी रही। यह एक ही ग्रन्थ, धर्म के स्वरूप एव विधि विधानो की जानकारी देने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

साधुमार्गी जैन सस्कृति रक्षक सघ का उद्देश्य सम्यग्ज्ञान के प्रचार द्वारा धर्म सस्कारों को जगाना, बढाना और रक्षण करना है।

संघ की ओर से प्रकाशित सूयगडाग, दशवैकालिक, और अतगड़सूत्र भी सिलक में नहीं है। इनकी माग भी बहुत आ रही है। हमें इन का भी पुनर्मुद्रण करना है, किन्तु अभी हम उववाई सूत्र को प्राथमिकता दे

रहे है। इसके बाद भगवती सूत्र का मुद्रण प्रारम्भ करेंगे। हम थोड़े ही दिनों में ऐसी व्यवस्था करना चाहते हैं कि जिसमे नूतन प्रकाशन के साथ पूर्व प्रकाशित साहित्य की पुनरावृत्ति भी होती रहे अर्थात् दोनों काम साथ साथ चलते रहें।

समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ना आवश्यक है। इस ओर उपाध्याय पूज्य श्रीहस्तीमलजी महाराज सा आदि मुनिवर प्रयत्नशील हैं। स्वाध्याय के बल से मनुष्य, धर्म में स्थिर रहकर उन्नत होता है। इतना होते हुए भी स्वाध्याय के लिए धार्मिक साहित्य का चयन करने में सावधानी रखने की आवश्यकता है। स्वाध्याय में वही साहित्य उपयोगी होगा–जो मौलिक हो अथवा मौलिकता के आधार पर हो। संस्कृति रक्षक सघ ऐसे ही साहित्य का प्रकाशन करता है। अतएव ऐसे साहित्य का वांचन, मनन करके लाभ उठाना चाहिए।

समाज के दानवीरों से भी निवेदन है कि सम्यगज्ञान के प्रचार में सघ के सहायक बनकर जिनधर्म की प्रभावना करने में अपना योगदान करेंगे।

श्री अ. भा साधुमार्गी जैन
संस्कृति रक्षक सघ
सैलाना
मार्गशीर्ष शु ६ वीर स २४८९
विक्रम स २०१९
दिनाक ६-१२-१९६२

भवदीय–
मानकलाल पोरवाड एडवोकेट –अध्यक्ष
शरबतचद भडारी उपाध्यक्ष
चम्पालाल कोठारी "
सम्पतराज घाडीवाल "
रतनलाल डोशी प्रधान मन्त्री
बाबूलाल पोरवाड मन्त्री
घेवरचद बाठिया "
जशवतलाल शाह "

॥ नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

श्री उत्तराध्ययन-सूत्रम्

: विणयसुयं पढमं अज्झयणं :–

–:x:–

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥१॥

हे शिष्य ! मै उन साधुओ के विनय धर्म को प्रकट करता हूं. जो वाह्य और आभ्यन्तर सयोग से रहित है । जिन्होने घरवार तथा आरम्भ परिग्रह का त्याग कर दिया और जो भिक्षा से ही निर्वाह करते है । तुम अनुक्रम से सुनो ॥१॥

आणाणिद्देसकरे गुरुणमुववायकारए ।
इंगियागारसंपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चइ ॥२॥

वही विनीत कहलाता है–जो गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला हो, गुरु के निकट रहता हो, और गुरु के इगित तथा आकार से मनोभाव जानकर कार्य करने वाला हो ॥२॥

आणाऽणिद्देसकरे गुरूणमणुववायकारए ।
पडिणीए असंबुद्धे, अविणीए त्ति वुच्चइ ॥३॥

गुरु की आज्ञा नही मानने वाला, गुरु के समीप नही रहने वाला, उनके प्रतिकूल कार्य करने वाला तथा तत्त्वज्ञान मे रहित शिष्य, अविनीत कहलाता है ॥३॥

जहा सुणी पूइकण्णी, णिक्कसिज्जइ सव्वसो ।
एवं दुस्सीलपडिणीए, मुहरी णिक्कसिज्जइ ॥४॥

जिस प्रकार सडे कानवाली कुतिया सब जगह से निकाली जाती है, उसी प्रकार दुष्ट स्वभाव वाला और गुरु-जनो से विपरीत आचरण करने वाला वाचाल साधु भी सभी जगह से निकाला जाता है ॥४॥

कणकुंडगं चइत्ताणं, विट्ठं भुंजइ, सूयरो ।
एवं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमई मिए ॥५॥

जिस प्रकार सूअर, चावल के पात्र को छोडकर विष्ठा खाना पसन्द करता है, उसी प्रकार अज्ञानी साधु भी सदाचार को छोडकर दुराचार मे लग जाता है ॥५॥

सुणिया भावं साणस्स, सूयरस्स णरस्स य ।
विणए ठविज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हियमप्पणो ॥६॥

कुतिया और सूअर के साथ अविनयी मनुष्य की समानता के उदाहरण को सुनकर, अपना हित चाहने वाला शिष्य, आत्मा को विनय मे स्थापित करे ॥६॥

तम्हा विणयमेसिज्जा, सीलं पडिलभेज्जओ ।
बुद्धपुत्त णियागट्ठी, ण णिक्कसिज्जइ कण्हुइ ॥७॥

इसलिये विनय का आचरण करना चाहिये, जिससे सदाचार की प्राप्ति हो। ऐसा मोक्षार्थी और आचार्य-पुत्र (शिष्य) किसी भी स्थान से नही निकाला जाता ॥७॥

खिसन्ते सियाऽमुहरी, बुद्धाणं अन्तिए सया ।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, णिरट्ठाणि उ वज्जए ॥८॥

सदैव शान्ति रक्खे, वाचालता का त्याग करे और ज्ञानियो के समीप रह कर मोक्षार्थ वाले आगमो को सीखे तथा निरर्थक-लौकिक विद्या का त्याग करे ॥८॥

अणुसासिओ ण कुप्पिज्जा, खंतिं सेविज्ज पंडिए ।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं य वज्जए ॥९॥

कभी गुरु कठोर वचनो से शिक्षा दे, तो भी बुद्धिमान् शिष्य, क्रोध नही करके क्षमा ही धारण करे। क्षुद्र और अज्ञानी जनो की सगति नही करे तथा हास्य और क्रीड़ा का सर्वथा त्याग कर दे ॥९॥

मा य चंडालियं कासी, बहुयं मा य आलवे ।
कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगओ ॥१०॥

क्रोधादि के वश हो असत्य नही बोले, अधिक भी नहीं बोले, यथा समय शास्त्रो का अध्ययन करके एकान्त में चिन्तन मनन करे ॥१०॥

आहच्च चंडालियं कट्टु, ण णिण्हविज्ज कयाइ वि ।
कडं कडे त्ति भासिज्जा, अकडं णो कडे त्ति य ॥११॥

यदि क्रोधादिवश कभी असत्य वचन निकल जाय, तो उसे छिपावे नही, किन्तु किये हुए को किया और नही किये को नही किया, इस प्रकार सत्य कहदे ॥११॥

मा गलियस्सेव कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो ।
कसं वा दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए ॥१२॥

जिस प्रकार अडियल घोडा बार-बार चाबुक की मार खाता है, उसी प्रकार विनीत शिष्य को चाहिये कि गुरु को हर समय कहने का अवसर नही दे । विनीत घोडा चाबुक को देखकर ही उन्मार्ग को त्याग देता है, उसी प्रकार विनीत शिष्य को सकेत मात्र से गुरु के मन के अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिए और पाप का त्याग कर देना चाहिए ॥१२॥

अणासवा थूलवया कुसीला, मिउंपि चंडं पकरंति सीसा ।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयंपि ।१३।

गुरु की आज्ञा को नही मानने वाले, कठोर वचन बोलने वाले, दुष्ट तथा अविनीत शिष्य, शान्त स्वभाव वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते है । और गुरु की मनोवृत्ति के अनुसार चलने वाले, गुरु आज्ञा का शीघ्र पालन करने वाले विनीत शिष्य, निश्चय ही उग्र स्वभावी गुरु को भी शान्त कर देते है ॥१३॥

नापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए ।
कोहं असच्चं कुव्विज्जा, धारिज्ज पियमप्पियं ॥१४॥

विनीत शिष्य, बिना पूछे कुछ भी नही बोले और पूछने पर असत्य नही बोले । यदि कभी क्रोध उत्पन्न हो जाय तो उसे निष्फल करदे । गुरु के वचन अप्रिय भी लगे, तो उन्हे हितकारी प्रिय समझ कर धारण करे ॥ १४ ॥

अप्पा-चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ॥१५॥

विपरीत जाने वाले मन का ही दमन करे, क्योकि आत्म दमन बडा कठिन है । आत्म दमन करने वाला इस लोक मे और परलोक मे सुखी होता है ॥ १५ ॥

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहि वहेहि य ॥१६॥

परवश होकर दूसरो से वध और बन्धनो द्वारा दमन किये जाने की अपेक्षा, अपनी इच्छा से ही सयम और तप से आत्म दमन करना श्रेष्ठ है ॥१६॥

पडिणीयं य बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा ।
आवी वा जइ वा रहस्से, णेव कुज्जा कयाइ वि ॥१७॥

दूसरो के सामने अथवा एकान्त मे अपने वचन या कर्म से कभी भी गुरु (ज्ञानियो) के विपरीत आचरण नही करे ॥१७॥

ण पक्खओ ण पुरओ, णेव किच्चाण पिट्ठओ ।
ण जुंजे उरुणा उरुं, सयणे ण पडिस्सुणे ॥१८॥

आचार्य से कन्धा भिड़ाकर बराबर नही बैठे, उनके आगे भी नही बैठे ओर पीछे भी अविनीतता से नही बैठे। इतना भी निकट नही बैठे कि अपने घुटने से उनके घुटने का स्पर्श हो जाय, तथा शय्या पर सोते या बैठे हुए ही उनके वचनो को नही सुने ॥१८॥

णेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिंडं च संजए।
पाए पसारिए वावि, ण चिट्ठे गुरुणंतिए ॥१६॥

गुरु के समक्ष पाव पर पाव चढाकर नही बैठे, घुटने छाती के लगाकर भी नही बैठे और न पांव फैलाकर ही बैठे ॥१९॥

आयरिएहिं वाहितो, तुसिणीओ ण कयाइ वि।
पसायपेही णियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया ॥२०॥

यदि आचार्य बुलावे तो कभी चुपचाप नही बैठा रहे, किन्तु गुरु कृपा इच्छुक मोक्षार्थी साधु, हमेशा उनके समीप विनय से उपस्थित होवे ॥२०॥

आलवंते लवंते वा, ण णिसीएज्ज कयाइ वि।
चइत्ता आसणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे ॥२१॥

गुरु महाराज एक वार अथवा वार-वार बुलावे, तो कभी बैठा नही रहे, किन्तु धीरजवान् साधु, आसन छोडकर यतना पूर्वक सावधानी से गुरु के वचनो को सुने ॥२१॥

आसणगओ ण पुच्छिज्जा, णेव सिज्जागओ कया।
आगम्मुक्कुडुओ संतो, पुच्छिज्जा पंजलीउडो ॥२२॥

यदि गुरु महाराज को कुछ पूछना हो, तो आसन पर बैठे या शय्या पर रहे हुए नही पूछे, किन्तु गुरु के समीप आकर, उकडू आसन से बैठ कर और हाथ जोडकर विनय पूर्वक पूछे ॥२२॥

एवं विणयजुत्तस्स, सुयं अत्थं च तदुभयं।
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुयं ॥२३॥

गुरु को चाहिये कि ऐसे विनयी शिष्य के पूछने पर सूत्र अर्थ और सूत्रार्थ दोनो—जैसा अपने गुरु से सुना हो उसी प्रकार कहे ॥२३॥

मुसं परिहरे भिक्खू, ण य ओहारिणीं वए।
भासा दोसं परिहरे, मायं य वज्जए सया ॥२४॥

साधु को चाहिए कि वह असत्य वचन का सदा और सर्व प्रकार से त्याग करे। निश्चय कारिणी भाषा नही बोले। भाषा के दोषो को त्यागे और माया तथा क्रोधादि का त्याग करे ॥२४॥

ण लविज्ज पुट्ठो सावज्जं, ण णिरट्ठं ण मम्मयं।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्संतरेण वा ॥२५॥

यदि कोई पूछे तो अपने, दूसरे अथवा दोनो के लिए सप्रयोजन या निष्प्रयोजन सावद्य वचन नही बोले, निरर्थक वचन नही बोले और मर्मभेदी वचन भी नही कहे ॥२५॥

समरेसु अगारेसु, संधीसु य महापहे।
एगो एगित्थिए सद्धिं, णेव चिट्ठे ण संलवे ॥२६॥

लोहार की शाला में, शून्य घर में, दो घरो के बीच की गली में और राज-मार्ग में, अकेला साधु, अकेली स्त्री के साथ न तो खड़ा रहे और न बातचीत ही करे ॥२६॥

जं मे बुद्धाणुसासंति, सीएण फरुसेण वा ।
मम लाभुत्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे ॥२७॥

गुरुजन जो मुझे कोमल अथवा कठोर वचनो से शिक्षा देते है—इसमें मेरा ही लाभ है । इस प्रकार सोचकर सावधानी पूर्वक शिक्षा ग्रहण करे ॥२७॥

अणुसासणमोवायं दुक्कडस्स य चोयणं ।
हियं त मण्णए पण्णो, वेस्सं होइ असाहुणो ॥२८॥

गुरुजनो की शिक्षा, पापो का नाश करने वाली होती है । वुद्धिमान उसे हितकारी मानते है, किन्तु असाधु के लिये वही शिक्षा द्वेष का कारण हो जाती है ॥२८॥

हियं विगयभया बुद्धा, फरुसं पि अणुसासणं ।
वेस्सं तं होइ मूढाणं, खंतिसोहिकरं पयं ॥२९॥

निर्भय और तत्त्ववेत्ता शिष्य, गुरुजनो के कठोर शासन को भी हितकारी मानते है । किन्तु ऐसे क्षान्ति और आत्मशुद्धि करने वाले पद को भी मूर्ख लोग, द्वेष का कारण बना लेते है ॥२९॥

आसणे उवचिट्ठेज्जा, अणुच्चेऽकुक्कुए थिरे ।
अप्पुट्ठाई णिरुट्ठाई, णिसीएज्जऽप्पकुक्कुए ॥३०॥

ऐसे आसन पर बैठे जो गुरु से ऊँचा नही हो और स्थिर हो । बिना प्रयोजन उठे भी नही, और प्रयोजन होने पर भी बार-बार नही उठे ॥३०॥

कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे ।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥३१॥

साधु, समय पर भिक्षादि के लिए जावे और समय पर ही वापिस लौट आवे और अकाल को छोडकर नियत समय पर ही उस काल की क्रिया करे ॥३१॥

परिवाडीए ण चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसणं चरे ।
पडिरूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए ॥३२॥

जहाँ जीमणवार होता हो, वहाँ खडा भी नही रहे, किन्तु भिन्न-भिन्न घरों से दिया हुआ शुद्ध आहार ग्रहण करके उचित समय पर, परिमित भोजन करे ॥३२॥

णाइदूरमणासण्णे, णण्णेसिं चक्खुफासओ ।
एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा, लंघित्ता तं णाइक्कमे ॥३३॥

गृहस्थ के घर अन्य याचक खडे हो, तो उन्हे लाँघकर नही जावे । ऐसी जगह समभाव से खडा रहे, जो न अति दूर हो, न अति निकट हो और दाता व याचक की दृष्टि भी नही पड़ती हो ॥३३॥

णाइउच्चे व णीए वा, णासण्णे णाइदूरओ ।
फासुयं परकडं पिंडं, पडिगाहिज्ज संजए ॥३४॥

दाता से अति ऊँचे, नीचे, अति दूर या अति निकट खड़ा रहकर भिक्षा नही लेवे, किन्तु उचित स्थान पर खडा रह कर गृहस्थ के लिये बनाया हुआ शुद्ध आहार ग्रहण करे ॥३४॥

अप्पपाणेऽप्पबीयम्मि, पडिच्छन्नम्मि संवुडे ।
समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं ॥३५॥

प्राणी और बीज रहित, ढके हुए और चारो ओर से घिरे हुए स्थान में, दूसरे साधुओ के साथ, नीचे नही गिराते हुए, यतना पूर्वक आहार करे ॥३५॥

सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिएणे सुहडे मडे ।
सुणिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी ॥३६॥

अच्छा बनाया, अच्छा पकाया, ठीक कतरा, शुद्ध किया, घृतादि खूब मिलाया, यह भोजन अति स्वादिष्ट है — इस प्रकार सावद्य वचन नही बोले ॥३६॥

रमए पंडिए सासं हयं भद्दं व वाहए ।
बालं सम्मइ सासंतो, गलिअस्सं व वाहए ॥३७॥

जैसे उत्तम घोडे का शिक्षक प्रसन्न होता है, वैसे ही विनीत शिष्यो को ज्ञान देने मे गुरु प्रसन्न होते है । किन्तु दुष्ट घोडे का शिक्षक और अविनीत शिष्य के गुरु, ये दोनो खेदित होते है ॥३७॥

खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे ।
कल्लाणमणुसासंतो, पावदिट्ठित्ति मन्नइ ॥३८॥

जो अविनीत और पाप दृष्टिवाला शिष्य होता है, वह हितकारी शिक्षा को भी बुरी, थप्पड रूप, गाली रूप और वध रूप मानता है ॥३८॥

पुत्तो मे भाय णाइत्ति, साहू कल्लाण मण्णइ ।
पावदिट्ठि उ अप्पाणं, सासं दासित्ति मण्णइ ॥३९॥

विनीत शिष्य, गुरु शिक्षा को हितकारी मानता है। वह सोचता है कि गुरु मुझे पुत्र, भाई और अपना ही समझते है। इससे उल्टा पाप बुद्धिवाला शिष्य, अपने को दास के समान मानता है ॥३९॥

ण कोवए आयरियं, अप्पाणं पि ण कोवए ।
बुद्धोवघाई ण सिया, ण सिया तोत्तगवेसए ॥४०॥

सुशिष्य स्वय क्रुद्ध नही होवे, आचार्य को कुपित नही करे, आचार्य का उपघात भी नही करे और उनके दोष भी नही खोजे ॥४०॥

आयरियं कुवियं णच्चा, पत्तिएणं पसायए ।
विज्झविज्ज पंजलिउडो, वएज्ज ण पुणोत्ति य ॥४१॥

आचार्य को कुपित जानकर विनय से और प्रतीति कारक वचनो से उन्हे प्रसन्न करे तथा हाथ जोड कर कहे कि 'अब कभी ऐसा अपराध नही करूँगा ॥४१॥

धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहिं आयरियं सया ।
तमायरंतो ववहारं, गरहं णाभिगच्छइ ॥४२॥

तत्वज्ञो ने सदा धार्मिक व्यवहार का सेवन किया है। उस धर्म व्यवहार का आचरण करने वाला कभी निन्दित नही होता ॥४२॥

मणोगयं वक्कगयं जाणिताऽऽयरियस्स उ ।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥४३॥

आचार्य के मनोगत भाव जानकर या उनके वचन सुन-कर अपने वचनो से स्वीकार करे और कार्य द्वारा आचरण करे।

वित्ते अचोइए णिच्चं, खिप्प हवइ सुचोइए ।
जहोवइट्ठं सुकयं, किच्चाइं कुव्वई सया ॥४४॥

विनयी शिष्य, विना प्रेरणा किये ही काम करता है और प्रेरणा करने पर तो शीघ्र ही अच्छी तरह आज्ञानुसार कार्य करता है ॥४४॥

णच्चा णमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए ।
हवइ किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा ॥४५॥

इस प्रकार विनय के स्वरूप को जानकर नम्र बनने वाले बुद्धिमान् की, लोक में प्रशसा होती है। जिस प्रकार प्राणियो के लिए पृथ्वी आधारभूत है, उसी प्रकार वह बुद्धि-मान् भी सद्गुणों का आधार रूप होता है ॥४५॥

पुज्जा जस्स पसीयन्ति, सम्बुद्धा पुव्वसंथुया ।
पसण्णा लाभइस्सन्ति, विउलं अट्ठियं सुयं ॥४६॥

सुशिष्य के विनयादि गुण से प्रसन्न हुए तत्त्वज्ञ पूज्य गुरुदेव, उसे मोक्षार्थ वाले विस्तृत श्रुतज्ञान का लाभ देते है ।

स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए, मणोरुई चिट्ठइ कम्मसंपया।
तवोसमायारि समाहिसंवुडे, महज्जुई पंच वयाइं पालिया।४७।

ऐसा शास्त्रज्ञ प्रशसनीय शिष्य, सशय रहित होता है। वह गुरु की इच्छानुसार प्रवृत्ति करता हुआ, कर्मसमाचारी, तप समाचारी, और समाधि युक्त सवरवान होकर तथा महाव्रतो का पालन कर महान् तेज वाला होता है ॥४७॥

स देवगंधव्वमणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए।४८। त्तिबेमि।

देव, गधर्व और मनुष्यो से पूजित वह शिष्य, मल मूत्र से भरे हुए इस शरीर को छोडकर, इसी जन्म मे सिद्ध एव शाश्वत हो जाता है। यदि कुछ कर्म शेष रह जाय तो महान् ऋद्धिशाली देव होता है। ऐसा मै कहता हू ॥४८॥

दुइयं परीसहज्झयणं

२

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा। कयरे खलु ते बावीसं

परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो णो विणिहएणोज्जा। इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो णो विणिहएणोज्जा। तंजहा—१. दिगिंछा परीसहे, २. पिवासा परीसहे, ३. सीय परीसहे, ४. उसिण परीसहे, ५. दंसमसग परीसहे, ६. अचेल परीसहे, ७ अरइ परीसहे, ८. इत्थी परीसहे, ९. चरिया परीसहे, १०. णिसीहिया परीसहे, ११. सिज्जा परीसहे, १२. अक्कोस परीसहे, १३. वह परीसहे, १४. जायणा परीसहे, १५. अलाभ परीसहे, १६. रोग परीसहे, १७. तणफास परीसहे, १८. जल्ल परीसहे, १९. सक्कार पुरक्कार परीसहे, २०. पण्णा परीसहे, २१. अण्णाण परीसहे, २२. दंसण परीसहे।

हे आयुष्यमान् जम्बू ! मैंने सुना है, उन भगवान् ने इस प्रकार कहा है। जिन प्रवचन मे, काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने बावीस परीषह कहे हैं, जिन्हे सुनकर उनके स्वरूप को जानकर उन्हे जीते। परीषह आने पर भिक्षु विचलित नही होवे। जम्बुस्वामी पूछते है कि वे परीषह कौन से हैं ? उत्तर—१ क्षुधा परीषह, २ प्यास का, ३. शीत, ४. उष्ण, ५. डास, मच्छरादि का, ६ वस्त्र की कमी

या अभाव से, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ विहार, १० एकान्त में बैठने का, ११ शय्या, १२ कठोर वचन, १३ वध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृण स्पर्श, १८ मैल, १९ सत्कार पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान और २२ दर्शन परीषह।

परीसहाणं पविभत्ती, कासवेणं पवेइया।
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥१॥

हे जम्बू! काश्यपगोत्रीय भगवान् ने परीषहों के जो विभाग बताये हे, उन्हे क्रमश. कहता हू, तुम सुनो ॥१॥

दिगिंछापरिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामवं।
न छिंदे न छिंदावए, न पए न पयावए ॥२॥

भूख से पीडित होने पर सयम बलवाले तपस्वी साधु को चाहिए कि वे फलादि को स्वय भी नही तोड़े, न दूसरे से तुड़ावे, न छिदावे, न स्वय पकावे और न दूसरो से पकवावे ॥२॥

कालीपव्वंगसंकासे, किसे धमणिसंतए।
मायण्णे असणपाणस्स, अदीणमणसो चरे ॥३॥

भूख से सूखकर, शरीर कौवे की टाग जैसा दुर्बल हो जाय, नसे दिखने लगे, शरीर अत्यन्त कृश हो जाय, तो भी आहार पानी की मर्यादा को जानने वाला साधु, दीनता नही लावे और दृढता से सयम मार्ग में विचरे ॥३॥

तओ पुट्ठो पिवासाए, दुगुंछी लज्जसंजए।
सीओदगं न सेवेज्जा, वियडस्सेसणं चरे ॥४॥

अनाचार से घृणा करने वाला लज्जावान् साधु, प्यास से पीडित होने पर सचित्त पानी का सेवन नही करे, किन्तु अग्नि आदि से प्रासुक बने हुए पानी की गवेषणा करे ॥४॥

छिण्णावाएसु पंथेसु, आउरे सुपिवासिए ।
परिसुक्कमुहेऽदीणे, त तितिक्खे परीसहं ॥५॥

निर्जन मार्ग मे जाते हुए प्यास मे व्याकुल हो जाय तथा मुँह सूख जाय, तो भी दीनता रहित होकर कष्ट सहन करे ॥५॥

चरंतं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया ।
णाइवेलं मुणी गच्छे, सुच्चाणं जिणसासणं ॥६॥

जिनेश्वर की शिक्षा का सुनने वाले, आरम्भ से विरत और रूक्ष शरीरी साधु को, सयम पालते हुए कभी ठण्ड लगे, तो मर्यादा का उल्लघन कर दूसरी जगह नही जावे ॥६॥

ण मे णिवारणं अत्थि, छवित्ताणं ण विज्जइ ।
अहं तु अग्गिं सेवामि, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥७॥

शीत निवारण करने के साधन, मकान कम्बलादि मेरे पास नहीं है, इसलिए मै अग्नि का सेवन कर लूं',-ऐसा विचार भी मन में नही लावे ॥७॥

उसिण परियावेणं, परिदाहेण तज्जिए ।
घिंसु वा परियावेणं, सायं णो परिदेवए ॥८॥

ग्रीष्मादि ऋतु में उष्ण स्पर्श वाले पृथ्वी आदि के ताप से दग्ध होने पर, सुख के लिए विलाप नही करे ॥८॥

उण्हाहितत्तो मेहावी, सिणाणं णो वि पत्थए ।
गायं ण परिसिंचेज्जा, ण वीएज्जा य अप्पयं ॥९॥

बुद्धिमान् साधु, गर्मी मे पीडित होने पर भी स्नान करने की इच्छा नही करे, न शरीर को भिगोवे, न पंखे से हवा करे।

पुट्ठो य दंसमसएहिं, समरे व महामुणी ।
णागो संगामसीसे वा, सूरे अभिहणे परं ॥१०॥

जिस प्रकार सग्राम मे आगे रहने वाले हाथी और योद्धा, शत्रु को मारते है, उसी प्रकार डास मच्छरादि'का परीषह उत्पन्न होने पर शात भाव से क्रोध को जीते ॥१०॥

ण संतसे ण वारिज्जा, मणं पि ण पओसए ।
उवेहे णो हणे पाणे, भुंजंते मंससोणियं ॥११॥

अपने रक्त माँस को चूसते हुए प्राणियो को मारे नही, सतावे नही, रोके नही, मन से उन पर द्वेष नही करे, किन्तु समभाव रक्खे ॥११॥

परिजुण्णेहिं वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए ।
अदुवा सचेलए होक्खं, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥१२॥

वस्त्रो के जीर्ण होने पर 'मै वस्त्र रहित हो जाऊँगा या वस्त्र सहित रहूगा'—इस प्रकार विचार भी नही करे ।

एगया अचेलए होइ, सचेले या वि एगया ।
एयं धम्महियं णच्चा, णाणी णो परिदेवए ॥१३॥

साधु कभी (जिनकल्प में) वस्त्र रहित होता है और

कभी वस्त्र सहित। दोनों अवस्थाओं को धर्म में हितकारी जानकर खेद नहीं करे ॥१३॥

गामाणुगामं रीयंतं, अणगारमकिंचणं ।
अरई अणुप्पवेसेज्जा, तं तितिक्खे परीसहं ॥१४॥

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपरिग्रही अनगार को कभी अरति (अरुचि) उत्पन्न हो, तो उस परीषह को सहन करे ॥१४॥

अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आयरक्खिए ।
धम्मारामे णिरारम्भे, उवसंते मुणी चरे ॥१५॥

आरम्भ त्यागी, विरत, कषायों को शान्त करने वाले, आत्मरक्षक मुनि, अरति को हटा कर धर्मरूपी उद्यान में विचरे ॥१५॥

संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगम्मि इत्थिओ ।
जस्स एया परिण्णाया, सुकडं तस्स सामण्णं ॥१६॥

लोक में स्त्रियां, पुरुष के लिए आसक्ति का कारण है, यह जान कर जिसने स्त्रियों का त्याग किया है, उसका साधुत्व सफल है ॥१६॥

एवमादाय मेहावी, पंकभूया उ इत्थिओ ।
णो ताहिं विणिहण्णिज्जा, चरेज्जत्तगवेसए ॥१७॥

बुद्धिमान् साधु, स्त्रियों के संग को कीचडरूप मान कर उनमें नहीं फँसे और आत्म-गवेषक होकर संयम में विचरे ॥१७॥

एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे ।
गामे वा णगरे वावि, णिगमे वा रायहाणीए ॥१८॥

प्रासुकभोजी, सयमी साधु, परीषहो को जीतकर ग्राम, नगर, निगम (मण्डी) अथवा राजधानी में एकाकी भाव से विचरे ॥१८॥

असमाणे चरे भिक्खू, णेव कुज्जा परिग्गहं ।
असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिकेओ परिव्वए ॥१६॥

साधु, निराश्रय होकर विचरे, परिग्रह-ममता नही रखे और गृहस्थो से सम्बन्ध नही रखकर विचरता रहे ॥१६॥

सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले व एगओ ।
अकुक्कुओ णिसीएज्जा, ण य वित्तासए परं ॥२०॥

साधु. श्मशान में, सूने घर में या वृक्ष के नीचे, शान्ति-पूर्वक एकाकी होकर बैठे और किसी प्राणी को दुःख नही दे ।

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, उवसग्गाभिधारए ।
संकाभीओ ण गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अण्णमासणं ।२१।

श्मशानादि मे बैठे हुए यदि उपसर्ग हो, तो दृढता से सहन करे, किन्तु भयभीत होकर वहा से अन्य स्थान पर नही जावे ॥२१॥

उच्चावयाहिं सिज्जाहिं, तवस्सी भिक्खू थामवं ।
णाइवेलं विहण्णिज्जा, पावदिट्ठी विहण्णइ ॥२२॥

समर्थ तपस्वी को ऊंची नीची शय्या मिले, तो हर्ष या विषाद करके संयम की मर्यादा का उल्लंघन नही करे, क्योंकि पाप दृष्टि वाले का संयम भंग होता है ॥२२॥

पइरिक्कमुवस्सयं लद्धुं, कल्लाणं अदुव पावगं ।
किमेगरायं करिस्सइ, एवं तत्थऽहियासए ॥२३॥

स्त्री आदि से रहित स्थान यदि अच्छा या बुरा भी मिले तो 'एक रात में मेरा क्या भला या बुरा होजायगा"–ऐसा सोचकर, समभाव से सुख दुःख को सहन करे ॥२३॥

अक्कोसेज्जा परे भिक्खुं, ण तेसिं पडिसंजले ।
सरिसो होई बालाणं, तम्हा भिक्खू ण संजले ॥२४॥

साधु को कोई गाली दे और अपमान करे, तो उस पर क्रोध नही करे। क्रोध करने से वह स्वयं अज्ञानी के समान हो जाता है ॥२४॥

सोच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गाम कंटगा ।
तुसिणीओ उवेहेज्जा, ण ताओ मणसी करे ॥२५॥

साधु, कानो मे कांटो के समान चुभने वाली अत्यन्त कठोर भाषा को सुनकर, मौन से उसकी उपेक्षा करे । उसे मन में स्थान ही नही दे ।

हओ ण संजले भिक्खू, मणं पि ण पओसए ।
तितिक्खं परमं णच्चा, भिक्खू धम्मं विचिंतए ॥२६॥

साधु को कोई मारे, तो साधु उस पर क्रोध नही करे

और मन से भी द्वेष नहीं करे, किन्तु 'क्षमा परम धर्म है'-ऐसा सोचकर धर्म का ही चिन्तन करे ।।२६।।

समणं संजयं दंतं, हणिज्जा कोई कत्थइ ।
णत्थि जीवस्स णासुत्ति, एवं पेहेज्ज संजए ।।२७।।

इन्द्रियों का दमन करने वाले सयमी साधु को कोई मारे, तो "जीव का नाश नहीं होता"-इस प्रकार विचार करता हुआ समता भाव में रहे ।।२७।।

दुक्करं खलु भो णिच्चं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वं से जाइयं होइ, णत्थि किंचि अजाइयं ।।२८।।

हे शिष्य ! अनगार भिक्षु का जीवन निश्चय ही कठिन है, उसे आहारादि माँगने पर ही मिलते हैं, बिना माँगे कुछ भी नहीं मिलता ।।२८।।

गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी णो सुप्पसारए ।
सेओ अगारवासुत्ति, इइ भिक्खू ण चिंतए ।।२९।।

भिक्षा के लिए गृहस्थ के यहाँ गया हुआ साधु, संकोचवश इस प्रकार विचार नहीं करे कि-'माँगकर खाने की अपेक्षा तो गृहस्थाश्रम में रहना ही ठीक है' ।

परेसु घासमेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए ।
लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज पंडिए ।।३०।।

भोजन तैयार हो जाने के समय गृहस्थों के यहाँ

गवेषणा करे। आहार मिले या न मिले, तो बुद्धिमान साधु खेद नही करे ॥३०॥

अज्जेवाहं ण लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।
जो एवं पडिसचिक्खे, अलाभो तं ण तज्जए ॥३१॥

"मुझे आज आहार नही मिला, तो सभवत कल मिल जायगा"–ऐसा सोचकर जो दीनता नही लाता है उसे अलाभ परीषह नही सताता ॥३१॥

णच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्टिए।
अदीणो ठावए पण्णं, पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥३२॥

रोग उत्पन्न होने पर दुःखी हुआ साधु, दीनता रहित होकर अपनी बुद्धि को स्थिर करे और उत्पन्न हुए रोग को समभाव से सहन करे ॥३२॥

तेगिच्छं णाभिणंदिज्जा, संचिक्खत्तगवेसए।
एयं खु तस्स सामण्णं, जं ण कुज्जा ण कारवे ॥३३॥

आत्म शोधक मुनि, चिकित्सा का अनुमोदन भी नही करे, और रोग को समभाव से सहे। चिकित्सा नही करना और न करवाना, इसीमें उसकी साधुता है ॥३३॥

अचेलगस्स लूहस्स, संजयस्स तवस्सिणो।
तणेसु सयमाणस्स, हुज्जा गायविराहणा ॥३४॥

वस्त्र रहित और रूक्ष शरीर वाले सयमी तपस्वी को तृण पर सोने से शरीर में पीड़ा होती है ॥३४॥

आयवस्स णिवाएणं, अउला हवइ वेयणा ।
एवं णच्चा ण सेवंति, तंतुजं तणतज्जिया ॥३५॥

गर्मी और तृण स्पर्श से वेदना अधिक होती है । उस समय नरकादि दुःखो का विचार करके अचेलक मुनि, वस्त्रादि का सेवन नही करे ॥३५॥

किलिण्णगाए मेहावी, पंकेण व रएण वा ।
घिंसु वा परियावेणं, सायं णो परिदेवए ॥३६॥

ग्रीष्म आदि मे पसीने से या मैल अथवा रज मे शरीर लिप्त हो जाय, तो बुद्धिमान् साधु, सुख के लिए दीनता नही लावे ॥३६॥

वेएज्ज णिज्जरापेही, आरियं धम्मणुत्तरं ।
जाव सरीरभेओ त्ति, जल्लं काएण धारए ॥३७॥

निर्जरा का अर्थी साधु, सर्वोत्तम आर्य धर्म को प्राप्त करके जीवन पर्यन्त इस शरीर द्वारा मैल परीषह को सहन करे ॥३७॥

अभिवायणमब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा णिमंतणं ।
जे ताई पडिसेवंति, ण तेसिं पीहए मुणी ॥३८॥

यदि कोई स्वतीर्थी या अन्यतीर्थी साधु, राजा आदि द्वारा किये गये सत्कार, नमस्कार तथा निमन्त्रण आदि का सेवन करते है, तो साधु उनकी चाहना एवं प्रशसा नही करे ।

अणुकसाई अप्पिच्छे, अण्णाएसी अलोलुए ।
रसेसु णाणुगिज्झिज्जा, णाणुतप्पिज्ज पण्णवं ॥३९॥

अल्प कषायी, अल्प इच्छावाला, अज्ञात कुलों से भिक्षा लेने वाला और लोलुपता रहित बुद्धिमान् साधु, सरस भोजन में आसक्ति नही रखे और उसके न मिलने पर खेद भी नही करे ॥३९॥

से णूणं मए पुव्वं, कम्माऽणाणफला कडा ।
जेणाहं णाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥४०॥

किसी के द्वारा पूछी हुई बात का उत्तर नही दे सके, तो इस प्रकार विचार करे कि 'मैने पूर्व जन्म में अज्ञान फल वाले कर्म किये है, इससे मै पूछी हुई बात का ठीक उत्तर नही दे सकता" ॥४०॥

अह पच्छा उइज्जन्ति, कम्माणाणफला कडा ।
एवमस्सासि अप्पाणं, णच्चा कम्मविवागयं ॥४१॥

"इसके बाद ज्ञान फल देने वाले कर्मो का उदय होगा" इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर आत्मा को आश्वासन दे ॥४१॥

णिरट्ठगम्मि विरओ, मेहुणाओ सुसंवुडो ।
जो सक्खं णाभिजाणामि, धम्मं कल्लाणपावगं ॥४२॥

धर्म में शका उत्पन्न होने पर ऐसा विचार नही करे कि मै अब तक साक्षात् कल्याणकारी धर्म और पाप को भी नही

जानता, तो फिर मेरा मैथुनादि से निवृत्त और सयत होना व्यर्थ है" ॥४२॥

तवोवहाण मादाय, पडिमं पडिवज्जओ ।
एवं वि विहरओ मे, छउमं ण णियट्टई ॥४३॥

"मे तप और उपधान कर रहा हू और प्रतिमा धारण कर विचर रहा हू, फिर भी मेरा छद्मस्थपन दूर नही हुआ" ।

णत्थि णूणं परे लोए, इड्ढी वावि तवस्सिणो ।
अदुवा वंचिओ मि त्ति,इइ भिक्खू ण चिंतए ॥४४॥

"निश्चय ही परलोक नही है और तपस्वी को किसी प्रकारकी ऋद्धि भी प्राप्त नही होती । मै साधु बनकर ठगा गया," इस प्रकार के विचार भी नही करे ॥४४॥

अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवावि भविस्सइ ।
मुसं ते एव माहंसु, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥४५॥

"भूतकाल में जिन हुए है, वर्तमान में है, और भविष्य में भी होगे, ऐसा जो कहा है वह झूठ है"—साधु, ऐसा विचार भी नही करे ॥४५॥

एए परीसहा सव्वे, कासवेणं पवेइया ।
जे भिक्खू ण विहण्णिज्जा, पुट्ठो केणई कण्हुई ।४६। त्ति बेमि

ये सभी परीषह भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाये हैं । यह जान कर किसी भी परीषह के उत्पन्न होने पर, सयम से विचलित नही होवे ॥४६ । ऐसा मै कहता हूँ । इति ॥

तइअं चाउरंगीयज्झयणं

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥१॥

इस जीव को मनुष्य जन्म, धर्मश्रवण, धर्मश्रद्धा और सयम में शक्ति लगाना, इन चार उत्तम अगो की प्राप्ति होना दुर्लभ है ॥१॥

समावण्णाण संसारे, णाणागोत्तासु जाइसु ।
कम्मा णाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभिया पया ॥२॥

यह जीव, ससार मे नाना प्रकार के कर्म करके अनेक गोत्र वाली जातियो मे उत्पन्न होकर, सारे विश्व मे व्याप्त हो चुका है ॥२॥

एगया देवलोएसु, णरएसु वि एगया ।
एगया आसुरे काये, अहाकम्मेहिं गच्छई ॥३॥

अपने कर्मो के अनुसार यह जीव कभी देवलोक में, कभी नरक में और कभी असुरकाय मे उत्पन्न होता है ॥३॥

एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडालवुक्कसो ।
तओ कीडपयंगो य, तओ कुंथुपिवीलिया ॥४॥

यह जीव, कभी क्षत्रिय, कभी चाण्डाल, तो कभी वर्णशंकर जाति में और कभी कभी कीट, पतगे, कुन्थुए, और चींटी भी हो जाता है ॥४॥

एवमावट्टजोणीसु, पाणिणो कम्मकिब्बिसा ।
ण णिव्विज्जंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया ॥५॥

जिस प्रकार सभी तरह की ऋद्धि होते हुए भी, क्षत्रियो को राज्य तृष्णा शान्त नही होती, उसी प्रकार अशुभ कर्म वाले जीव, अनेक योनियो में परिभ्रमण करते हुए भी विरक्त नही होते ॥५॥

कम्मसंगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥६॥

कर्मों के सम्बन्ध से मूढ बने हुए दुःखी और अत्यन्त वेदना वाले प्राणी, मनुष्य के सिवाय नरकादि योनियो मे अनेक प्रकार के कष्ट भोगते है ॥६॥

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं ॥७॥

मनुष्यत्व में बाधक होने वाले कर्मों के क्रमश नष्ट होने से हुई शुद्धि के कारण, जीव कभी मनुष्य जन्म पाता है॥७॥

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं ॥८॥

मनुष्य जन्म पाजानें पर भी उस सत्य धर्म का सुनना दुर्लभ है कि जिसे सुनकर जीव, तप क्षमा और अहिंसा को अगीकार करते है ॥८॥

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम दुल्लहा ।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सइ ॥९॥

कदाचित् धर्म भी सुनले, किन्तु उस पर श्रद्धा होना तो अत्यत दुर्लभ है, क्योकि न्याय मार्ग को सुनकर भी बहुत से लोग भ्रष्ट हो जाते है ॥९॥

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि, णो य णं पडिवज्जइ ॥१०॥

धर्म सुनकर और श्रद्धा पाकर भी सयम में उद्यमी होना दुर्लभ है । कई मनुष्य श्रद्धालु होते हुए भी आचरण नही करते ॥१०॥

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे णिद्धुणे रयं ॥११॥

जो जीव, मनुष्य जन्म पाकर धर्म को सुनता है, श्रद्धान करता है और सयम में उद्यमी होता है, वह सवृत्त तपस्वी, कर्मों का नाश कर देता है ॥११॥

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ।
णिव्वाणं परमं जाइ, घयसित्ति व्व पावए ॥१२॥

ऐसे सरल भाव वाले जीव की ही शुद्धि होती है । शुद्ध आत्मा में ही धर्म ठहरता है । वह घृत मे सींची हुई अग्नि की तरह देदिप्यमान् होता हुवा निर्वाण प्राप्त करता है।

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए ।
पाढवं सरीरं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥१३॥

उपर्युक्त परम अगो को रोकने वाले कर्मों के हेतु को दूर करो। ज्ञानादि धर्म से सयम रूप यश को बढाओ। ऐसा करने वाला इस पार्थिव शरीर को छोडकर ऊर्ध्व दिशा को प्राप्त होता है ॥१३॥

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तरउत्तरा ।
महासुक्का व दिप्पंता, मण्णंता अपुणच्चवं ॥१४॥

उत्कृष्ट आचार का पालन करने से जीव, उत्तरोत्तर विमानवासी देव होते है और सूर्य चन्द्र की तरह प्रकाशमान् होते हुए वे मानते है कि हम यहा से नही चवेगे ॥१४॥

अप्पिया देवकामाणं, कामरूव विउव्विणो ।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति, पुव्वा वाससया बहू ॥१५॥

देव सम्बन्धी कामभोगों को प्राप्त हुए और इच्छानुसार रूप बनाने की शक्ति वाले ये देव, सैकडो पूर्व वर्षों तक विमानो में रहते है ॥१५॥

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया ।
उवेंति माणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायइ ॥१६॥

वे देव अपने स्थान की आयु क्षय होने पर वहाँ से चव कर मनुष्य योनि को प्राप्त करते है। वहाँ उन्हे दस अगो की प्राप्ति होती है ॥१६॥

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दासपोरुसं ।
चत्तारि कामखंधाणि, तत्थ से उववज्जइ ॥१७॥

खेत बगीचे महल, सोना चाँदी, दासदासी और पशु-ये चार काम के स्कन्ध है। जहाँ काम के ये चारो अग हो वहाँ वे उत्पन्न होते है ॥१७॥

मित्तवं णाइवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं ।
अप्पायंके महापण्णे, अभिजाए जसो बले ॥१८॥

वह मित्रवाला, ज्ञातिवाला, उच्च गोत्रवाला, सुन्दर,निरोग, महाबुद्धिशाली, सर्वप्रिय, यशस्वी और बलवान् होता है ॥१८॥

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं ।
पुव्विं विसुद्ध सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ॥१९॥

वह आयु के अनुसार मनुष्य के उत्तम भोगो को भोगता है और पूर्वभव में शुद्ध धर्म का आचरण किया हुआ होने से, यहाँ शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त करता है ॥१९॥

चउरंगं दुल्लहं णच्चा, संजमं पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए ॥२०॥ त्ति बेमि ।

फिर वह चार अगो को दुर्लभ जानकर सयम धारण करता है और तप से कर्मो का क्षय करके शाश्वत सिद्ध हो जाता है॥२०॥

तीसरा अध्ययन समाप्त

चउत्थं असंखयं अज्झयणं

असंखयं जीविय मा पमायए. जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं ।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते,किण्णु विहिंसा अजया गहिंति ।१।

हे, जीव, तू प्रमाद मतकर ! एक बार टूटा हुआ आयुष्य फिर कभी नही जुडता, न वृद्धावस्था मे ही कोई रक्षक होता है । तू विचार तो कर कि जो हिंसक, अविरत और प्रमादी बने हुए है, जो पाप में ही रचे हुए है, वे किसकी शरण मे जावेगे ? ॥१॥

जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा, समाययंति अमइं गहाय ।
पहाय ते पासपयट्टिए णरे, वेराणुबद्धा णरयं उवेंति ॥२॥

जो मनुष्य, पाप से धन सचय करते है, वे मोह मे फँसे हुए और वैर से बन्धे हुए है, वे धन को यही छोड कर नरक में जाते है ॥२॥

तेणे जहा संधिमुहे गहिए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।
एवं पया पेच्च इहं च लोए,कडाण कम्माण ण मुक्ख अत्थि ।३।

जैसे सेध लगाते हुए पकडा गया चोर, अपने पाप कर्म से ही दु ख पाता है, वैसे ही जीव, अपने पापो का फल इसलोक और परलोक मे पाता है । क्योकि किये हुए पाप कर्मो का फल भुगते बिना छुटकारा नही होता ॥३॥

संसारमावरण परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, ण बंधवा बंधवयं उवेंति ॥४॥

ससारी जीव, अपने और दूसरो के लिये साधारण कर्म करता है । किन्तु उस कर्म का फल भोगते समय उसके स्वजन, और बन्धुगण हिस्सा नही लेते ॥४॥

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था ।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, णेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ॥५॥

धन के लिए जो जीव, अनेक पाप करता है, किन्तु धन से न तो यहा रक्षा होती है, न परलोक में ही । जिस प्रकार दीपक बूझ जाने पर अन्धेरे मे कुछ भी दिखाई नही देता उसी प्रकार अनन्त (अनन्तानुवन्धी) मोह के कारण जिस जीव का ज्ञानदीप नष्ट हो चुका, उसे स्पष्ट दिखाई देने वाला न्याय मार्ग भी नही देखाई देता ।

सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवी, णो वीससे पंडिए आसुपण्णे ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंडपक्खी व चरेऽप्पमत्ते ॥६॥

मोह मे सोये हुए लोगो के बीच भी जो प्रज्ञावान्, सयमी और पण्डित है, उन्हे प्रमाद मे विश्वास नही करना चाहिए, क्योकि काल भयानक है और शरीर निर्बल है । इसलिए भारड पक्षी की तरह अप्रमत्त हो कर विचरे ॥६॥

चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो।
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी।७।

चारित्र में सदैव शंकित (सावधान) रहे। लोक के थोडे परिचय को भी बन्धनरूप मानता हुआ विचरे और ज्ञानादि का जब तक लाभ हो, तब तक जीवन की वृद्धि करे, बाद में ज्ञान पूर्वक शरीर का त्याग करदे ॥७॥

छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खियवम्मधारी।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं।८।

जैसे सवार की शिक्षा में रहने वाला कवचधारी घोडा विजयी होता है,वैसे ही स्वच्छन्दता छोड़कर गुरु आज्ञा में रहने वाला साधु, पूर्व वर्षों तक अप्रमत्त होकर विचरे। इससे शिघ्र मुक्ति होती है ॥८॥

स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं।
विसीयइ सिढिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए॥९॥

जिसने पहली अवस्था में धर्म नही किया, वह बाद मे भी नही कर सकेगा। यदि कोई निश्चयवादी (आयु को जानने वाला) कहे कि पिछली अवस्था मे धर्म कर लूंगा, तो उसका कहना किसी प्रकार ठीक भी हो सकता है। किन्तु जिनकी आयु का कोई भरोसा नही, वे भी यदि प्रमादी रहते है, तो जब आयु शिथिल हो जाती है और मृत्य से शरीर नष्ट होने का समय आता है, तब उन्हे पश्चात्ताप करना पड़ता है ॥९॥

खिप्पं ण सक्केइ विवेगमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे।
समिच्च लोगं समया महेसी, आयाणुरक्खी चरेऽप्पमत्तो।१०।

ऐसा विवेक (त्याग) शीघ्र प्राप्त नहीं होता। इसलिए आत्म रक्षक मुनि, समभाव पूर्वक लोक का स्वरूप जान कर काम भोगो का त्याग करे और सावधानी से अप्रमत्त होकर विचरे ॥१०॥

मुहुं मुहुं मोहगुणे जयंतं, अणेगरूवा समणं चरंतं।
फासा फुसंती असमंजसं च, ण तेसु भिक्खू मणसा पउस्से।११।

निरन्तर मोह गुणो को जीतते हुए सयम में विचरने वाले साधु को, अनेक प्रकार के प्रतिकूल विषय स्पर्श करते है, किन्तु साधु उन दुखदायक विषयो पर मन से भी द्वेष नही करे ॥११॥

मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा।
रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं ण सेवेज्ज पहेज्ज लोहं॥

विवेक को मन्द करके लुभाने वाले विषयो मे मन को नही जाने दे, क्रोध को शान्त करे, मान का हटावे, माया का सेवन नही करे, और लोभ का त्याग करे ॥१२॥

जे संखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्जदोसाणुगया परज्झा।
एए अहम्मेत्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीर भेए।त्ति बेमि।

जो तुच्छ निसार शब्दाडम्बरी और अन्यथावादी है,

वे रागद्वेष युक्त होने से पराधीन है, और अधर्म के हेतु है। इनसे घृणा करता हुआ, जब तक शरीर का नाश न हो, तब तक गुणों को बढाने की ही इच्छा करे ॥१३॥

चौथा अध्ययन समाप्त

अकाममरणिज्जं पंचमं अज्झयणं

अण्णवंसि महोहंसि, एगे तिण्णे दुरुत्तरे।
तत्थ एगे महापण्णे, इमं पण्हमुदाहरे ॥१॥

इस महा प्रवाह वाले दुस्तर ससार समुद्र को कई महापुरुष तिर गये है। इस विषय में जिज्ञासु के पूछने पर एक महाज्ञानी ने फरमाया-कि--

संतिमे य दुवे ठाणा, अक्खाया मरणंतिया।
अकाममरणं चेव, सकाममरणं तहा ॥२॥

मृत्यु के ये दो स्थान कहे गये है-अकाम मरण और सकाम मरण ॥२॥

बालाणं तु अकामं तु, मरणं असइं भवे।
पंडियाणं सकामं तु, उक्कोसेण सइं भवे ॥३॥

अज्ञानियों को बार बार अकाममरण मरना पडता है और पडितो का सकाममरण उत्कृष्ट (केवलियो की अपेक्षा) एक ही बार होता है ॥३॥

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं ।
कामगिद्धे जहा बाले, भिसं कूराइं कुव्वइ ॥४॥

पहले स्थान—अकाम मरण का वर्णन करते हुए भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया कि अज्ञानी जीव, विषयासक्त होकर अत्यन्त बुरे कर्म करता है ॥४॥

जे गिद्धे कामभोगेसु, एगे कूडाय गच्छइ ।
ण मे दिट्ठे परे लोए, चक्खुदिट्ठा इमा रई ॥५॥

विषयासक्त जीव अकेला ही नर्क में जाता है। वह सोचता है कि परलोक तो मैंने नहीं देखा, किन्तु यहां का सुख तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इसे छोड़कर परलोक की आशा क्यों करूं ॥५॥

हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया ।
को जाणइ परे लोए, अत्थि वा णत्थि वा पुणो ॥६॥

ये विषय सुख तो अभी मेरे हाथ में हैं और भविष्य में मिलने वाले सुख परोक्ष हैं। फिर कौन जानता है कि परलोक है भी या नहीं ॥६॥

जणेण सद्धिं होक्खामि, इइ बाले पगब्भइ ।
कामभोगाणुराएणं, केसं संपडिवज्जइ ॥७॥

मैं क्यों चिन्ता करूं! जो दूसरों का हाल होगा, वह मेरा भी होगा। अज्ञानी जीव, इस प्रकार कहता है। वह काम भोगानुरागी, दुःखी होता है ॥७॥

तओ से दंडं समारभइ, तसेसु थावरेसु य ।
अट्ठाए य अणट्ठाए, भूयगामं विहिंसइ ॥८॥

इस प्रकार वह अज्ञानी, त्रस और स्थावर जीवो को, अपने और दूसरों के लिये तथा अकारण ही हिंसा करता है ।

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मण्णइ ॥९॥

वह अज्ञानी, हिंसा, झूठ, कपट, चुगली, धूर्तता और मास मदिरा का सेवन करता हुआ, इन्ही को श्रेयस्कर मानता है ॥९॥

कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ, सिसुणागुव्व मट्टियं ॥१०॥

जिस प्रकार केचुआ, मिट्टी खाता भी है और शरीर पर भी लगाता है, वैसे ही कामी जीव, मन, वचन और काया से मदान्ध बना हुआ और धन तथा स्त्रियो में आसक्त होकर राग-द्वेष से कर्मफल का सचय करता है ॥१०॥

तओ पुट्ठो आयंकेणं, गिलाणो परितप्पइ ।
पभीओ परलोगस्स, कम्माणुप्पेही अप्पणो ॥११॥

फिर उग्र रोगो से पीड़ित और परलोक से डरा हुआ जीव, अपने दुष्कर्मों को याद कर पश्चाताप करता है ॥११॥

सुया मे णरए ठाणा, असीलाणं च जा गई ।
बालाणं कूरकम्माणं, पगाढा जत्थ वेयणा ॥१२॥

हे जम्बू ! मैने नरक स्थानो के विषय में सुना है और दुःशीलो की गति भी सुनी है। नरक में क्रूरकर्मी अज्ञानियो को तीव्र वेदना होती है ॥१२॥

तत्थोववाइयं ठाणं, जहा मेऽयमणुस्सुयं ।
आहाकम्मेहिं गच्छंतो, सो पच्छा परितप्पइ ॥१३॥

मैंने सुना है कि अपने अशुभ कर्मों के अनुसार नरक के दुःखमय स्थान में जाता हुआ जीव, बाद में पश्चात्ताप करता है।

जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयइ ॥१४॥

जिस प्रकार जान बूझकर राजमार्ग को छोडकर विषम मार्गपर जानेवाला गाडीवान्, गाडी की धुरी के टूट जाने पर पश्चात्ताप करता है ॥१४॥

एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयइ ॥१५॥

उसी प्रकार धर्म छोडकर अधर्म को ग्रहण करने वाला अज्ञानी, मृत्यु के मुंह में जाने पर शोक करता है ॥१५॥

तओ से मरणंतम्मि, बाले संतस्सई भया ।
अकाममरणं मरई, धुत्ते व कलिणा जिए ॥१६॥

मृत्यु के समय वह अज्ञानी, नरक के भय से कांपता है और हारे हुए जुआरी की तरह अकाम मरण मरता है ॥१६॥

एयं अकाममरणं, बालाणं तु पवेइयं ।
इत्तो सकाममरणं, पंडियाणं सुणेह मे ॥१७॥

यह अज्ञानी जीवो का अकाम मरण कहा । अब पण्डितो का सकाम मरण कहता हूँ सो सुनो ॥१७॥

मरणं पि सपुण्णाणं, जहा मेऽयमणुस्सुयं ।
विप्पसण्ण मणाघायं, संजयाणं वुसीमओ ॥१८॥

मैने सुना है कि पुण्यवन्त, जितेन्द्रिय और सयमी पुरुषो का मरण, व्याघात रहित और प्रसन्नता से होता है ॥१८॥

ण इमं सव्वेसु भिक्खुसु, ण इमं सव्वेसुऽगारिसु ।
णाणासीला अगारत्था, विसमसीला य भिक्खुणो ॥१६॥

यह पण्डित मरण न तो सभी भिक्षुओ को होता है और न सभी गृहस्थो को । गृहस्थ भी अनेक प्रकार का शील पालते है और साधु भी भिन्न आचार वाले होते है ॥१६॥

सन्ति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा ।
गारत्थेहि य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ॥२०॥

कई भिक्षुओ से गृहस्थ उच्च सयमी होते है और सभी गृहस्थो की अपेक्षा, सुसाधु उत्तम सयम वाले होते है ।२०।

चीराजिणं णगिणिणं, जडी संघाडि मुंडिणं ।
एयाणि वि ण तायंति, दुस्सीलं परियागयं ॥२१॥

चीवर, मृगचर्म, नग्नत्व, जटा, कथा और मुण्डन आदि भी दुराचारी की दुर्गति से रक्षा नही कर सकते ॥२१॥

पिंडोलए व दुस्सीले, णरगाओ ण मुच्चइ ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ॥२२॥

यदि भिक्षु भी दुराचारी हो, तो वह नरक से नही बच सकता । चाहे गृहस्थ हो या साधु, सुव्रतो का पालन करने वाला देव-लोक में जाता है ॥२२॥

अगारि सामाइयंगाइं, सड्ढी काएण फासए ।
पोसहं दुहओ पक्खं, एगरायं ण हावए ॥२३॥

गृहस्थ भी सामायिक के श्रुत चारित्र रूप अगो का श्रद्धापूर्वक काया से (मन वचन से भी) पालन करे । दोनो पक्ष में पोषव करे । इसमें एक रात्रि की भी हानि नही करे अर्थात् प्रत्येक मास के दोनो पक्ष मे पोपच करे । यदि किसी कारण से अधिक नही कर सके, तो एक पोपव तो अवश्य करे । यदि दिनरात का पोषव नही कर सके तो रात्रि मे तो करे ही ।

एवं सिक्खासमावण्णे, गिहवासे वि सुव्वए ।
मुच्चइ छविपव्वाओ, गच्छे जक्खसलोगयं ॥२४॥

इस प्रकार गृहवास में रहता हुआ मनुष्य भी सुव्रतों के पालने से औदारिक शरीर को छोड कर देवलोक मे जाता है ।

अह जे संवुडे भिक्खू, दुण्हमण्णयरे सिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणे वा, देवे वावि महिड्ढिए ॥२५॥

जो संवरवान् साधु है, वह मनुष्यायु पूर्ण होने पर या तो सिद्ध होता है या महाऋद्धिशाली देव होता है ॥२५॥

उत्तराइं विमोहाइं, जुइमंताणुपुव्वसो ।
समाइण्णाइं जक्खेहिं, आवासाइं जसंसिणो ॥२६॥

देवो के आवास उत्तरोत्तर ऊपर रहे हुए है। वे आवास स्वल्प मोहवाले द्युतिमान् यशस्वी देवो से युक्त है ।

दीहाउया इड्ढिमंता, समिद्धा कामरूविणो ।
अहुणोववण्णसंकासा, भुज्जो अच्चिमालिप्पभा ॥२७॥

वे देव, दीर्घ आयु वाले, ऋद्धिमन्त, तेजस्वी, इच्छानुसार रूप बनाने वाले, नवीन वर्ण के समान और अनेक सूर्यों की सी दीप्ति वाले होते है ॥२७॥

ताणि ठाणाणि गच्छंति, सिक्खित्ता संजमं तवं ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे संति परिणिव्वुडा ॥२८॥

गृहस्थ हो या भिक्षु, जिसने कषायो को शात कर दिया है, वह सयम और तप का पालन कर देवलोक में जाता है ।

तेसिं सुच्चा सपुज्जाणं, संजयाणं वुसीमओ ।
ण संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया ॥२९॥

पूजनीय, सयमी और जितेन्द्रिय साधुओ का वर्णन सुनकर, चारित्रवान् बहुश्रुत महात्मा मृत्यु के समय संतप्त नहीं होते ॥२९॥

तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खंतिए ।
विप्पसीइज्ज मेहावी, तहाभूएण अप्पणा ॥३०॥

बुद्धिमान् साधु, दोनो मरणो की तुलना करके, विशेषता वाले (सकाममरण) को ग्रहण करे। क्षमादि से दया धर्म को बढाकर तथाभूत (धर्ममय) होकर आत्मा को प्रसन्न करे।

तओ काले अभिप्पेए, सड्ढी तालिसमंतिए।
विणएज्ज लोमहरिसं, भेयं देहस्स कंखए॥३१॥

श्रद्धावान् साधु, जब मृत्यु का समय आजाय तब गुरुजनो के समीप, मरण भय को दूर करे और आकाक्षा रहित हो कर पण्डित मरण को चाहे ॥३१॥

अह कालम्मि संपत्ते, आघायाय समुस्सयं।
सकाममरणं मरइ, तिण्हमण्णयरं मुणी।३२। त्ति बेमि

मृत्यु समय में शरीर का ममत्व छोडकर भक्त प्रत्याख्यान, इगित और पादपोपगमन, इन तीन मरण में से किसी एक मरण द्वारा सकाममरण मरे ॥३२॥ ऐसा मै कहता हूँ।

पचम अध्ययन समाप्त

खुड्डागनियंठियं छट्ठं अज्झयणं

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा।
लुप्पंति वहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए॥१॥

जितने अज्ञानी मनुष्य है, वे सभी दु ख भोगने वाले है। वे मूर्ख, अनन्त ससार मे वहुत रुलते है ।१।

समिक्ख पंडिए तम्हा, पास जाइपहे बहू ।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मित्तिं भूएहिं कप्पए ॥२॥

इसलिए पण्डित जन, मोह जाल को दुर्गति का कारण जान कर स्वय सत्य की खोज करे और सभी प्राणियो से मैत्री भाव रक्खे ।२।

माया पिया एहुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
णालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥३॥

वह सोचे कि मेरे किये हुए कर्मो का फल भोगते समय मेरी रक्षा करने में माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू कोई भी समर्थ नही है ॥३॥

एयमट्ठं सपेहाए, पासे समियदंसणे ।
छिंद गेहिं सिणेहं च, ण कंखे पुव्वसंथवं ॥४॥

सम्यग्दृष्टि पुरुष, उपरोक्त बात पर स्वय सोचे और स्नेह वन्धन को तोड दे तथा पूर्व परिचय की इच्छा भी नहीं करे ॥४॥

गवासं मणिकुंडलं, पसवो दासपोरुसं ।
सव्वमेयं चइत्ताणं, कामरूवी भविस्ससि ॥५॥

मणि कुण्डलादि आभूषण, दासदासी, गाय घोडादि पशु, इन सब को छोड़कर जो सयम पालेंगे,वे देव हो जावेगे ।

थावरं जंगमं चेव, धणं धण्णं उवक्खरं ।
पच्चमाणस्स कम्मेहिं, णालं दुक्खाउ मोयणे ॥६॥

दुःख भोगते हुए प्राणी को चल अचल सम्पत्ति, धन, धान्य, उपकरण आदि कोई भी वस्तु दुःख से मुक्त करने में समर्थ नहीं है ॥६॥

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए ।
ण हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए ॥७॥

सभी आत्माओं को सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है। अपनी आत्मा सबको प्यारी है। ऐसा जानकर भय और वैर से निवृत्त होता हुआ, किसी की हिंसा नहीं करे॥७॥

आयाणं णरयं दिस्स, णायइज्ज तणामवि ।
दोगुंछी अप्पणो पाए, दिण्णं भुंजिज्ज भोयणं ॥८॥

परिग्रह को नरक का कारण जानकर तृण मात्र भी नहीं रखे। क्षुधा लगने पर आत्मा की जुगुप्सा करता हुआ, अपने पात्र में गृहस्थ का दिया हुआ आहार करे ॥८॥

इहमेगे उ मण्णंति, अप्पच्चक्खाय पावगं ।
आयरियं विदित्ताणं, सव्वदुक्खा विमुच्चइ ॥९॥

कई लोग मानते है कि पाप का त्याग किये बिना ही मात्र आर्य तत्त्व को जानकर आत्मा सभी दुःखो से छूट जाती है ॥९॥

भणंता अकरिंता य, बंधमोक्खपइण्णिणो ।
वायाविरियमित्तेणं, समासासेंति अप्पयं ॥१०॥

बन्ध और मोक्ष को मानने वाले ये वादी, संयम का

आचरण नहीं करते। केवल वचनो से ही आत्मा को आश्वासन देते है ॥१०॥

ण चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं।
विसण्णा पावकम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो ॥११॥

अनेक भाषाओ का ज्ञान आत्मा को शरणभूत नही होता और मन्त्रादि विद्या भी कैसे बचा सकती है? जो पाप कर्मों में फंसे हुए भी अपने को पडित मानते है, वे अज्ञानी है।

जे केइ सरीरे सत्ता, वण्णे रूवे य सव्वसो।
मणसा कायवक्केणं, सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥१२॥

कई अज्ञानी, शरीर वर्ण और रूप में, मन, वचन और काया से आसक्त हैं, वे सभी दुःख भोगने वाले है ॥१२॥

आवण्णा दीहमद्धाणं, संसारम्मि अणंतए।
तम्हा सव्वदिसं पस्सं, अप्पमत्तो परिव्वए ॥१३॥

अज्ञानी जीव, इस अनन्त ससार में अनादि अनन्त जन्म मरण करते हैं। इसलिये सभी दिशाओ को देखता हुआ और असयम से बचता हुआ अप्रमत्त होकर विचरे ॥१३॥

बहिया उड्ढमादाय, णावकंखे कयाइवि।
पुव्वकम्मक्खयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ॥१४॥

ससार से बाहर और सबसे ऊपर रहे हुए मोक्ष को उद्देश्य बनाकर, विषयादि की इच्छा कभी नही करे किन्तु पूर्व कर्मों को क्षय करने के लिए ही इस शरीर को बनाये रखे।

विविच्च कम्मुणो हेउं, कालकंखी परिव्वए ।
मायं पिंडस्स पाणस्स, कडं लद्धूण भक्खए ॥१५॥

मिथ्यात्व आदि कर्म के हेतुओ को दूर करके सयम और तप के अवसर की इच्छा रखता हुआ विचरे और गृहस्थो के अपने लिए वनाये हुए भोजन में से आहार पानी लेकर खावे।

सण्णिहिं च ण कुव्विज्जा, लेवमायाय संजए ।
पक्खीपत्तं समादाय, णिरवेक्खो परिव्वए ॥१६॥

साधु, लेशमात्र भी आहारादि का सचय नही करे और जैसे पक्षी अपने पखो के साथ चला जाता है, वैसे ही अनासक्त हो अपने उपकरण लेकर विचरे ॥१६॥

एसणासमिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे ।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवायं गवेसए ॥१७।

सयमी साधु, अप्रमादी होकर, एषणा समिति का पालन करता हुआ, ग्राम में अनियत वृत्ति से गृहस्थो से भिक्षा की गवेषणा करे ॥१७॥

एवं से उदाहु अणुत्तरणाणी, अणुत्तरदंसी, अणुत्तरणाण-दंसणधरे, अरहा णायपुत्ते भयवं वेसालिए वियाहिए। ॥१८॥ त्ति वेमि

इस प्रकार सर्वज्ञ सर्वदर्शी, परमोत्कृष्ट ज्ञान दर्शन के धारक, अरिहन्त, ज्ञातपुत्र वैशालिक भगवान् महावीर ने फरमाया है। ऐसा मैं कहता हूँ ॥१८॥

छठा अध्ययन समाप्त

एलयं सत्तमं अज्झयणं

जहाऽएसं समुद्दिस्स. कोइ पोसेज्ज एलयं ।
ओयणं जवसं देज्जा, पोसेज्जा वि सयंगणे ॥१॥

जिस प्रकार पाहुने के लिए कोई बकरे को पालते है और भात, जो आदि खिलाकर अपने ही घर मे पुष्ट करते है ।

तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेए महोयरे ।
पीणिए विउले देहे, आएसं परिकंखए ॥२॥

वह बकरा खा पीकर पुष्ट, चर्बी युक्त, बडे पेट और स्थूल देह वाला हो जाता है, तब पालक, पाहुने की प्रतीक्षा करता है ॥२॥

जाव ण एइ आएसे, ताव जीवइ से दुही ।
अह पत्तम्मि आएसे, सीसं छेत्तुण भुज्जइ ॥३॥

पाहुना नही आता तबतक बकरा जीता है और पाहुने के आने पर बकरे का सिर काटकर खाया जाता है, तब वह दुखी होता है ॥३॥

जहा से खलु ओरब्भे, आएसाए समीहिए ।
एवं बाले अहम्मिट्ठे, ईहई णरयाउयं ॥४॥

जिस प्रकार वह बकरा पाहुनें के लिये ही निश्चित है, उसी प्रकार अधर्मिष्ट,अज्ञानी जीव की नरकायु ही निश्चित है।

हिंसे बाले मुसावाई, अद्धाणम्मि विलोवए ।
अण्णदत्तहरे तेणे, माई कण्णु हरे सढे ॥५॥

इत्थीविसयगिद्धे य, महारंभपरिग्गहे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवूढे परंदमे ॥६॥

अयक्करभोई य, तुंदिले चियलोहिए ।
आउयं णरए कंखे, जहाएसं व एलए ॥७॥

अज्ञानी, हिंसक, मृषावादी, लुटेरे, विना दी हुई वस्तु लेने वाले चोर, कपटी, दुष्ट अध्यवसाय वाले, बुरे आचरण वाले, स्त्री और विषयो में आसक्त, महारम्भी, महापरिग्रही, मदिरा पीने वाले, मास भक्षक, पुष्ट शरीर वाले, दूसरो का दमन करने वाले, बढी हुई तोंद और प्रचुर रक्त वाले, उसी प्रकार नरकायु चाहते है, जिस प्रकार बकरे का स्वामी, पाहुना को चाहता है ॥५–७॥

आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामे य भुंजिया ।
दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहुं संचिणिया रयं ॥८॥

तओ कम्मगुरू जंतू, पच्चुपण्णपरायणे ।
अएव्व आगयाएसे, मरणंतम्मि सोयइ ॥९॥

वर्तमान काल का ही विचार करने वाला वह भारी–कर्मी प्राणी, आसन, शय्या, भवन, वाहन, धन और काम भोगों को तथा दुःख से सचय किये हुए धन को छोड़कर मरते

समय आता है, तब कर्म मल के भार से बहुत ही दबा हुआ मनुष्य, उस बकरे की तरह शोक करता है ॥८-९॥

तओ आउपरिक्खीणे, चुयादेह विहिंसगा।
आसुरियं दिसं बाला, गच्छन्ति अवसा तमं ॥१०॥

इसके बाद आयु क्षय होने से वह हिंसक अज्ञानी जीव, शरीर छोडकर कर्म के वश होकर नरक गति में जाता है ।१०।

जहा कागिणीए हेउं, सहस्सं हारए णरो।
अपत्थं अंबगं भोच्चा, राया रज्जं तु हारए ॥११॥

जिस प्रकार कोई मनुष्य, एक कागिणी के लिए हजार मुद्राएं खो देता है और कोई राजा अपथ्य आम खा कर (मृत्यु पा जाने से) राज्य खो देता है ॥११॥

एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए।
सहस्स गुणिया भुज्जो, आउं कामा य दिव्विया ॥१२॥

उसी प्रकार देवों के काम भोगो से मनुष्यो के काम भोग तुच्छ हैं। देवो के काम भोग और आयु, मनुष्यो से हजारो गुने अधिक हैं ॥१२॥

अणेग वासाणउया, जा सा पण्णवओ ठिई।
जाइं जीयंति दुम्मेहा, ऊणे वाससयाउए ॥१३॥

प्रज्ञावान् को देव गति में अनेको नयुत ● वर्ष की स्थिति

● चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व, चौरासी लाख पूर्व का एक नयुतांग और चौरासी लाख नयुतांग का एक नयुत होता है।

होती है। उस स्थिति को दुर्बुद्धि मनुष्य, सौ वर्ष की छोटी आयु में ही हार जाते है ॥१३॥

जहा य तिण्णि वाणिया, मूलं घेत्तूण णिग्गया।
एगोऽत्थ लहइ लाहं, एगो मूलेण आगओ ॥१४॥

जिस प्रकार तीन व्यापारी, मूल पूंजी लेकर व्यापार करने निकले। उनमें से एक ने लाभ प्राप्त किया और एक मूल पूंजी लेकर वापिस आया ॥१४॥

एगो मूलं वि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ॥१५॥

उनमें से तीसरा मनुष्य मूल धन भी खो आया। यह व्यावहारिक उदाहरण है, इसे धर्म में भी समझो ॥१५।

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे।
मूलच्छेएण जीवाणं, णरगतिरिक्खत्तणं धुवं ॥१६॥

मनुष्य भव, मूल पूंजी के समान है। देवगति लाभ के समान है। मूल अर्थात् मनुष्य भव को खो देने से जीव को निश्चय ही नरक और तिर्यच गति मिलती है ।१६।

दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया।
देवत्तं माणुसत्तं च, जं जिए लोलया सढे ॥१७॥

अज्ञानी को दो प्रकार की दुर्गति प्राप्त होती है, जो वध और बन्धन की मूल है। क्योंकि मूर्ख एवं लोलुपि, देव और मनुष्यत्व को हार जाता है ॥१७॥

तओ जिए सई होइ, दुविहं दुग्गइं गए ।
दुल्लहा तस्स उम्मग्गा, अद्धाए सुइरादवि ॥१८॥

वह हारा हुआ जीव, नरक और तिर्यञ्च गति मे बहुत लम्बे काल तक दुःख पाता रहता है । वहा से निकलना अति दुर्लभ है ॥१८॥

एवं जियं सपेहाए, तुलिया बालं च पंडियं ।
मूलियं ते पविस्संति, माणुसं जोणिमिंति जे ॥१९॥

इस प्रकार हारे हुए अज्ञानी की जीते हुए पण्डित पुरुष से तुलना करके जो जीव, मनुष्य योनि प्राप्त करते है, वे मूल पूजी पाते है ॥१९॥

वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे णरा गिहिसुव्वया ।
उवेंति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥२०॥

जो मनुष्य, गृहस्थ होते हुए भी विविध प्रकार की शिक्षाओ द्वारा सुव्रत (प्रकृतिभद्रतादि गुण) वाले हैं, वे मनुष्य योनि प्राप्त करते है, क्योकि प्राणियो के कर्म ही सच्चे है ।

जेसिं तु विउला सिक्खा, मूलियं ते अइच्छिया ।
सीलवंता सविसेसा, अदीणा जंति देवयं ॥२१॥

जो विस्तृत शिक्षा, विरति और उत्तरोत्तर गुणो वाले है, वे पुरुष, मूल को बढाकर और दीनता रहित होकर देवगति प्राप्त करते है ॥२१॥

एवमदीणवं भिक्खु, अगारिं च वियाणिया ।
कहण्णु जिच्चमेलिक्खं, जिच्चमाणो ण संविदे ॥२२॥

इस प्रकार देवगति रूप लाभ को प्राप्त करने वाले दीनता रहित साधु और गृहस्थ को जानता हुआ भी विषयी पुरुष, किस प्रकार देवगति के लाभ को हार जाता है, यह बात वह हारता हुआ भी नहीं जानता है ॥२२॥

जहा कुसग्गे उदगं, समुद्देण समं मिणे ।
एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए ॥२३॥

कुशाग्र पर रही हुई पानी की बूंद समुद्र के सामने नगण्य है । उसी प्रकार देवों के काम भोगों के आगे मनुष्यों के काम भोग तुच्छ है ॥२३॥

कुसग्गमित्ता इमे कामा, सन्निरुद्धम्मि आउए ।
कस्स हेउं पुरा काउं, जोगक्खेमं ण संविदे ॥२४॥

मनुष्यायु भी संक्षिप्त और विघ्नों से पूर्ण है और काम भोग भी डाभ पर रहे हुए जल बिन्दु के समान है । फिर किस लिए यह जीव, योग क्षेम (आनन्द) को नहीं जानता ॥२४॥

इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झइ ।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं, जं भुज्जो परिभस्सइ ॥२५॥

इस लोक में शब्दादि विषयों से निवृत्त नहीं होने वालों का आत्म प्रयोजन नष्ट हो जाता है, जिससे न्याययुक्त मोक्ष मार्ग को सुनकर और पाकर भी पुनः भ्रष्ट हो जाता है ।२५।

इह कामणियट्टस्स, अत्तट्ठे णावरज्झइ ।
पूइदेहणिरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुयं ॥२६॥

इसी भव में काम भोगों से निवृत्त होने वाले का आत्मार्थ नष्ट नहीं होता । वह अपवित्र देह को छोडकर देव होता है—ऐसा मैंने सुना है ॥२६॥

इड्ढी जुई जसो वण्णो, आउं सुहमणुत्तरं ।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु, तत्थ से उववज्जइ ॥२७॥

देव भव के बाद वह आत्मा, मनुष्य भव में—जहाँ सर्वोत्तम ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण, आयु और सुख हो वहाँ जन्म लेता है।

बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिया ।
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे, णरए उववज्जइ ॥२८॥

अज्ञानी की मूर्खता तो देखो कि वह अधर्म को स्वीकार करके धर्म का त्याग करता है । इससे वह अधर्म का आचरण करके नरक में उत्पन्न होता है ।

धीरस्स पस्स धीरत्तं, सव्वधम्माणुवत्तिणो ।
चिच्चा अहम्मं धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जई ॥२९॥

क्षमादि दस प्रकार के धर्मों के पालन करने वाले की धीरता देखो कि वह अधर्म का त्याग कर धर्मात्म का आचरण करता है और देवों में उत्पन्न होता है ।२९।

तुलिआण बालभावं, अबालं चेव पंडिए ।
चइऊण बालभावं, अबालं सेवए मुणी ।३०। त्ति बेमि

पण्डित मुनि, मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की तुलना करके मिथ्यात्व का त्याग करे और सम्यक् चारित्र का सेवन करे—ऐसा मैं कहता हूं ।३०।

सातवा अध्ययन समाप्त

काविलीयं अट्ठमं अज्झयणं

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए ।
किं णाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दुग्गई ण गच्छेज्जा ।१।

हे भगवन् ! इस असार, अस्थिर, अशाश्वत् और प्रचुर दुःख वाले संसार मे ऐसा कौनसा कर्म है कि जिससे मैं दुर्गति में न जा सकूं ॥१॥

विजहित्तु पुव्वसंजोगं, ण सिणेहं कहिंचि कुव्विज्जा ।
असिणेह सिणेहकरेहिं, दोसपओसेहिं मुच्चए भिक्खू ॥२॥

पूर्व सयोग को त्याग कर किसी से भी स्नेह नही करे। स्नेह करने वालो मे भी स्नेह नही रखता हुआ साधु, दोषो से मुक्त हो जाता है ॥२॥

तो णाणदंसणसमग्गो, हियणिस्सेसाए सव्वजीवाणं ।
तेसि विमोक्खणट्ठाए, भासई मुणिवरो विगयमोहो ॥३॥

फिर पूर्ण ज्ञान और दर्शन से युक्त वीतरागी महामुनि

कपिलजी, सभी जीवों के मोक्ष के लिए—उन्हे कर्मों से छुडाने के लिये यो कहने लगे ॥३॥

सव्वं गंथं कलहं च, विप्पजहे तहाविहं भिक्खू ।
सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो ण लिप्पइ ताई ॥४॥

साधु, कर्म बन्ध कराने वाले सभी प्रकार के परिग्रह और क्लेश को छोड दे । जीवो के रक्षक मुनि, सभी विषयो को बन्धन कारक देखता हुआ उनमे लिप्त नही होता है ॥४॥

भोगामिसदोसविसण्णे, हियणिस्सेयसबुद्धिवोच्चत्थे ।
बाले य मंदिए मूढे, बज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥५॥

भोग रूपी मास के दोषो से लिप्त हुआ और हितकारी ऐसे मोक्ष के विपरीत बुद्धिवाले, आलसी, मूर्ख और अज्ञानी जीव, श्लेष्म मे लिपटी हुई मक्खी की तरह ससार में फसते है ।५।

दुप्परिच्चया इमे कामा, णो सुजहा अधीरपुरिसेहिं ।
अह सन्ति सुव्वया साहू, जे तरंति अतरं वणिया व ॥६॥

कायर पुरुषो से इन काम भोगो का त्याग करना महा कठिन है. किन्तु जो सुव्रती साधु है, वे इन काम भोगो से पृथक् होकर व्यापारी के जहाज की तरह तिरजाते है ॥६॥

समणा मु एगे वयमाणा, पाणवहं मिया अयाणंता ।
मंदा णिरयं गच्छंति, बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं ॥७॥

"हम साधु है" इस प्रकार कहते हुए और प्राणिवध को नही जानते हुए व मृग जैसे मन्दबुद्धि वाले, कई अज्ञानी जीव, अपनी पाप दृष्टि से नरक मे जाते है ॥७॥

ण हु पाणवहं अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्व दुक्खाणं ।
एवमारिएहिं अक्खायं, जेहिं इमो साहुधम्मो पण्णत्तो ॥८॥

तीर्थङ्करो ने कहा है कि जो प्राणिवध का अनुमोदन भी करता है, तो वह कभी दुखो से मुक्त नहीं हो सकता। उन्होने यही साधु धर्म कहा है ॥८॥

पाणे य णाइवाएज्जा, से समिए त्ति वुच्चई ताई ।
तओ से पावयं कम्मं, णिज्जाइ उदगं व थलाओ ॥९॥

जो प्राणियो की हिंसा नहीं करता, वह छ काय का रक्षक और पाच समिति का धारक कहा जाता है। उससे पाप कर्म उसी प्रकार निकल जाते है, जिस प्रकार ऊची जगह पर गिरा हुआ पानी निकल जाता है ॥९॥

जगणिस्सिएहिं भूएहिं, तसणामेहिं थावरेहिं च ।
णो तेसिमारभे दंडं, मणसा वयसा कायसा चेव ॥१०॥

जगत् में रहे हुए त्रस और स्थावर जीवों को, मन वचन और काया से हिंसा का आरम्भ नहीं करे ॥१०॥

सुद्धेसणाओ णच्चा णं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ।
जायाए घासमेसिज्जा, रसगिद्धे ण सिया भिक्खाए ॥११॥

साधु शुद्ध एषणा को जानकर उसमें अपनी आत्मा को स्थापन करे और रसो में गृद्ध न होकर, सयम निर्वाह के लिए शुद्ध आहार की गवेषणा करे ॥११॥

पंताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं ।
अदु वुक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठाए णिसेवए मंथुं ॥१२॥

सयम पालनार्थ नीरस और ठण्डा आहार, पुराने उड़द के बाकले, कोरमा, नीरस चने और बोर आदि का चूर्ण मिले, तो भी सेवन करे ॥१२॥

जे लक्खणं च सुविणं, अंगविज्जं च जे पउंजंति ।
ण हु ते समणा वुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं ॥१३॥

जो साधु, लक्षण विद्या, स्वप्न विद्या और अग विद्या का प्रयोग करते है, वे निश्चय ही साधु नही कहे जाते । ऐसा आचार्यों ने कहा है ॥१३॥

इह जीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोएहिं ।
ते कामभोगरसगिद्धा, उववज्जंति आसुरे काए ॥१४॥

जो जीवन को अनियन्त्रित रखकर समाधि और योग से भ्रष्ट हो गये है, वे काम भोग और रस में आसक्त होकर असुरकाय में उत्पन्न होते है ॥१४॥

तत्तो वि य उवट्टित्ता, संसारं बहुं अणुपरियडंति ।
बहुकम्मलेवलित्ताणं, बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं ॥१५॥

फिर असुरकाय से निकल कर ससार में बहुत ही परिभ्रमण करते है । कर्म लेप से अतिशय लिप्त हुए उन प्राणियो को सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति बहुत ही दुर्लभ है ॥१५॥

कसिणं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज एगस्स ।
तेणावि से ण संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥१६॥

धन धान्यादि से भरा हुआ यह सारा लोक भी यदि कोई एक ही व्यक्ति को दे दे तो उससे भी सन्तोष नहीं होता। इस प्रकार आत्मा का तृप्त होना कठिन है ॥१६॥

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ ।
दो मासकयं कज्जं, कोडीए वि ण णिट्ठियं ॥१७॥

ज्यों ज्यों लाभ होता है, त्यों त्यों लाभ बढ़ता है। लाभ से लोभ की वृद्धि होती है। दो माशा सोने से होने वाला कार्य, करोड मोहरो से भी पूरा नहीं हुआ ॥१७॥

णो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासु णेगचित्तासु ।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेल्लंति जहा व दासेहिं ॥१८॥

साधु, पीनस्तन वाली, चचल चित्त राक्षसी रूप स्त्रियों में मूर्च्छित नहीं होवे। वे पुरुषों को लुभाकर उनके साथ दास की तरह व्यवहार करती हुई क्रीडा करती है ॥१८॥

णारीसु णोवगिज्झेज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे ।
धम्मं च पेसलं णच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ॥१९॥

अनगार भिक्षु, स्त्रियों में आसक्त नहीं होवे तथा स्त्री संग का त्याग कर, धर्म को ही हितकारी जाने और उसीमें आत्मा को स्थापन करे ॥१९॥

इइ एस धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्ध पण्णेणं ।
तरिहिंति जे उ काहिंति, तेहिं आराहिया दुवे लोग । त्ति वेमि ।

इस प्रकार विशुद्ध प्रज्ञावाले कपिल मुनि ने यह धर्म कहा है । जो इस धर्म का पालन करेगे, वे ससार से तिर जायगे । इस धर्म की आराधना करने वालो ने ही दोनो लोको की आराधना की है । ऐसा मै कहता हू ॥२०॥

आठवा अध्ययन समाप्त

नमिपवज्जा नवमं अज्झयणं

चइऊण देवलोगाओ, उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि ।
उवसन्तमोहणिज्जो, सरइ पोराणियं जाइं ॥१॥

नमिराज का जीव, देव लोक से चव कर मनुष्य लोक मे उत्पन्न हुआ और मोहनीय कर्म के उपशान्त होने से जाति-स्मरण ज्ञान द्वारा पूर्व जन्म को याद करने लगा ॥१॥

जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ।
पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिणिक्खमई णमी राया ॥२॥

भगवान् नमिराज ने पूर्व भव के स्मरण से स्वय बोध प्राप्त किया और पुत्र को राज्य पर स्थापित कर सर्व श्रेष्ठ धर्म का पालन करने के लिए गृहस्थाश्रम से निकले ॥२॥

सो देवलोगसरिसे, अंतेउरवरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु णमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ ॥३॥

नमिराज ने श्रेष्ठ अन्तपुर मे रहकर, देवलोक के समान उत्तम भोगो को भोगे और बोध प्राप्त करके भोगो को छोड दिया ॥३॥

मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिणिक्खंतो, एगंतमहिट्ठिओ भयवं ॥४॥

नगरो और जन-पदो के साथ मिथिला नगरी. सेना, रानिया और दास दासी, इन सभी को त्याग कर भगवान् नमिराज ने दीक्षा धारण की, और एकान्त (मोक्ष)का आश्रय लिया ॥४॥

कोलाहलगभूयं, आसी मिहिलाए पव्वयंतम्मि ।
तइया रायरिसिम्मि, णमिम्मि अभिणिक्खमंतम्मि ।५।

राजर्षि नमिराज के गृहत्याग कर दीक्षित होने पर मिथिला नगरी मे सर्वत्र कोलाहल होने लगा ॥५॥

अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जाठाणमुत्तमं ।
सक्को माहणरूवेणं, इमं वयणमब्बवी ॥६॥

सर्वोत्तम दीक्षा स्थान के लिए उद्यत हुए राजर्षि को शक्रेन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में आकर इस प्रकार कहा,–॥६॥

किएणु भो अज्ज मिहिलाए, कोलाहलगसंकुला ।
सुव्वंति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ॥७॥

हे नमिराज ! आज मिथिला के महलों और घरों में से कोलाहल से भरे हुए ये दारुण शब्द क्यों सुनाई देते हैं?

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥८॥

इन्द्र का प्रश्न सुनकर उसके हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमिराजर्षि, देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे ॥८॥

मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्तपुप्फफलोवेए, बहूणं बहूगुणे सया ॥९॥

मिथिला नगरी के उद्यान में पत्र, पुष्प और फलों से युक्त शीतल छाया वाला, बहुत से प्राणियों को सदा लाभ पहुँचाने वाला और मन को प्रसन्न करने वाला एक वृक्ष था ।

वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदंति भो ! खगा ।१०।

वह मनोरम वृक्ष अचानक वायु से उखड गया । इसलिये वे पक्षी आदि दुःखी, अशरण और पीडित होकर आक्रन्दन करने लगे ॥१०॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारण चोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥११॥

नमिराजर्षि के अर्थ को सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुआ इन्द्र, नमिराजर्षि से यों कहने लगा ॥११॥

एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मन्दिरं ।
भयवं अंतेउरं तेणं, कीस णं नावपेक्खह ॥१२॥

हे भगवन् ! वायु से प्रेरित हुई यह अग्नि, आपके महल को जला रही है । आप अपने अन्तपुर की ओर क्यों नहीं देखते ? ॥१२॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥१३॥

गाथा ८ वत् ॥१३॥

सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो णत्थि किंचणं ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, ण मे डज्झइ किंचणं ॥१४॥

मै सुख पूर्वक रहता हू और सुख से ही जीता हूँ । मिथिला में मेरा कुछ भी नहीं है । इसलिए उसके जलने पर मेरा कुछ भी नहीं जलता ॥१४॥

चत्तपुत्तकलत्तस्स, णिव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं ण विज्जई किंचि, अप्पियं पि ण विज्जइ ॥१५॥

पुत्र, स्त्रिया और सभी प्रकार के भौतिक व्यापार से निवृत्त होने वाले साधु के लिए न तो कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय ही है ॥१५॥

बहु खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ ॥१६॥

समस्त बन्धनो से मुक्त होकर एकत्व भाव मे रहने वाले अनगार मुनि को निश्चय ही बहुत सुख है ॥१६॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥१७॥

अर्थ-गाथा ११ के अनुसार ॥१७॥

पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य ।
उस्सूलग सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया ॥१८॥

हे क्षत्रिय ! किले, दरवाजे, मोर्चे, खाई, शतघ्नी (तोप) आदि रक्षा के साधन बनवा कर, उसके बाद दीक्षित होवे ।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥१९॥

अर्थ-गाथा ८ के अनुसार ॥१९॥

सद्धं णगरं किच्चा, तवसंवरमग्गलं ।
खंतिं णिउणपागारं तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥२०॥

हे विप्र ! मैंने अपने लिए श्रद्धा रूपी नगर बनाया है उस नगर की रक्षा के लिए क्षमा रूपी कोट का निर्माण किया, (उपशमादि रूप कोट के द्वार बनाये, उन द्वारो के लिए) तप और संवर रूपी दृढ अर्गला लगाई और त्रिगुप्ति रूप खाई

बुर्ज और तोपें तय्यार करके ऐसा प्रवन्ध कर लिया है कि जिससे दुर्जय ऐसे कर्म शत्रु का कुछ भी वस नही चल सके ।

धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया ।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमंथए ॥२१॥

मैने पराक्रम रूपी धनुष की ईर्यासमिति रूप डोरी वनाकर, धैर्यरूपी केतन से, सत्य के द्वारा उसे बाध दिया है ।

तवणारायजुत्तेणं, भित्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥२२॥

उस धनुष पर तप रूपी बाण चढा कर, कर्म रूप कवच का भेदन करता हूँ । इस प्रकार के सग्राम से निवृत्त होकर मुनि, भव भ्रमण से मुक्त हो जाते है ॥२२॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥२३॥

अर्थ—गाथा ११ के अनुसार ॥२३॥

पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाणगिहाणि य ।
बालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया ॥२४॥

हे क्षत्रिय ! महल और अनेक प्रकार के घर तथा क्रीडा स्थलो का निर्माण करवा कर फिर साधु बनो ॥२४॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥२५॥

अर्थ-गाथा ८ के अनुसार ।।२५।।

संसयं खलु सो कुणइ, जो मग्गे कुणइ घरं ।
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्वेज्ज सासयं ।।२६।।

जिसके हृदय में सशय है, वही मार्ग में घर बनाता है, किन्तु बुद्धिमान् तो वही है, जो इच्छित स्थान पर पहुच कर शाश्वत घर बनाता है ।।२६।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसीं, देविंदो इणमब्बवी ।।२७।।

अर्थ-गाथा ११ के अनुसार ।।२७।।

आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे ।
णगरस्स खेमं काऊणं, तओ गच्छसि खत्तिया ।।२८।।

हे क्षत्रिय ! डाकुओ, जान से मार कर लूटने वालों, गाठकट्टों और चोरो को वश में करके और नगर मे शान्ति स्थापित करके फिर त्यागी बने ।।२८।।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ।।२९।।

अर्थ-गाथा ८ के अनुसार ।।२९।।

असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादंडो पउंजइ ।
अकारिणोत्थ बज्झंति, मुच्चई कारओ जणो ।।३०।।

अज्ञान के कारण मनुष्यो से अनेक बार मिथ्यादण्ड

दिया जाता है। जिससे निरपराधी दण्डित हो जाते हैं और अपराधी छूट जाते हैं ॥३०॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥३१॥

अर्थ–११वीं गाथा के अनुसार ॥३१॥

जे केइ पत्थिवा तुज्झं, णाणमंति णराहिवा ।
वसे ते ठावइत्ता णं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥३२॥

हे क्षत्रिय ! जो राजागण, तुम्हारे सामने नहीं झुकते हैं, पहले उन्हें वश में करो, उसके बाद दीक्षित होओ ॥३२॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥३३॥

अर्थ–गाथा आठ के अनुसार ॥३३॥

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥३४॥

एक पुरुष, दुर्जय संग्राम में दस लाख सुभटों पर विजय प्राप्त करता है, और एक महात्मा अपनी आत्मा को ही जीतता है। इन दोनों में आत्म विजयी ही श्रेष्ठ है ॥३४॥

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ ।
अप्पाणमेवमप्पाणं, जिणित्ता सुहमेहए ॥३५॥

आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये। बाहर के युद्ध

से क्या लाभ है ? आत्मा से ही आत्मा को जीतने में सच्चा सुख मिलता है ॥३५॥

पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोभं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं ॥३६॥

पांच इन्द्रियां, क्रोध, मान, माया, लोभ और दुर्जय आत्मा, ये सब एक आत्मा के जीतने से स्वत: जीत लिये जाते हैं ॥३६॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥३७॥

अर्थ—गाथा ११ के अनुसार ॥३७॥

जइत्ता विउले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे ।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया ॥३८॥

हे राजन् ! बड़े-बड़े महायज्ञ करवा कर, श्रमण ब्राह्मणों को भोजन करा कर तथा दान, भोग और यज्ञ करके फिर निवृत्त होना ॥३८॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥३९॥

अर्थ—गाथा ८ के अनुसार ॥३९॥

जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए ।
तस्सावि संजमो सेओ, अदिंतस्स वि किंचणं ॥४०॥

जो मनुष्य, प्रति मास दसलाख गायों का दान करता है, उसकी अपेक्षा कुछ भी दान नहीं करने वाले मुनि का संयम अधिक श्रेष्ठ है ॥४०॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४१॥

अर्थ—गाथा ११ के अनुसार ॥४१॥

घोरासमं चइत्ताणं, अण्णं पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा ॥४२॥

हे नराधिपति ! आप घोर गृहस्थाश्रम का त्याग करके सन्यास आश्रम की इच्छा करते हैं, किन्तु आपको संसार में ही रहकर उपोषध में रत रहना चाहिए ॥४२॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥४३॥

अर्थ—गाथा ८ के अनुसार ॥४३॥

मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए ।
ण सो सुअक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥४४॥

जो अज्ञानी, मास मासखमण का तप करते हैं और कुशाग्र परिमाण आहार से पारणा करते हैं, वे तीर्थङ्कर प्ररूपित धर्म की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ॥४४॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥१७॥

अर्थ-गाथा ११ के अनुसार ॥४५॥

हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं ।
कोसं च वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥४६॥

हे क्षत्रिय ! सोना, चाँदी, मणि, मोती. कांसी के बर्तन वस्त्र, वाहन तथा भण्डार की वृद्धि करके बाद में संसार छोड़िये ।४६॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥१९॥

अर्थ-गाथा ८ के अनुसार ॥४७॥

सुवण्ण रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया ।
णरस्स लुद्धस्स ण तेहि किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥४८॥

यदि कैलाश पर्वत के समान सोने चांदी के असंख्य पर्वत हो जांय तो भी मनुष्य को सन्तोष नहीं होता । क्योंकि इच्छा तो आकाश की तरह अनन्त है ॥४८॥

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्णं णालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे ॥४९॥

चावल, जौ, स्वर्ण तथा पशुओं से परिपूर्ण पृथ्वी, किसी एक मनुष्य को दे दी जाय, तो भी उसकी इच्छा पूर्ण होना कठिन है। यह जानकर बुद्धिमान् पुरुष तप का आचरण करे।

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥५०॥

अर्थ—गाथा ११ के अनुसार ॥५०॥

अच्छेरगमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा ।
असंते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहम्मसि ॥५१॥

हे राजन्! आश्चर्य है कि आप प्राप्त भोगों को छोड़ रहे हैं और अप्राप्य काम भोगों की इच्छा करते हैं। किन्तु इससे आपको संकल्प विकल्प होगा और पश्चात्ताप करना पड़ेगा ॥५१॥

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी ॥५२॥

अर्थ—गाथा ८ के अनुसार ॥५२॥

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ॥५३॥

काम भोग शल्य रूप है, विषरूप है और आशीविष सर्प के समान है। काम भोग की अभिलाषा करने वाले, काम भोगों का सेवन नहीं करते हुए भी दुर्गति में जाते हैं ॥५३॥

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई ।
माया गइपडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं ॥५४॥

क्रोध करने से जीव नरक में जाता है, मान से नीच गति होती है, माया से शुभगति का नाश होता है और लोभ से इस लोक और परलोक में भय होता है ॥५४॥

अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इंदत्तं ।
वंदइ अभित्थुणंतो, इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं ॥५५॥

देवेन्द्र ने ब्राह्मण का रूप त्याग दिया और वैक्रेय से असली रूप बनाकर श्री नमिराज की मधुर वचनों से इस प्रकार वन्दना और स्तुति करने लगा ॥५५॥

अहो ते णिज्जिओ कोहो, अहो माणो पराइओ ।
अहो ते णिरक्किया माया, अहो लोहो वसीकओ ॥५६॥

हे नमिराज ! आश्चर्य है कि आपने क्रोध को जीत लिया, आश्चर्य है कि आपने मान को हरा दिया, माया को दूर कर दी और लोभ को वश में कर लिया ॥५६॥

अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं ।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा ॥५७॥

मुनिवर ! आपकी सरलता श्रेष्ठ है, आपकी निरभिमानता श्रेष्ठ है, आपकी क्षमा और निर्लोभता उत्तम एवं आश्चर्यकारी है ॥५७॥

इहंसि उत्तमो भंते, पेच्चा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि णीरओ ॥५८॥

हे भगवान् ! आप यहाँ भी उत्तम हैं और परलोक में भी उत्तम होंगे । आप कर्म रज रहित होकर लोकोत्तम सिद्ध स्थान को प्राप्त करेंगे ॥५८॥

एवं अभित्थुणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए ।
पायाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदइ सक्को ॥५९॥

इस प्रकार उत्तम श्रद्धा भक्ति पूर्वक राजर्षि नमिराज की स्तुति और प्रदक्षिणा करता हुआ इन्द्र, बार-बार वन्दना नमस्कार करने लगा ॥५९॥

तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुंडलतिरीडी ॥६०॥

इसके बाद सुन्दर और चपल कुण्डल तथा मुकुट धारण करने वाला इन्द्र, मुनीन्द्र नमिराज के चक्र एवं अंकुश चिन्ह वाले चरणों में वन्दना करके आकाश मार्ग से देवलोक में चला गया ॥६०॥

णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥६१॥

गृह त्याग कर श्रमण बने हुए विदेहाधिपति नमिराज की साक्षात् इन्द्र ने परीक्षा की । किन्तु वे संयम से किंचित्

भी विचलित नहीं हुए और अपनी आत्मा को विशेष नम्र बनाया ।।६१।।

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से नमि रायरिसि ।६२।त्तिबेमि

जो तत्त्वज्ञ. पण्डित एवं विचक्षण पुरुष हैं, वे नमिराजर्षि की तरह काम भोगों से निवृत्त होकर संयम में निश्चल रहते हैं ।

नौवां अध्ययन समाप्त

दुमपत्तयं दसमं अज्झयणं

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।१।।

जिस प्रकार रात्रियों के बीतने पर वृक्ष का पत्ता पीला होकर गिर जाता है, उसी तरह मनुष्यों का जीवन है । अत-एव हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।।१।।

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ।।२।।

जिस प्रकार कुश के अग्रभाग पर रही हुई ओस की बूंद थोड़े समय ही ठहरती है, उसी प्रकार मनुष्यों का जीवन है । इसलिए हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर ।।२।।

इह इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए ।
विहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३॥

थोड़ी आयु और अनेकों विघ्न वाले इस जीवन में पूर्वकृत कर्म रज को दूर करने में हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर ॥३॥

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं ।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥४॥

सभी प्राणियों के लिए मनुष्य जन्म, बहुत लम्बे काल में भी मिलना दुर्लभ है । क्योंकि दुष्कर्म का विपाक अत्यन्त दृढ़ होता है, इसलिए हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर ॥४॥

पुढविक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥५॥

पृथ्वीकाय में गया हुआ जीव, उत्कृष्ट असंख्यात काल तक उसी में रहता है । इसलिए हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर ॥५॥

आउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम मा ! पमायए ॥६॥

अपकाय में गया हुआ जीव, उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है, इसलिये हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर ।

तेउकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥७॥

तेउकाय में (पूर्ववत्) ॥७॥

वाउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम मा पमायए ॥८॥

वायुकाय में....पूर्ववत् ॥८॥

वणस्सइकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालमणंतदुरंतयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥९॥

वनस्पतिकाय में गया हुआ जीव, इसी काय में दुःख से अन्त होने वाले उत्कृष्ट अनन्त काल तक रहता है। इसलिए हे गौतम ! समय... ॥९॥

बेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१०॥

दो इन्द्रिय वाली काया में गया हुआ जीव, उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है। इसलिए हे गौतम ! समय.... ।

तेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥११॥

तीन इन्द्रिय वाली काया में....पूर्ववत् ॥११॥

चउरिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१२॥

चार इन्द्रिय वाली काया में....पूर्ववत् ॥१२॥

पंचिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
सत्तट्ठभवग्गहणे, समयं गोयम! मा पमायए ॥१३॥

पंचेन्द्रिय (तिर्यंच) जाति में गया हुआ जीव उत्कृष्ट सात आठ भव तक रहता है। इसलिए हे गौतम! समय...

देवे नेरइए य गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
इक्केक्कभवग्गहणे, समयं गोयम! मा पमायए ॥१४॥

देव और नारक में गया हुआ जीव, एक ही भव करता है। इसलिये हे गौतम! समय..... ॥१४॥

एवं भवसंसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमायबहुलो, समयं गोयम! मा पमायए ॥१५॥

इस प्रकार प्रमाद की अधिकता से जीव, अपने शुभाशुभ कर्मों से संसार में भ्रमण करते हैं। इसलिए हे गौतम! समय.... ॥१५॥

लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरियत्तणं पुणरावि दुल्लहं।
बहवे दसुया मिलक्खुया, समयं गोयम! मा पमायए ॥१६॥

मनुष्य जन्म मिल जाने पर भी आर्यत्व पाना कठिन है। क्योंकि मनुष्यों में भी बहुत से चोर और म्लेच्छ होते हैं। इसलिए हे गौतम! समय..... ॥१६॥

लद्धूण वि आरियत्तणं, अहीणपंचिंदियया हु दुल्लहा।
विगलिन्दियया हु दीसइ, समयं गोयम! मा पमायए॥१७॥

मनुष्य भव और आर्यत्व पाकर भी पांचों इन्द्रियों का पूर्ण होना दुर्लभ है। क्योंकि बहुत से मनुष्यों में इन्द्रियों की विकलता देखी जाती है। इसलिए हे गौतम! समय....।१७।

अहीणपंचिंदियत्तं वि से लहे, उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा।
कुतित्थिनिसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१८॥

पांचों इन्द्रियां पूर्णरूप से मिलने पर भी उत्तम धर्म का सुनना निश्चय ही दुर्लभ है। क्योंकि बहुत से मनुष्य कुतीर्थी की सेवा करने वाले होते हैं। इसलिए हे गौतम! समय.....

लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा।
मिच्छत्तनिसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१९॥

यदि उत्तम धर्म का श्रवण भी मिल जाय, तो उस पर श्रद्धा होना अत्यन्त कठिन है। इसलिए हे गौतम! समय...

धम्मं पि हु सद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया।
इह कामगुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम! मा पमायए॥२०॥

धर्म पर श्रद्धा होने पर भी उसका काया से आचरण करना अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिए हे गौतम! समय....।२०।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सोयबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२१॥

हे गौतम ! तेरा शरीर जीर्ण होता जा रहा है। केश सफेद हो रहे हैं और श्रोत्र बल क्षीण हो रहा है। अतः समय मात्र.... ।२१।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंतिते ।
से चक्खुबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२२॥

हे गौतम ! तेरा शरीर जीर्ण और केश सफेद हो रहे हैं और नेत्र ज्योति क्षीण हो रही है, इसलिए समय.... ।२२।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंतिते ।
से घाणबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२३॥

तेरा शरीर जीर्ण और केश सफेद हो रहे हैं और घ्राण शक्ति नष्ट हो रही है। इसलिए हे गौतम ! समय.... ।२३।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते ।
से जिब्भबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२४॥

तेरा शरीर जीर्ण...जिव्हा बल क्षीण हो रहा है.... ।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते ।
से फासबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२५॥

तेरा शरीर जीर्ण....स्पर्श बल क्षीण हो रहा है..... ।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते ।
से सव्वबले य हायइ, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२६॥

तेरा शरीर जीर्ण....सभी प्रकार का बल क्षीण हो रहा है इसलिए हे गौतम.....।२६।

अरई गंडं विसूइया, आयंका विविहा फुसंति ते।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम! मा पमायए ॥२७॥

अरति, फोड़े, फुन्सी, अजीर्ण और विविध प्रकार के शीघ्र घात करने वाले रोग लगते हैं, जो शरीर को अशक्त और नष्ट कर देते है। इसलिए हे गौतम! समय...

वुच्छिंद सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम! मा पमायए ॥२८॥

जिस प्रकार शरद ऋतु का कमल, जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार अपने स्नेह भाव को त्याग देने में हे गौतम...॥२८॥

चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं।
मा वंतं पुणो वि आइए, समयं गोयम! मा पमायए ॥२९॥

धन और स्त्री का त्याग करके तेने अनगार वृत्ति ग्रहण की है। अतः वमन किये हुए विषयों से दूर ही रहने में .. ..

अवउज्झिय मित्तबंधवं, विउलं चेव धणोहसंचयं।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम! मा पमायए ॥३०॥

मित्र, वान्धव तथा विपुल धन राशि को छोडकर पुनः उनकी इच्छा मत कर। इनसे विरक्त रहने में हे गौतम .. ..

ण हु जिणे अज्ज दीसइ, बहुमए दीसइ मग्गदेसिए।
संपइ णेयाउए पहे, समयं गोयम! मा पमायए ॥३१॥

वर्त्तमान समय में जिनेश्वर देव दिखाई नहीं देते, किन्तु

उनका बताया हुआ मोक्ष मार्ग दिखाई देता है, इस प्रकार भविष्य में आत्मार्थी लोग कहेंगे, तो हे गौतम ! समय....

अवसोहिय कंटगापहं, ओइण्णो सि पहं महालयं।
गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३२॥

हे गौतम ! तू कुतीर्थ रूप कण्टकमय मार्ग को छोड़कर मोक्ष के विशाल मार्ग में आया है। इसलिए समय.. ..

अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमे वगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३३॥

जिस प्रकार निर्बल भार वाहक, विषम मार्ग में जाकर धैर्य खो देता है और भार को छोड़कर बाद में पछताता है उसी प्रकार प्रमादवश तुम्हें पश्चात्ताप करने का अवसर नहीं आवे, इसलिए हे गौतम ! समय.. .. ॥३३॥

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पारंगमित्तए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३४॥

तुम निश्चित ही संसार महासमुद्र से तिर गये हो, फिर किनारे पहुंच कर क्यों रुक गये। संसार पार होने में है हे गौतम ! .. .. ॥३४॥

अकलेवरसेणिमूसिया, सिद्धिं गोयम लोयं गच्छसि।
खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३५॥

हे गौतम ! सिद्ध पद की श्रेणी पर चढ़ कर शान्ति पूर्वक उस कल्याणकारी सर्वोत्तम सिद्ध लोक को प्राप्त करने में समय मात्र भी प्रमाद मत कर ॥३५॥

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए ।
संतिमग्गं च वूहए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३६॥

हे गौतम ! तू ग्राम, नगर अथवा जंगल में गया हुआ तत्त्वज्ञ शान्त और संयत होकर मुनि धर्म का पालन कर तथा मोक्षमार्ग की वृद्धि करने में समय मात्र भी प्रमाद मत कर ।

बुद्धस्स निसम्म भासियं, सुकहियमट्ठपओवसोहियं ।
रागं दोसं च छिंदिया, सिद्धिगइं गए गोयमे । त्ति बेमि।

सर्वज्ञ प्रभु का फरमाया हुआ, अर्थ और पदों से सुशोभित भाषण सुनकर श्री गौतम स्वामी, राग द्वेष का नाश करके सिद्ध गति को प्राप्त हुए । ऐसा मैं कहता हूं ॥३७॥

दसवां अध्ययन समाप्त

बहुसुयपुज्जं एगारसं अज्झयणं

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।
आयारं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥१॥

अब मैं संयोगों से मुक्त, अनगार भिक्षु के आचार को प्रकट करता हूं सो अनुक्रम से सुनो ॥१॥

जे यावि होइ निव्विज्जे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
अभिक्खणं उल्लवई, अविणीए अबहुस्सुए ॥२॥

जो विद्या रहित है अथवा विद्या सहित है, किन्तु

अभिमानी, विषयों में गृद्ध, अजितेन्द्रिय, अविनीत और बार-बार बिना विचारे बोलता है, वह अबहुश्रुत है ॥२॥

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई ।
थंभा कोहा पमाएणं, रोगेणालस्सएण य ॥३॥

मान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य, इन पांच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती ॥३॥

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ ।
अहस्सिरे सया दंते, न य मम्ममुदाहरे ॥४॥
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए ।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥५॥

आठ स्थानों से जीव शिक्षा के योग्य कहा जाता है-, १ अधिक नहीं हंसने वाला, २ इन्द्रियों का सदा दमन करने वाला, ३ मार्मिक वचन नहीं बोलने वाला, ४ शुद्धाचारी, ५ अखण्डित आचारी, ६ विशेष लोलुपता रहित, ७ क्रोध रहित और ८ सत्यानुरागी, शिक्षाशील कहा जाता है ।४-५।

अह चोद्दसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ संजए ।
अविणीए वुच्चई सो उ, निव्वाणं च न गच्छइ ॥६॥

इन चौदह स्थानों में वर्तता हुआ संयती, अविनीत कहा जाता है । वह निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता ॥६।

अभिक्खणं कोही हवइ, पबंधं च पकुव्वइ ।
मेत्तिज्जमाणो वमइ, सुयं लद्धूण मज्जइ ॥७॥

१ बार-बार क्रोध करने वाला, क्रोध का प्रबन्ध करने वाला, ३ मित्र भाव छोड़ने वाला और ४ श्रुत ज्ञान का अहंकार करने वाला ॥७॥

अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पइ ।
सुप्पियस्साvि मित्तस्स, रहे भासइ पावगं ॥८॥

५ किसी प्रकार की स्खलना से आचार्यादि का तिरस्कार करने वाला, ६ मित्रों पर क्रोध करने वाला, ७ अत्यन्त प्रिय को भी उसके पोछे निन्दा करने वाला ॥८॥

पइन्नवाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अनिग्गहे ।
असंविभागी अवियत्ते, अविणीए त्ति वुच्चई ॥९॥

८ असम्बद्ध वचन बोलने वाला, ९ द्रोही, १० अभिमानी, ११ रसादि में गृद्ध, १२ इन्द्रियों को वश में नहीं करने वाला, १३ असंविभागी और १४ अप्रीति रखने वाला अविनीत कहलाता है ॥९॥

अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चई ।
नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥१०॥

इन पन्द्रह गुण वाला सुविनीत कहलाता है,-१ नम्रवृत्ति वाला, २ चपलता रहित, ३ माया रहित और ४ कुतूहल रहित ॥१०॥

अप्पं च अहिक्खिवई, पबंधं च न कुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो भयई, सुयं लद्धुं न मज्जई ॥११॥

५ तिरस्कार नहीं करने वाला, ६ क्रोधादि का प्रबन्ध नहीं करने वाला, ७ मित्रता निभाने वाला, ८ श्रुत पढ़कर अहंकार नहीं करने वाला ॥११॥

न य पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई।
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासइ ॥१२॥

९ गुरु आदि की स्खलना होने पर तिरस्कार नहीं करने वाला, १० मित्रों पर क्रोध नहीं करने वाला और ११ अप्रिय मित्र का भी जो पीछे से भला ही बोलता है ॥१२॥

कलहडमरवज्जिए, बुद्धे य अभिजाइए।
हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति वुच्चई ॥१३॥

१२ क्लेश और हिंसा को वर्जने वाला, १३ संयम का निर्वाह करने वाला, १४ इन्द्रियों को वश में करने वाला और १५ तत्वज्ञ लज्जावन्त हो वह सुविनीत कहलाता है ॥१३॥

वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई ॥१४॥

जो सदा गुरुकुल में रहने वाला, समाधि भाव में रहने वाला, उपधान तप करने वाला, प्रिय करने और प्रिय बोलने वाला हो, वही शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है ॥१४॥

जहा संखम्मि पयं निहियं, दुहओ वि विरायइ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो कित्ती तहा सुयं ॥१५॥

जैसे शंख में रहा हुआ दूध, दो प्रकार से शोभा पाता

है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म कीर्ति और श्रुत शोभा पाते हैं ॥१५॥

जहा से कंबोयाणं, आइण्णे कंथए सिया ।
आसे जवेण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१६॥

जैसे कम्बोज देश के घोड़ों में गुणयुक्त घोड़ा प्रधान होता है और गति-चाल में भी प्रधान होता है, वैसे ही बहुश्रुत में धर्म कीर्ति और श्रुत शोभा पाते हैं ॥१६॥

जहाइण्णसमारूढे, सूरे दढपरक्कमे ।
उभओ नंदिघोसेणं, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१७॥

जिस प्रकार उत्तम अश्व पर चढ़ा हुआ दृढ़ पराक्रम वाला सुभट, दोनों तरफ नंदिघोष से शोभा पाता है.....

जहा करेणुपरिकिण्णे, कुंजरे सट्ठिहायणे ।
बलवंते अप्पडिहए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१८॥

जिस प्रकार हथिनियों से घिरा हुआ साठ वर्ष का बलवान् और अपराजित हाथी शोभा पाता है, उसी.....

जहा से तिक्खसिंगे, जायक्खंधे विरायई ।
वसहे जूहाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१९॥

जिस प्रकार तीक्ष्ण सींग और पुष्ट कन्धे वाला वृषभ अपने यूथ का अधिपति होकर शोभा पाता है, उसी.....

जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए ।
सीहे मियाण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२०॥

जिस प्रकार तीखी दाढ़ों वाला और किसी से नहीं दबने वाला प्रचण्ड सिंह, मृगों में श्रेष्ठ होता है। उसी....

जहा से वासुदेवे, संखचक्कगदाधरे।
अप्पडिहयबले जोहे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२१॥

जिस प्रकार शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाले वासुदेव, अप्रतिहत बलवान योद्धा हैं, उसी प्रकार.....

जहा से चाउरंते, चक्कवट्टी महिड्ढिए।
चोद्दसरयणाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२२॥

जिस प्रकार भरतक्षेत्र के चारों दिशाओं के अन्त तक राज्य करने वाला चक्रवर्ती, महा ऋद्धिशाली और १४ रत्नों का स्वामी होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत .. ..।२२।

जहा से सहस्सक्खे, वज्जपाणी पुरंदरे।
सक्के देवाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२३॥

जिस प्रकार सहस्र नेत्रवाला, वज्रधारी, पुरन्दर-पुर का विदारण करने वाला, देवाधिपति, इन्द्र शोभा पाता है.....

जहा से तिमिरविद्धंसे, उच्चिट्ठंते दिवायरे।
जलंते इव तेएण, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२४॥

जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला उगता हुआ सूर्य अपने तेज से शोभा पाता है, उसी प्रकार बहुश्रुत.....

जहा से उडुवई चंदे, नक्खत्तपरिवारिए।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२५॥

जिस प्रकार नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा, नक्षत्रों से घिरा हुआ पूर्णमासी को पूर्ण रूप से शोभित होता है। उसी...

जहा से सामाइयाणं, कोट्ठागारे सुरक्खिए।
नाणाधन्नपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२६॥

जैसे संग्रह करने वालों के धान्यादि के कोठे सुरक्षित होते हैं। उसी प्रकार.. .. ॥२६॥

जहा सा दुमाण पवरा, जम्बू नाम सुदंसणा।
अणाढियस्स देवस्स, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२७॥

जिस प्रकार अनादृत देव से अधिष्ठित सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत साधु भी सब साधुओं में श्रेष्ठ है ॥२७॥

जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरंगमा।
सीआ नीलवंतपवहा, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२८॥

जिस प्रकार नीलवन्त पर्वत से निकल कर, समुद्र में मिलने वाली सीता नदी, सब नदियों में श्रेष्ठ है.. ॥२८॥

जहा से नगाण पवरे, सुमहं मंदरे गिरी।
नाणोसहिपज्जलिए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२९॥

जिस प्रकार सभी पर्वतों से बहुत ऊँचा और नाना प्रकार की औषधियों से देदीप्यमान् ऐसा सुमेरु पर्वत श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत.. ..॥२९॥

जहा से सयंभूरमणे, उदही अक्खओदए ।
नाणारयणपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥३०॥

जिस प्रकार स्वयंभूरमण समुद्र, अक्षय जल और नाना प्रकार के रत्नों से भरा हुआ है, उसी प्रकार बहुश्रुत ३०

समुद्दगंभीरसमा दुरासया, अचक्किया केणइ दुप्पहंसया ।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो, खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥

बहुश्रुत, समुद्र के समान गम्भीर, दुर्जय, निर्भय, किसी से नहीं दबने वाले, विपुल श्रुतज्ञान से पूर्ण और छःकाय के रक्षक होकर, कर्मों को क्षय करके मोक्ष प्राप्त हुए और होते हैं ॥३१॥

तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए ।
जेणप्पाणं परं चेव, सिद्धिं संपाउणेज्जासि ॥३२। त्ति बेमि

इसलिए मोक्ष की गवेषणा करने वाला साधक, उस श्रुतज्ञान को पढ़े—जो अपनी और दूसरों की आत्मा को निश्चय ही मोक्ष में पहुँचाने वाला हो ॥३२॥

ग्यारहवां अध्ययन समाप्त

हरिएसिज्जं बारहं अज्झयणं

सोवागकुलसंभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी ।
हरिएसबलो नाम, आसि भिक्खू जिइंदिओ ॥१॥

चाण्डाल कुल में उत्पन्न होकर उत्तम गुणों के धारक एवं जितेन्द्रिय भिक्षुक—ऐसे हरिकेशबल नाम के मुनि थे ॥१॥

इरिएसणभासाए, उच्चारसमिईसु य ।
जओ आयाणनिक्खेवे, संजओ सुसमाहिओ ॥२॥

वे ईर्या, भाषा, एषणा, आदान—भण्डमात्र--निक्षेपणा और उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिस्थापनिका ऐसी पाँच समिति में यतना करने वाले, संयमवान् और श्रेष्ठ समाधि वाले थे ॥२॥

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ ।
भिक्खट्ठा बंभइज्जम्मि, जन्नवाडमुवट्ठिओ ॥३॥

मन, वचन एवं काय गुप्ति वाले, जितेन्द्रिय वे मुनि, भिक्षा के लिए यज्ञशाला में—जहाँ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे—आये।

तं पासिऊणं एज्जंतं, तवेण परिसोसियं ।
पंतोवहिउवगरणं, उवहसंति अणारिया ॥४॥

तप से जिनका शरीर शुष्क हो गया है, जिनके उपकरण जीर्ण और मलीन हो गये हैं—ऐसे उन मुनि को आते देखकर अनार्य के समान वे ब्राह्मण उनकी हंसी करने लगे ।४।

जाईमयपडिथद्धा, हिंसगा अजिइंदिया ।
अबंभचारिणो बाला, इमं वयणमब्बवी ॥५॥

वे जातिमद से घमण्डी बने हुए, हिंसक, अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी एवं अज्ञानी, उन मुनि के प्रति इस प्रकार बोलने लगे ॥५॥

कयरे आगच्छइ दित्तरूवे, काले विकराले फोक्कनासे ।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, संकरदूसं परिहरिय कंठे ॥६॥

घृणित रूप, काले रंग का, चपटी नाक वाला, विकराल पिशाच जैसा, यह कौन आ रहा है, जो गले में अत्यन्त जीर्ण और गन्दे वस्त्र पहने हुए है ॥६॥

कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे, काए व आसाइहमागओ सि ।
ओमचेलगा पंसुपिसायभूया, गच्छक्खलाहि किमिहं ठिओ सि॥

जीर्ण वस्त्र वाला, पिशाच जैसा अदर्शनीय ऐसा तू कौन है ? यहां क्यों आया है ? निकल जा यहां से ॥७॥

जक्खो तहिं तिंदुगरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स ।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइ मुदाहरित्था ॥८॥

उस समय तन्दुक वृक्ष पर रहने वाला उन महामुनि पर अनुकम्पा रखने वाला यक्ष, अपना शरीर छुपा कर इस प्रकार कहने लगा ॥८॥

समणो अहं संजओ बंभयारी, विरओ धणपयणपरिग्गहाओ ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अन्नस्स अट्ठा इहमागओमि ॥९॥

में श्रमण, संयती व ब्रह्मचारी हूं और धन परिग्रह एवं पचन पाचन से निवृत्त हूं । इस भिक्षावेला में दूसरों के द्वारा, उनके लिये बनाये हुए अन्न के लिए यहां आया हूं ॥९॥

वियरिज्जइ खज्जई भुज्जइ य, अन्नं पभूयं भवयाणमेयं ।
जाणाहि मे जायणजीविणो त्ति, सेसावसेसं लहऊ तवस्सी ॥

यह वहुतसा अन्न बांटा जा रहा है, खाया और भोगा जा रहा है। आप जानते हैं कि मैं भिक्षा से ही आजीविका करने वाला हूं। इसलिये मुझ तपस्वी को आहार देकर लाभ प्राप्त करो ॥१०॥

उवक्खडं भोयण माहणाणं, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं ।
न ऊ वयं एरिसमन्नपाणं, दाहामु तुज्झं किमिहं ठिओसि ॥

ब्राह्मण बोले—उत्तम प्रकार से बनाया हुआ यह आहार, ब्राह्मणों के लिए ही है। इसलिए इस प्रकार का अन्न हम तुम्हें नहीं देंगे। तुम यहाँ क्यों खड़े हो ? ॥११॥

थलेसु बीयाइं ववंति कासया, तहेव निन्नेसु य आससाए ।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं ॥

यक्ष—-जिस प्रकार फल की आशा से कृषक लोग ऊँची और नीची भूमि में खेती करते हैं, उसी प्रकार आप भी मुझे श्रद्धा से भिक्षा दो। आपको निश्चय ही पुण्य होगा ॥१२॥

खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए, जेहिं पकिण्णा विरुहंति पुण्णा ।
जे माहणा जाइविज्जोववेया, ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं ॥१३॥

ब्राह्मण—लोक में जो पुण्य क्षेत्र हैं, उन्हें हम जानते हैं, जिनमें बहुत ही पुण्य होता है। जो जाति और विद्या से सम्पन्न ब्राह्मण हैं, वे निश्चय ही उत्तम क्षेत्र हैं ॥१३॥

कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइविज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥१४॥

यक्ष—जिनमें क्रोध मानादि और हिंसा, मृषा, अदत्त तथा परिग्रह है, वे ब्राह्मण, जाति और विद्या से हीन हैं। ऐसे क्षेत्र निश्चय ही पापकारी हैं ॥१४॥

तुब्भेत्थ भो भारधरा गिराणं, अट्ठं न जाणाह अहिज्ज वेए।
उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥१५॥

अहो! तुम शब्दों के भारवाहक हो। तुम वेद सीख कर भी उसका अर्थ नहीं जानते। जो मुनि, ऊँच नीच कुल में से भिक्षा लेते हैं, वे ही दान के सुन्दर क्षेत्र है ॥१५॥

अज्झावयाणं पडिकूलभासी, पभाससे किण्णु सगासि अम्हं।
अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं, न य णं दाहामु तुमं नियंठा ॥

छात्र बोले—तू हमारे सामने अध्यापकों के विरुद्ध क्या बक रहा है? हे निर्ग्रन्थ! यह आहार पानी भले ही नष्ट हो जाय, पर हम तुझे नहीं देंगे ॥१६॥

समिईहिं मज्झं सुसमाहियस्स,गुत्तीहि गुत्तस्स जिइंदियस्स।
जइ मे न दाहित्थ अहेसणिज्जं, किमिज्ज जन्नाण लहित्थ लाहं

यक्ष बोला—हे आर्यो! मुझ जैसे सुसमाधिवन्त, गुप्ति-वन्त, जितेन्द्रिय को यह एषणीय आहार नहीं दोगे, तो तुम यज्ञों का क्या फल पा सकोगे? ॥१७॥

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा, अज्झावया वा सह खंडिएहिं।
एयं तु दंडेण फलेण हंता, कंठम्मि घेत्तूण खलेज्ज जो णं।

अध्यापक ने कहा—अरे! यहां कोई क्षत्रिय, यज्ञ रक्षक

अथवा छात्र और अध्यापक हैं ? इस साधु को दण्ड या मुष्टि से मारकर और गरदन पकड़ कर बाहर निकाल दो ॥१८॥

अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दंडेहिं वित्तेहिं कसेहिं चेव, समागया तं इसि तालयंति ॥

अध्यापक की बात सुनकर बहुत से कुमार दौड़ आये और दंड, बेंत और चाबुक से मारने लगे ॥१९॥

रन्नो तहिं कोसलियस्स धूया, भद्द त्ति नामेण अणिंदियंगी ।
तं पासिया संजय हम्ममाणं, कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ ।२०।

उन संयती को मारते हुए देखकर कोशल नरेश की भद्रा नाम वाली सुन्दर राजकुमारी, उन क्रुद्ध कुमारों को शांत करने लगी ॥२०॥

देवाभिओगेण निओइएणं, दिन्ना सु रन्ना मणसा न झाया ।
नरिंददेविंदभिवंदिएणं, जेणामि वंता इसिणा स एसो ।२१।

उसने कहा--देवाभियोग से प्रेरित हुए राजा द्वारा मैं मुनि को दी गई थी, किन्तु उन मुनि ने मुझे मन से भी नहीं चाहा । नरेन्द्र और देवेन्द्र से पूजित ये वे ही ऋषि हैं--जिन्होंने मुझे त्याग दिया था ॥२१॥

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइंदिओ संजओ बंभयारी ।
जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रन्ना ॥

ये वे ही उग्र तपस्वी, जितेन्द्रिय, संयती और ब्रह्मचारी

महात्मा हैं-जिन्होंने उस समय कोशल नरेश-मेरे पिता द्वारा दी जाती हुई मुझे स्वीकार नहीं किया ॥२३॥

महाजसो एस महाणुभावो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।
मा एयं हीलेह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भे निद्दहेज्जा ॥

ये घोर व्रती, घोर पराक्रमी, महायशस्वी और महा प्रभावशाली महात्मा हैं। ये निन्दनीय नहीं हैं, इनकी निन्दा मत करो। कहीं अपने तेज से ये आप सब को भस्म नहीं कर दें।

एयाइं तीसे वयणाइं सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं।
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खा कुमारे विणिवारयंति ॥२४॥

उस ब्रह्म पत्नी भद्रा के इन सुभाषित वचनों को सुनकर ऋषि की वैयावृत्य करने के लिए यक्ष, कुमारों को रोकने लगा।

ते घोररूवा ठिय अंतलिक्खे, असुरा तहिं तं जणं तालयंति।
ते भिन्नदेहे रुहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ।२५।

रौद्र रूप आकाश में रहा हुआ यक्ष, कुमारों को मारने लगा। भिन्न देह और रक्त वमते हुए कुमारों को देखकर, पुनः भद्रा ने कहा-

गिरिं नहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह।
जायतेयं पाएहिं हणह, जे भिक्खुं अवमन्नह ॥२६॥

तुम भिक्षु का जो अपमान कर रहे हो, यह पर्वत को नखों से खोदने, लोहे को दांतों से चबाने और अग्नि को पैरों से बुझाने की मूर्खता के समान ही है ॥२६॥

आसीविसो उग्गतवो महेसी, घोरव्वश्रो घोरपरक्कमो य।
अगणिं व पक्खंद पयंगसेणा, जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह॥

ये महर्षि आशीविष लब्धि वाले, घोर तप, दुष्कर व्रत और घोर पराक्रम वाले हैं। तुम भिक्षा के समय भिक्षु को मार रहे हो, सो अपने नाश के लिए, पतंगों के समूह की तरह अग्नि में गिर रहे हो॥२७॥

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सव्वजणेण तुब्भे।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा, लोगंपि एसो कुविश्रो डहेज्जा।

यदि तुम जीवन या धन की रक्षा चाहते हो, तो सभी मिल कर मस्तक झुकाकर, इनकी शरण ग्रहण करो। क्रोधित हुए महर्षि लोक को भस्म कर सकते हैं॥२८॥

अवहेडिय पिट्ठिसउत्तमंगे, पसारिया बाहु अकम्मचेट्ठे।
निब्भेरियच्छे रुहिरं वमंते, उड्ढंमुहे निग्गयजीहनेत्ते॥२६॥
ते पासिया खंडियकट्ठभूए, विमणो विसण्णो अह माहणो सो।
इसिं पसाएइ सभारियाश्रो, हीलं च निंदं च खमाह भंते॥

उन कुमारों का मुंह पीठ की ओर झुक गया था, भुजाएँ फैली हुई थीं, निष्क्रिय, आंखें फटी हुई और मुंह ऊपर की ओर हो गया था। उनकी जीभ तथा आँखें निकल गई थीं। उन्हें रक्त वमन करते हुए और काष्ठभूत देखकर वह ब्राह्मण खेद करता हुआ अपनी भार्या के साथ उन ऋषि को प्रसन्न करने के लिए कहने लगा—हे भगवन्! हमने आपकी अवज्ञा और निन्दा

की, इसकी क्षमा प्रदान करें ।।२९-३०।।

बालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं, जं हीलिया तस्स खमाह भंते ।
महप्पसाया इसिणो हवंति, न हु मुणी कोवपरा हवंति ।३१।

हे भगवन् ! इन मूढ़ और अज्ञानी बालकों ने आपकी अवेहलना की, इसके लिए आप क्षमा करें । ऋषि तो महा कृपालु होते हैं, वे कोप नहीं करते ।।३१।।

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च, मणप्पदोसो ण मे अत्थि कोइ ।
जक्खा हु वेयावडियं करेंति, तम्हा हु एए निहया कुमारा ।।

मुनि ने कहा–मेरे मन में न तो पहले द्वेष था, न अब है, और न आगे होगा । किन्तु यक्ष मेरी सेवा करता है, उसीने इन कुमारों को मारा है ।।३२।।

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुब्भे न वि कुप्पह भूइपन्ना ।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे ।।

ब्राह्मण कहने लगा–धर्म और शास्त्रों को जानने वाले, उत्तम प्रज्ञा वाले आप कभी क्रोधित नहीं होते है । अतएव हम सब आपके चरणों की शरण में आये हैं ।।३३।।

अच्चेमु ते महाभाग, न ते किंचि न अच्चिमो ।
भुंजाहि सालिमं कूरं, नाणावंजणसंजुयं ।।३४।।

हे महाभाग ! हम आपकी पूजा करते हैं । आपका कोई भी अवयव अपूज्य नही है । अनेक प्रकार के व्यंजन सहित शालि से बने हुए इस भात का आप भोजन कीजिये ।।३४।।

इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं, तं भुंजसु अम्ह अणुग्गहट्ठा ।
बाढं ति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स ऊ पारणए महप्पा ॥

महात्मन्! यह बहुतसा भोजन है। हम पर अनुग्रह करने के लिए आप भोजन कीजिये। "ठीक है"—कह कर ऋषि, मासखमण के पारणे में आहार पानी ग्रहण करते हैं ॥३५॥

तहियं गंधोदयपुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा ।
पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहोदाणं च घुट्ठं ॥

देवो ने वहां दिव्य सुगन्धित जल और पुष्पों की तथा धन की धाराबद्ध वर्षा की। दुंदुभियां बजाई और आकाश में अहा दान! अहो दान! इस प्रकार की घोषणा की ॥३६॥

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो, न दीसई जाइविसेस कोई ।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं,जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा ॥३७॥

यह साक्षात् तप का ही माहात्म्य दिखाई देता है, जाति की कुछ भी विशेषता नहीं दिखाई देती। चाण्डाल पुत्र हरिकेश मुनि को देखो, जिनकी महाप्रभावशाली ऋद्धि है ॥३७॥

किं माहणा जोइसमारभंता,उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा ।
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं सुदिट्ठं कुसला वयंति ॥

हे ब्राह्मणों! तुम क्यों अग्नि का आरम्भ करते हो? जल से ऊपरी शुद्धि क्यों चाहते हो? बाह्य शुद्धि की खोज सुदृष्ट नहीं है, ऐसा तत्वज्ञों ने कहा है ॥३८॥

कुसं च जूवं तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदगं फुसंता ।
पाणाइं भूयाइं विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा पगरेह पावं ॥३९॥

कुश, यूप, तृण काष्ठ और अग्नि तथा प्रातः,सायंकाल जल का स्पर्श करते हुए और प्राणियों की हिंसा करते हुए, मन्द बुद्धि लोग पुनः-पुनः पाप का संचय करते है ॥३६॥

कहं चरे भिक्खु वयं जयामो, पावाइं कम्माइं पुणोल्लयामो।
अक्खाहि णो संजय जक्खपूइया, कहं सुजट्ठं कुसला वयंति ॥

हे भिक्षु ! हम क्या करें, कैसा यज्ञ करें, जिससे पाप कर्मों को दूर कर सके। हे यक्षपूजित संयती ! तत्त्वज्ञ पुरुषों ने सुन्दर यज्ञ का प्रतिपादन किस प्रकार किया है ॥४०॥

छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थिओ माणमायं, एयं परिण्णाय चरंति दंता ॥

इन्द्रियों को दमन करने वाले छः जीवकाय की हिंसा नहीं करते, मृषा और अदत्त का सेवन नही करते और परिग्रह, स्त्रियाँ, मान, माया, लोभ, क्रोध इन्हें ज्ञान से जानकर त्याग देते है ॥४१॥

सुसंवुडो पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणो।
वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजयं जयति जन्नसिट्ठं ॥४२॥

पांच संवर से संवृत्त, असयमी जीवन को नही चाहने वाला, शरीर का त्याग करने वाला, निर्मल व्रत वाला और शरीर के ममत्व का त्याग रूप महान् जयवाले, श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करते है ॥४२॥

के ते जोई के य ते जोइठाणा, का ते सुया किं च ते कारिसंगं।
एहा य ते कयरा संति भिक्खु, कयरेण होमेण हुणासि जोइं॥

हे भिक्षो ! आपके अग्नि कौनसी है, अग्निकुण्ड कौन सा है, कुड़छी, कण्डा, लकड़ियां कौनसी है ? शांति पाठ कौन से हैं और किस होम से अग्नि को प्रसन्न करते हैं ॥४३॥

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्मेहा संजमजोगसंती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं॥४४॥

तप रूप अग्नि, जीव अग्नि का स्थान और मन, वचन, काया के शुभ व्यापार कुड़छी रूप हैं। शरीर कण्डा रूप और आठ कर्म लकड़ी रूप हैं ; संयम चर्या, शान्ति पाठ रूप है। मैं ऐसा यज्ञ करता हूं जो ऋषियों द्वारा प्रशंसित है ॥४४॥

के ते हरए के य ते संतितित्थे, कहिं सिणाओ व रयं जहासि।
आइक्ख नो संजय जक्खपूइया, इच्छामो नाउं भवओ सगासे॥

हे यक्ष पूजित ! आपका जलाशय कौनसा है ? शांति तीर्थ कौनसा है ? मल त्यागने के लिए आप स्नान कहां करते हैं ? यह हम जानना चाहते हैं। आप बताइये ॥४५॥

धम्मे हरए बंभे संतितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो, सुसिइभूओ पजहामि दोसं॥

अकलुषित, आत्मा को प्रसन्न करने वाली शुभ लेश्या रूप धर्म, जलाशय है और ब्रह्मचर्य रूप शांति तीर्थ है। जहाँ स्नान करके मैं विमल विशुद्ध और शीतल होकर पाप को दूर करता हूं ॥४६॥

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिं सिणाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाणं पत्ते ॥

तत्त्व ज्ञानियों ने यह स्नान देखा है। यही वह महास्नान है जिसकी ऋषियों ने प्रशंसा की है। जिस स्नान से महर्षि लोग विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान—मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ॥४७॥

बारहवां अध्ययन समाप्त

चित्तसंभूइज्जं तेरहमं अज्झयणं

जाईपराइओ खलु, कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ।
चुलणीए बंभदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ ॥१॥
कंपिल्ले संभूओ, चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि ।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥२॥

संभूत का जीव, पूर्व भव में चाण्डाल जाति के कारण अपमानित होकर साधु हुआ और हस्तिनापुर में निदान किया। फिर पद्मगुल्म विमान से च्यवकर काम्पिल्य नगर में, चूलनी रानी की कुक्षि से, ब्रह्मदत्तपने उत्पन्न हुआ और चित्त का जीव, पुरिमताल नगर के विशाल श्रेष्ठि कुल में उत्पन्न हुआ। चित्तजी धर्म सुनकर दीक्षित हुए ॥१–२॥

कंपिल्लम्मि य नयरे, समागया दो वि चित्तसंभूया ।
सुहदुक्खफलविवागं, कहिंति ते एक्कमेक्कस्स ॥३॥

कास्पिल्य नगर में चित्त और संभूत दोनों मिले और आपस में सुख दुःख रूप फल-विपाक की बातें करने लगे ॥३॥

चक्कवट्टी महिड्ढिओ, बंभदत्तो महायसो ।
भायरं बहुमाणेणं, इमं वयणमब्बवी ॥४॥

महान् ऋद्धिशाली, महायशस्वी, चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, अपने पूर्वभव के भाई को बहुमान पूर्वक यों कहने लगे ॥४॥

आसिमो भायरा दो वि, अन्नमन्नवसाणुगा ।
अन्नमन्नमणुरत्ता, अन्नमन्नहिएसिणो ॥५॥

अपन दोनों भाई, एक दूसरे के वश में रहने वाले, एक दूसरे से प्रेम करने वाले और एक दूसरे के हितैषी थे ॥५॥

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे नगे ।
हंसा मयंगतीरे, सोवागा कासिभूमिए ॥६॥

अपन दोनों दशार्ण देश में दास थे. कलिंजर पर्वत पर मृग, मृतगंगा के किनारे हंस और काशी में चाण्डाल थे ॥६॥

देवा य देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिड्ढिया ।
इमा णो छट्ठिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा ॥७॥

अपन देवलोक में महान् ऋद्धिमंत देव थे। यह अपना छठा भव है, जिसमें हम एक दूसरे से पृथक् हुए हैं ॥७॥

कम्मा नियाणप्पगडा, तुमे राय विचिंतिया ।
तेसिं फलविवागेणं, विप्पओगमुवागया ॥८॥

राजन् ! तुमने मन से निदान किया था। उस निदान कर्म का फल उदय में आने पर अपना वियोग हुआ है ॥८॥

सच्चसोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो, किण्णु चित्ते वि से तहा ॥६॥

हे चित्त ! मैंने पूर्व जन्म में सत्य और शौच युक्त कर्म किये थे, उनका फल यहाँ भोग रहा हूं । क्या तुम भी वैसा ही उत्तम फल भोग रहे हो ? ॥६॥

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहिं, आया ममं पुण्णफलोववेए ॥१०॥

मनुष्यों का सदाचरण सफल होता है और किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना मुक्ति नहीं होती । मेरी आत्मा भी पुण्य के फल स्वरूप उत्तम द्रव्य और काम भोगों से युक्त थी ।

जाणाहि संभूय महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं ।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं, इड्ढी जुई तस्स वि यप्पभूया ॥

हे संभूत ! जिस प्रकार तुम अपने को महान् ऋद्धिशाली महाभाग्यशाली और पुण्य फल युक्त जानते हो, उसी प्रकार चित्त को भी जानो । मेरे भी ऋद्धि और द्युति वहुत थी ।

महत्थरूवा वयणप्पभूया, गाहाणुगीया नरसंघमज्झे ।
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहं जयंते समणो मि जाओ ॥

मुनि, जिस महान् अर्थ वाली गाथा को सुनकर और ज्ञान पूर्वक चारित्र से युक्त होकर, जिन शासन में यत्नवन्त होते हैं, उस अल्पाक्षर और महान् अर्थवाली गाथा को परिषद में सुनकर मैं भी श्रमण हुआ हूं ॥१२॥

उच्चोदए महु कक्के य बंभे, पवेइया आवसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्त धणप्पभूयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥१३॥

हे चित्त ! उच्चादय, मधु, कर्क, मध्य और ब्रह्म तथा और भी रमणीय भवन, प्रचुर धन तथा पाञ्चाल देश के रूपादि गुणों सहित इन महलों का तुम उपभोग करो ॥१३॥

नट्टेहि गीएहि य वाइएहिं, नारीजणाहिं परिवारयंतो ।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥

हे भिक्षु ! नृत्य गीत और वादिन्त्रों से युक्त ऐसी स्त्रियों के परिवार के साथ, इन भोगों का तुम भोग करो। यह प्रव्रज्या तो निश्चय ही दुःखकारी है ॥१४॥

तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं, नराहिवं कामगुणेसु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही. चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था ॥

पूर्व स्नेह के वश होकर अनुराग करने वाले और काम गुणों में आसक्त उस चक्रवर्ती की बात सुनकर, धर्म में स्थित और उसका हित चाहने वाले चित्त मुनि यों कहने लगे ॥१५॥

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥१६॥

सभी गीत विलाप रूप हैं। सभी नृत्य विडम्बना है। सभी आभूषण भार रूप हैं और सभी काम दुःख दायक हैं।

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं ।
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणं सिलगुणे रयाणं ॥

राजन् ! अज्ञानियों के प्रिय, किन्तु अन्त में दुःखदाता ऐसे काम गुणों में वह सुख नहीं है, जो काम-विरत होकर शील गुण में रत रहने वाले तपोधनी भिक्षुओं को होता है ।

नरिंद जाई अहमा नराणं, सोवागजाइं दुहओ गयाणं ।
जहिं वयं सव्वजणस्स वेस्सा, वसिअ सोवागनिवेसणेसु ॥१८॥

हे नरेन्द्र ! पूर्वभव में हम दोनों को मनुष्यों में अधम ऐसी चाण्डाल जाति प्राप्त हुई थी । वहां हम सभी लोगों के द्वेष पात्र होकर, चाण्डालों की बस्ती में रहते थे ॥१८॥

तीसे य जाईइ उ पावियाए, वुच्छामु सोवागनिवेसणेसु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरे कडाइं ॥१९॥

उस पाप रूप जाति में हम दोनों चाण्डाल के घर में रहते थे, और सभी लोगों से निन्दनीय थे । किन्तु यहां हम पूर्वकृत शुभ कर्म के फल भोग रहे हैं ॥१९॥

सो दाणि सिं राय महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं, आदाणहेउं अभिणिक्खमाहि ।२०।

हे राजन् ! चाण्डाल भव में किये हुए धर्माचरण के शुभ फल से यहां तुम महा प्रभावशाली, ऋद्धिमंत और पुण्य फल से युक्त हुए हो । अब इन नाशवान् भोगों को त्याग कर चारित्र के लिए निकलो ॥२०॥

इह जीविए राय असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो ।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परम्मिलोए ॥२१॥

हे राजन्! जो इस नाशवान् जीवन में अतिशय पुण्य-कर्म नहीं करता है, वह धर्माचरण नहीं करने से मृत्यु के मुंह में जाने पर, परलोक के विषय में शोक करता है ॥२१॥

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अंतकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मंसहरा भवंति ॥

जिस प्रकार मृग को सिंह पकड़ कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्त समय मे मृत्यु भी मनुष्य को ले जाती है। उस समय माता, पिता, भाई आदि अंशमात्र भी नहीं बचा सकते।

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥२३॥

उसके दुःख को ज्ञातिजन नहीं बँटा सकते, न मित्र मण्डली, न पुत्र और न बान्धव ही भाग ले सकते हैं। वह स्वयं अकेला ही दुःख भोगता है। क्योंकि कर्म, कर्त्ता का ही अनुसरण करते हैं ॥२३॥

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धणधन्नं च सव्वं ।
सकम्मबीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुंदर पावगं वा ॥२४॥

यह आत्मा, द्विपद, चतुष्पद, क्षेत्र, घर, धन, धान्य और वस्त्रादि सभी को छोड़कर, अपने कर्मों के वश होकर, स्वर्ग या नर्क में जाता है ॥२४॥

तं इक्कगं तुच्छसरीरगं से, चिईगयं दहिउं पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य, दायारमन्नं अणुसंकमंति ॥

उसके निर्जीव शरीर को चिता में रखकर जला देते हैं। फिर ज्ञातिवाले तथा स्त्री, पुत्रादि दूसरे दाता का अनुसरण करते हैं ॥२५॥

उवणिज्जई जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं।
पंचालराया वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं महालयाइं ॥

राजन्! यह जीवन सतत मृत्यु के समीप जा रहा है। बुढ़ापा मनुष्य के वर्ण का हरण करता है। हे पाञ्चालराज! सुनो, तुम महान् आरम्भ करनेवाले मत बनो ॥२६॥

अहं पि जाणामि जहेह साहू, जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं।
भोगा इमे संगकरा हवंति, जे दुज्जया अज्जो अम्हारिसेहिं ॥२७

हे साधु! आप कहते हो वह मैं समझता हूँ, किन्तु हे आर्य! ये भोग बन्धन कर्त्ता हो रहे हैं, जो मेरे जैसे के लिए दुर्जय हैं ॥२७॥

हत्थिणपुरम्मि चित्ता, दट्ठूणं नरवइं महिड्ढियं।
कामभोगेसु गिद्धेणं, नियाणमसुहं कडं ॥२८॥

हे चित्त! मैंने हस्तिनापुर में महाऋद्धिशाली नरपति (और रानी) को देखकर व काम भोग में आसक्त होकर अशुभ निदान किया था ॥२८॥

तस्स मे अपडिकंतस्स, इमं एयारिसं फलं।
जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥२९॥

उस निदान का प्रतिक्रमण नहीं करने से मुझे यह फल

मिला है। इससे मैं धर्म को जानता हुआ भी कामभोगों में मूर्छित हूँ ॥२६॥

नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठुं थलं नाभिसमेइ तीरं।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो॥

जिस प्रकार कीचड़ में फँसा हुआ हाथी, स्थल को देख कर भी किनारे नहीं आ सकता, उसी प्रकार कामगुणों में आसक्त हुआ मैं, साधु के मार्ग को जानता हुआ भी अनुसरण नहीं कर सकता ॥३०॥

अच्चेइ कालो तूरन्ति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा।
उविच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी॥

समय बीत रहा है, रात्रियाँ शीघ्रता से जा रही हैं, पुरुषों के भोग नित्य नहीं हैं, ये भोग स्वतः ही आते हैं और स्वतः ही मनुष्य को छोड़ देते हैं, जैसे कि फल रहित वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं ॥३१॥

जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी॥

हे राजन्! यदि तुम भोगों का त्याग करने में अशक्त हो, तो धर्म में स्थिर होकर सभी प्राणियों पर अनुकम्पा रखते हुए आर्य कर्म करो। इससे तुम वैक्रेय शरीरधारी देव हो जाओगे।

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धो सि आरम्भपरिग्गहेसु।
मोहं कओ इत्तिउ विप्पलावो, गच्छामि रायं आमंतिओ सि।

राजन् ! तुम्हारी भोगों को छोड़ने की बुद्धि नहीं है। तुम आरम्भ परिग्रह में आसक्त हो। मैंने व्यर्थ ही इतना बकवाद किया, अब मैं जाता हूँ ॥३३॥

पंचालराया वि य बंभदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥३४॥

साधु के वचनों का पालन नहीं कर और उत्तम काम भोगों को भोगकर यह पाञ्चालराज ब्रह्मदत्त, प्रधान नरक में उत्पन्न हुआ ॥३४॥

चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उदग्गचारित्ततवो महेसी ।
अणुत्तरं संजम पालइत्ता, अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ । त्ति बेमि ।

महर्षि चित्तजी, कामभोगों से विरक्त हो, उत्कृष्ट चारित्र और तप तथा सर्व श्रेष्ठ संयम का पालन कर, सिद्ध गति को प्राप्त हुए। ऐसा मैं कहता हूं ॥३५॥

—:( ) तेरहवां अध्ययन समाप्त ( ):—

उसुयारिज्जं चोदहं अज्झयणं

देवा भवित्ताण पुरे भवम्मि, केई चुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे उसुयारणामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥१॥

पूर्व भव में एक विमान में देवता होकर रहने वाले कुछ जीव, वहां से चवकर 'इषुकार' नगर में उत्पन्न हुए—जो प्राचीन, प्रसिद्ध और समृद्धिवन्त था ॥१॥

सकम्मसेसेण पुराकएणं, कुलेसुदग्गेसु य ते पसूया ।
निव्विण्ण संसारभया जहाय, जिणिंदमग्गं सरणं पवन्ना ॥२॥

वे शेष रहे पूर्व कर्मों को भोगने के लिए उत्तम कुल में उत्पन्न हुए। फिर संसार के भय से निर्वेद पाकर जिनेन्द्र के मार्ग की शरण ली ॥२॥

पुमत्तमागम्म कुमार दो वि, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती।
विसालकित्ती य तहेसुयारो, रायत्थ देवी कमलावई य ॥३॥

वे छः जीव ये थे—विशाल कीर्तिवाला इषुकार राजा व उसकी कमलावती देवी, पुरोहित और उसकी यशा पत्नी तथा दो पुरोहित कुमार हुए ॥३॥

जाईजरामच्चुभयाभिभूया, बहिं विहाराभिनिविट्ठचित्ता ।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥

जन्म जरा और मृत्यु से भयभीत, संसार से परे, मोक्ष के इच्छुक उन दोनों कुमारों ने जैन मुनियों को देखकर संसार चक्र से मुक्त होने के लिए कामभोगों से विरक्त हुए ॥४॥

पियपुत्तगा दोन्नि वि माहणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइं, तहा सुचिण्णं तवसंजमं च ॥

ब्राह्मण के योग्य कर्म करनेवाले उस पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्रों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। जिससे वे पूर्व भव में भली प्रकार पाले हुए तप संयम का स्मरण करने लगे।

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्सएसुं जे यावि दिव्वा।
मोक्खाभिकंखी अभिजायसड्ढा, तातं उवागम्म इमं उदाहु ॥

वे देव और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में आसक्त होते हुए मोक्ष की इच्छा और धर्म की श्रद्धा वाले होकर अपने पिता के पास आकर यों कहने लगे ॥६॥

असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहुअंतरायं न य दीहमाउं।
तम्हा गिहंसि न रइं लभामो, आमंतयामो चरिस्सामि मोणं ॥

यह जीवन अनित्य है। आयु थोड़ी और उसमें भी विघ्न बहुत हैं। इसलिए हमें गृहवास में आनन्द नहीं है। हमें आज्ञा दीजिए, हम मुनिवृत्ति ग्रहण करेंगे ॥७॥

अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघायकरं वयासी।
इमं वयं वेयविओ वयंति, जहा न होइ असुयाण लोगो ॥

यह सुनकर उनका पिता, उन भावमुनियों के तप संयम में विघ्न उत्पन्न करने वाले वचन, इस प्रकार कहने लगा— "वेदविद् कहते है कि पुत्र रहित मनुष्य की उत्तम गति नहीं होती ॥८॥

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥

हे पुत्रों ! तुम वेदों को पढ़कर, ब्रह्म भोज कराकर, और स्त्रियों से भोग भोगकर, अपने पुत्रों को गृह-भार देने के बाद वनवासी उत्तम मुनि हो जाना ॥९॥

सोयग्गिणा आयगुणिंधणेणं, मोहाणिला पज्जलणाहिएणं ।
संतत्तभावं परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहुं च ॥१०॥
पुरोहियं तं कमसोऽणुणंतं, निमंतयंतं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहिं चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ॥११॥

पुरोहित शोक से संतप्त एवं परितप्त हो गया । उसके बहिरात्म गुणरूप ईधन में, मोह रूपी वायु से, शोक रूपी अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित हो गई । वह पुत्रों को घर में ही रहने का अनुनय विनय करता हुआ धन तथा कामभोग का निमन्त्रण देने लगा । उससे कुमार इस प्रकार कहने लगे । १०,११

वेया अहीया न हवंति ताणं, भुत्ता दिया निंति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ॥

पिताजी ! वेद पढ़ने से वे शरणभूत नहीं होते ; पापियों को भोजन कराने से महान् अन्धकार में ले जाते हैं, और पुत्र भी शरण रूप नहीं होते, तब आपके कथन को कैसे माना जाय ? ॥१२॥

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ।

काम भोग, क्षण मात्र सुख और बहुत काल तक दुःख देने वाले हे । थोड़े सुख और महान् दुःख वाले को सुखरूप कैसे कहा जाय ? ये काम भोग संसार वर्धक, मोक्ष विरोधी और अनर्थो की खान के समान ही हैं ॥१३॥

परिव्वयंते अनियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोत्ति मच्चुं पुरिसे जरं च ॥

काम भोगों से अनिवृत्त पुरुष, दिन रात परितप्त होता हुआ परिभ्रमण करता है और स्वजनों के लिए दूषित प्रवृत्ति से धन संग्रह करता हुआ जरा और मृत्यु को प्राप्त होता है ॥१४॥

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाए ॥१५॥

'मेरे पास यह है और यह नहीं है, मैंने यह किया और यह करना है'—इस प्रकार व्याकुल बने हुए पुरुष के प्राणों को काल हरण कर लेता है। ऐसी स्थिति में प्रमाद कैसे किया जाय ?

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं, सयणा तहा कामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो, तं सव्वसाहीणमिहेव तुब्भं ॥

पुत्रों ! जिस धन और स्त्रियों के लिए लोग तप जपादि करते हैं, वे यहां बहुत हैं। स्वजन और काम भोग के साधन भी पर्याप्त हैं। फिर संयम क्यों लेते हो ? ॥१६॥

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहिं चेव ।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ॥

पिताजी ! धर्माचरण में, धन स्वजन और काम भोगों का क्या प्रयोजन है ? हम गुणवन्त श्रमण एवं भिक्षु बनकर अप्रतिबद्ध विहारी होंगे ॥१७॥

जहा य अग्गी अरणी असंतो, खीरे घयं तेल्लमहा तिलेसु ।
एमेव जाया सरीरंसि सत्ता, संमुच्छई नासइ नावचिट्ठे ॥१८॥

पुत्रों ! जिस प्रकार अरणि में अग्नि, दूध में घी और तिल में तेल दिखाई न देने पर भी संयोग से स्वतः उत्पन्न होते है, उसी प्रकार शरीर में जीव स्वतः उत्पन्न होता है और शरीर नाश होते ही नष्ट हो जाता है, बाद में नहीं रहता। अर्थात् आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है, किन्तु शरीर और आत्मा एक ही है ॥१८॥

नो इंदियग्गेज्झ अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो ।
अज्झत्थहेउं नियय्स्स बंधो, संसारहेउं च वयंति बंधं ॥१९॥

पिताजी ! यह आत्मा अमूर्त होने के कारण इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होती और अमूर्त होने से नित्य है। महापुरुषों ने कहा है कि आत्मा के मिथ्यात्वादि हेतु निश्चय ही बन्ध के कारण हैं और बन्धन ही संसार का हेतु है ॥१९॥

जहा वयं धम्ममजाणमाणा, पावं पुरा कम्ममकासि मोहा ।
ओरुब्भमाणा परिरक्खयंता, तं नेव भुज्जो वि समायरामो ॥

पिताजी ! मोहवश और धर्म को नहीं जानने से हम आपके रोके रुक गये और पाप कर्म करते रहे, पर अब हम पुनः पाप सेवन नहीं करेंगे ॥२०॥

अब्भाहयम्मि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए ।
अमोहाहिं पडंतीहिं, गिहंसि न रइं लभे ॥२१॥

यह लोक, सभी प्रकार से पीड़ित और घिरा हुआ है। अमोघ शस्त्र धाराएं पड़ रही हैं। ऐसी अवस्था में गृहवास में कुछ भी सुख नहीं है ॥२१॥

केण अब्भाहओ लोगो, केण वा परिवारिओ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया चिंतावरो हु मे ॥२२॥

पुत्रों ! लोक किससे पीड़ित है ? इसे किसने घेरा है ? कोनसी शस्त्र धाराएँ पड़ रही हैं ? मैं यह जानने के लिए चिन्तित हूँ ॥२२॥

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय वियाणह ॥२३॥

पिताजी ! यह लोक मृत्यु से पीड़ित, जरा से घिरा हुआ है और रात दिन रूपी अमोघ शस्त्रधारा से आयुष्य टूट रहा है, ऐसा समझना चाहिए ॥२३॥

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ ॥२४॥

जो जो रात्रियाँ व्यतीत हो रही हैं, वे वापिस लोटकर नहीं आती। पाप करने वालों की रात्रियां निष्फल ही जाती हैं।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥२५॥

जो जो रात्रियाँ वीत रही हैं, वे वापिस नहीं आती। धर्म करने वालों की ये रात्रियाँ सफल ही होती हैं ॥२५॥

एगओ संवसित्ता णं, दुहओ सम्मत्तसंजुया ।
पच्छा जाया गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ।२६।

पुत्रों ! पहले अपन गृहवास में ही सम्यक्त्व के साथ श्रावक बनकर रहें। पीछे अनगार बनकर विभिन्न कुलों में भिक्षाचरी करते हुए विचरेंगे ॥२६॥

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं ।
जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

पिताजी ! जिसकी मृत्यु से मित्रता हो, जिसमें मृत्यु से भागकर छूटने की शक्ति हो अथवा जो यह भी जानता हो कि 'मैं नहीं मरूँगा,' वही मनुष्य, कल की इच्छा कर सकता है।

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवन्ना ण पुणब्भवामो ।
अणागयं नेव य अत्थि किंचि, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं।

संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं–जो इस आत्मा को पहले प्राप्त नहीं हुई हो। इसलिए हम आज से ही उस साधु धर्म को हृदय से स्वीकार करेंगे, कि जिससे फिर जन्म ही नहीं लेना पड़े। राग छोड़कर श्रद्धा से साधु धर्म पालना ही श्रेष्ठ है ॥२८॥

पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो, वासिट्ठि भिक्खायरियाइ कालो।
साहाहि रुक्खो लहई समाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं॥

अब पुरोहित, पत्नी से कहता है–हे वाशिष्ठि ! जिस प्रकार

शाखाओं से ही वृक्ष की शोभा है। शाखाएँ कट जाने पर वह ठूंठ कहलाता है। उसी प्रकार पुत्रों से रहित होकर मेरा घर में रहना व्यर्थ है। अब मेरे लिए भी भिक्षुक बनने का समय आ गया है ॥२९॥

पंखाविहूणो व्व जहेह पक्खी, भिच्चव्विहूणो व्व रणे नरिंदो।
विवन्नसारो वणिओ व्व पोए, पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि॥

जिस प्रकार बिना पंख का पक्षी, संग्राम में सेना रहित राजा और जहाज में द्रव्य रहित व्यापारी दुःखी होता है, उसी प्रकार पुत्रों से रहित होकर मैं भी दुखी हो रहा हूँ।३०।

सुसंभिया कामगुणा इमे ते, संपिंडिया अग्गरसप्पभूया।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं॥

यशा कहने लगी–प्रधान रस वाले ये उत्तम काम भोग हमें पर्याप्त रूप से मिले हैं। हम इन्हें अच्छी प्रकार से भोग-कर बाद में मोक्ष मार्ग में जावेंगे ॥३१।

भुत्ता रसा भोइ जहाइ णे वओ,
न जीवियट्ठा पजहामि भोए।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं,
संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं ॥३२॥

प्रिये! हम रस भोग कर चुके। युवावस्था हमें छोड़-रही है। अब मैं स्वयं भोगों को छोड़ता हूँ। जीवन के लिए

नहीं. किन्तु लाभ अलाभ और सुख दुःख, इन सब को समझ कर, मुनिपन स्वीकार करता हूँ ॥३२॥

मा हु तुमं सोयरियाण संभरे,
जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी ।
भुंजाहि भोगाइं मए समाणं,
दुक्खं खु भिक्खायरिया विहारो ॥३३॥

जिस प्रकार उल्टे पूर जानेवाला बूढ़ा हंस पछताता है, उसी प्रकार अपने संबंधियों और भोगों को स्मरण करके पीछे पछताना नहीं पड़े। इसलिए आप मेरे साथ भोग भोगो। क्योंकि भिक्षाचरी और अप्रतिबद्ध विहार बड़ा दुःखदायक है।

जहा य भोई तणुयं भुयंगो, निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमेव जाया पयहंति भोए, ते हं कहं नाणुगमिस्समेको ॥

भद्रे ! जिस प्रकार साँप काँचली छोड़कर भाग जाता है, उसी प्रकार दोनों पुत्र, काम भोगों को छोड़कर जा रहे हैं, ऐसी दशा में मैं अकेला क्यों रहूँ ? क्यों न उनके साथ ही चला जाऊँ ॥३४॥

छिंदित्तु जालं अबलं व रोहिया, मच्छा जहा कामगुणे पहाय।
धोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ॥

जिस प्रकार रोहित मच्छ, जीर्ण जाल को काटकर निकल जाता है, उसी प्रकार ये पुत्र काम भोगों को छोड़कर

जा रहे हैं। जातिवन्त बैल की तरह जो उदार एवं वीर पुरुष हैं, वे भिक्षाचरी को स्वीकार करते हैं ॥३५॥

नहेव कुंचा समइक्कमंता,
तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा।
पलेंति पुत्ता य पई य मज्झं,
ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्का ॥३६॥

जैसे क्रौंच पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं और जालों को काटकर हंस उड़ जाते हैं, उसी प्रकार मेरे पति और पुत्र भी जा रहे हैं, फिर मैं अकेली क्यों रहूँ। इनके साथ क्यों न जाऊँ ॥३६॥

पुरोहियं तं ससुयं सदारं, सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए।
कुडुंबसारं विउलुत्तमं च, रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥३७॥

पुरोहित अपनी स्त्री और पुत्रों के साथ भोगों को त्याग कर दीक्षित हो गये। उसकी सम्पत्ति राजा ले रहा है। यह सुनकर राजरानी, राजा को बार बार समझाती है ॥३७॥

वंतासी पुरिसो रायं, न सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणं आदाउमिच्छसि ॥३८॥

राजन्! वमन किये हुए पदार्थ को खानेवाला पुरुष, प्रशंसित नहीं होता। आप ब्राह्मण द्वारा छोड़े हुए धन को ग्रहण करते हैं, यह बुरी बात है ॥३८॥

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धणं भवे ।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव ॥३९॥

यह सारा जगत् और समस्त धन तुम्हारा हो जाय, तो भी तुम्हारे लिए अपर्याप्त है । यह धन तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥३९॥

मरिहिसि रायं जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय ।
एक्को हु धम्मो नरदेव ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि ॥

नरेश ! जब कभी तुम मरोगे, तब इन काम भोगों को अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा । इस संसार में एक मात्र धर्म ही शरणरूप है । इसके सिवा कोई रक्षक नहीं है ॥४०॥

नाहं रमे पक्खिणि पंजरे वा, संताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं ।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्गहारंभनियत्तदोसा ॥

राजन् ! जिस प्रकार पिंजरे में रही हुई पक्षिणी प्रसन्न नही रहती, उसी प्रकार मैं भी आनन्द नहीं मानती । मैं स्नेह को तोड़कर, आरम्भ परिग्रह से विरत होकर और विषय वासना से रहित, सरल संयमी बनना चाहती हूँ ॥४१॥

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जंतुसु ।
अन्ने सत्ता पमोयंति, रागद्दोसवसं गया ॥४२॥
एवमेव वयं मूढा, कामभोगेसु मुच्छिया ।
डज्झमाणं न बुज्झामो, रागद्दोसग्गिणा जगं ॥४३॥

जिस प्रकार जंगल में अग्नि लगने से जलते हुए जीवों को देखकर, दूसरे जीव, राग द्वेप के वश होकर प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार काम भोगों में मूर्छित बनकर हम मूर्ख यह नहीं समझते कि यह संसार ही राग द्वेष रूप अग्नि में जल रहा है।

भोगे भोच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो।
आमोयमाणा गच्छंति, दिया कामकमा इव ॥४४॥

जो विवेकी हैं वे भोगे हुए भोगों को त्याग कर, प्रसन्नता से प्रव्रजित होते हैं व पक्षी और वायु के समान लघुभूत होकर, अप्रतिबद्ध विहार करते हैं ॥४४॥

इमे य बद्धा फंदंति, मम हत्थज्जमागया।
वयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे ॥४५॥

हे आर्य ! प्राप्त कामभोगों में हम गृद्ध बने हुए हैं। ये काम भोग, अनेक उपाय करने पर भी स्थिर नहीं रहे। इसलिए जैसे भृगु आदि ने इन्हें त्याग कर संयम लिया, वैसे हम भी लेंगे ॥४५॥

सामिसं कुललं दिस्स, बज्झमाणं निरामिसं।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामो निरामिसा ॥४६॥

एक पक्षी के मुँह में मांस का टुकड़ा देखकर, दूसरा उस पर झपटता है; किन्तु मांस का टुकड़ा छोड़ने पर वह सुखी हो जाता है। उसी प्रकार मैं भी मांस के समान समस्त

परिग्रह को छोड़कर, निरामिष होकर विचरूँगी ॥४६॥

गिद्धोवमे उ नच्चा णं, कामे संसारवड्ढणे ।
उरगो सुवण्णपासे व्व, संकमाणो तणुं चरे ॥४७॥

गृद्ध पक्षी की उपमा को सुनकर और कामभोगों को संसार वृद्धि का कारण जानकर, उसी प्रकार त्याग दे, जैसे कि गरुड़ के सामने शंकित साँप धीरे धीरे निकल कर चला जाता है ॥४७॥

नागो व्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए ।
एयं पत्थं महाराय, उसुयारि त्ति मे सुयं ॥४८॥

हे महाराज ! जैसे हाथी बन्धन को तोड़कर अपने स्थान को चला जाता है, वैसे यह आत्मा भी मोक्ष पाती है। ऐसा मैंने ज्ञानियों से सुना है ॥४८॥

चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए ।
निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ॥४९॥

राजा और रानी, विपुल राज्य, दुर्जय काम भोग और समस्त परिग्रह को छोड़कर, स्नेह रहित हो गये ॥४९॥

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ॥५०॥

उन्होंने सम्यग् धर्म को जानकर, काम गुणों के त्यागी बनकर, तीर्थङ्कर उपदेशित घोर तप को स्वीकार किया और

घोर पराक्रम करने लगे ॥५०॥

एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा ।
जम्ममच्चुभउव्विग्गा, दुक्खस्संतगवेसिणो ॥५१॥

इस प्रकार वे सब क्रमशः प्रतिबोध पाकर धर्म परायण हुए और जन्म मृत्यु के भय से उद्विग्न होकर दुःखों का नाश करने में लगे ॥१५॥

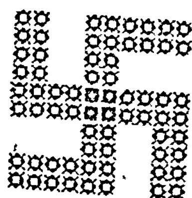
सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावणभाविया ।
अचिरेणेव कालेणं, दुक्खस्संतमुवागया ॥५२॥

वीतराग के शासन में पूर्व की (अनित्यादि) भावना से भावित हुए छहों जीव, थोड़े ही समय में सभी दुःखों से मुक्त हो गये ॥५२॥

राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिव्वुडो । त्ति बेमि ।

राजा, रानी के साथ पुरोहित, ब्राह्मणी और दोनों कुमार, ये सब जीव मोक्ष को प्राप्त हुए। ऐसा मैं कहता हूँ।५३

–: चौदहवां अध्ययन समाप्त :–



सभिक्खू पंचदहं अज्झयणं

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं,
सहिए उज्जुकडे नियाणछिन्ने ।
संथवं जहिज्ज अकामकामे,
अन्नायएसी परिव्वए स भिक्खू ॥१॥

जिसने विचार पूर्वक मुनिवृत्ति अंगीकार की, जो सम्यग् दर्शनादि युक्त, सरल, निदान रहित, संसारियों के परिचय का त्यागी, विषयों की अभिलाषा से रहित और अज्ञात कुलों की गोचरी करता हुआ विचरता है; वही भिक्षु कहलाता है ।

राओवरयं चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियायरक्खिए ।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, जे कम्हि वि ण मुच्छिए स भिक्खू ॥

राग रहित होकर संयम में दृढ़ता पूर्वक विचरने वाला, असंयम से निवृत्त, शास्त्रज्ञ, आत्मरक्षक, बुद्धिमान्, परीषह-जयी, समदर्शी और किसी भी वस्तु में मूर्च्छा नहीं करने वाला, भिक्षु कहलाता है ॥२॥

अक्कोसवहं विइत्तु धीरे, मुणी चरे लाढे निच्चमायगुत्ते ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥

कठोर वचन और प्रहार को जो समभाव से सहे, सदाचरण में प्रवृत्ति करे, सदा आत्म गुप्त रहे, मन में हर्ष विषाद

नहीं लावे और संयम मार्ग में आने वाले कष्टों को समभाव से सहन करे वही भिक्षु कहलाता है ॥३॥

पंतं सयणासणं भइत्ता, सीउण्हं विविहं च दंसमसगं ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥४॥

जो जीर्ण शय्या और आसन के मिलने पर तथा शीत, उष्ण, डांस, मच्छर आदि अनेक प्रकार के परीषहों के उत्पन्न होने पर, कष्टों को समभाव से सहन करता है, वही भिक्षु है

नो सक्कइमिच्छई न पूयं, नो य वंदणगं कुओ पसंसं ।
से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥५॥

जो पूजा सत्कार नहीं चाहता और वन्दना प्रशंसा का इच्छुक भी नहीं है, वह संयती, सुव्रती, तपस्वी, आत्म-गवेषी और सम्यगज्ञानी है,वह भिक्षु कहलाता है ॥५॥

जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छई ।
नरनारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ॥

जिनकी संगति से संयमी जीवन का नाश और महा मोह का बन्ध होता है, ऐसे स्त्री पुरुषों की संगति को जो तपस्वी, सदा के लिये छोड़ देता है और कुतूहल को प्राप्त नहीं होता, वही भिक्षु है ॥६॥

छिन्नं सरं भोममंतलिक्खं, सुमिणं लक्खण दंड वत्थुविज्जं ।
अंगवियारं सरस्स विजयं, जे विज्जाहिं ण जीवई स भिक्खू ॥

छेदन विद्या, स्वर विद्या, भूकम्प, अंतरिक्ष, स्वप्न, लक्षण, दण्ड, वास्तु, अंगविचार और पशु पक्षियों की बोली जानना, इन विद्याओं से जो अपनी आजीविका नहीं करता— वही भिक्षु है ॥७॥

मंतं मूलं विविहं विज्जचिंतं, वमण-विरेयण-धूमणेत्त सिणाणं ।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

मन्त्र, जड़ी, बूंटी, विविध वैद्य प्रयोग, वमन, विरेचन, धूम्रयोग, आँख का अंजन, स्नान, आतुरता, माता-पितादि का शरण और चिकित्सा, इन सबको जो ज्ञान से हेय जानकर छोड़ देते हैं, वे ही भिक्षु होते हैं ॥८॥

खत्तियगणउग्गरायपुत्ता, माहण भोइय विविहा य सिप्पिणो ।
नो तेसिं वयइ सिलोगपूयं, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥

क्षत्रिय, मल्ल, उग्रकुल, राजपुत्र, ब्राह्मण, भोगिक और विविध प्रकार के शिल्पी, इन सब की जो प्रशंसा और पूजा नहीं करता और इनके कार्यों को सदोष जानकर त्याग देता है, वही० ।९।

गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अपव्वइएण व संथुया हविज्जा ।
तेसिं इहलोइयफलट्ठा, जो संथवं न करेइ स भिक्खू ॥१०॥

दीक्षा लेने के बाद या पहले जिन गृहस्थों को देखे हों, परिचय हुआ हो, उनके साथ इहलौकिक फल की प्राप्ति के लिए जो विशेष परिचय नहीं करता हो, वही भिक्षु है ॥१०॥

सयणासणपाणभोयणं, विविहं खाइम-साइमं परेसिं।
अदए पडिसेहिए नियंठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥

गृहस्थ के यहां आहार, पानी, शय्या, आसन तथा अनेक प्रकार के खादिम स्वादिम होते हुए भी वह नहीं दे और इन्कार करदे, तो भी उस पर द्वेष नही करे, वही० ११

जं किंचि आहारपाणगं विविहं, खाइमसाइमं परेसिं लद्धुं।
जो तं तिविहेण नाणुकंपे, मणवयकायसुसंवुडे जे स भिक्खू

गृहस्थों के यहां से जो कुछ आहार पानी और अनेक प्रकार के खादिम स्वादिम प्राप्त करके जो बाल वृद्धादि साधुओं पर अनुकम्पा करता है व मन वचन और काया को वश में रखता है वही ॥१२॥

आयामगं चेव जवोदणं च, सीयं सोवीरं च जवोदगं च।
न हीलए पिंडं नीरसं तु, पंतकुलाइं परिव्वए स भिक्खू ।१३।

ओसामण, जौ का दलिया, ठण्डा आहार, कांजी का पानी, जौ का पानी और नीरस आहारादि के मिलने पर जो निन्दा नही करता तथा प्रान्त कुल में गोचरी करता है, वही०

सद्दा विविहा भवन्ति लोए,
दिव्वा माणुस्सगा तहा तिरिच्छा।
भीमा भयभेरवा उराला,
जो सोच्चा न विहिज्जई स भिक्खू ॥१४॥

लोक में देव मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी अनेक प्रकार के महान् भयोत्पादक शब्द होते हैं, उन्हें सुनकर जो विचलित नहीं होता वही भिक्षु है ॥१४॥

वादं विविहं समिच्च लोए, सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा ।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, उवसंते अविहेडए स भिक्खू ॥

लोक में प्रचलित अनेक प्रकार के वादों को जानकर जो विद्वान साधु, अपने आत्महित में स्थिर रहकर संयम में दृढ़ रहता है और परीषहों को सहन करता है तथा सब जीवों को अपने समान देखता हुआ उपशान्त रहकर, किसी को बाधक नहीं होता–वही भिक्षु है ॥१५॥

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते,
जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के ।
अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी,
चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू । त्ति बेमि ।

अशिल्प जीवी, गृह रहित, मित्र और शत्रु से रहित, जितेन्द्रिय, सर्वथा मुक्त, अल्प कषायी, अल्पाहारी और परिग्रह त्यागी होकर एकाकी–राग द्वेष रहित विचरता है वही भिक्षु है ॥१६॥

–पन्द्रहवाँ अध्ययन समाप्त–

बंभचेर समाहिठाणं णामं सोलसमं अज्झयणं

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं। इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा।

हे आयुष्मान्! मैंने सुना है वही कहता हूँ, उन भगवान् ने इस प्रकार फरमाया कि—जिन शासन में स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान बताये हैं, जिन्हें सुनकर, हृदय में धारण कर, संयम, संवर, और समाधि में बहुत ही दृढ़ होकर मन वचन और काया से गुप्त, गुप्तेन्द्रिय और गुप्त ब्रह्मचारी होवे और सदैव अप्रमत्त रहकर विचरे।

कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा॥

प्रश्न—स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्यसमाधि के वे दस समाधि स्थान कौनसे बताये हैं, जिन्हें सुनकर संयम, संवर और समाधि में दृढ़, गुप्त, गुप्तेन्द्रिय, गुप्त-ब्रह्मचारी होकर अप्रमत्त विचरे?

इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्न त्त,जे भिक्खू सोच्चा निसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहि-बहुले गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

उत्तर-स्थविर भगवन्तों ने निश्चय से ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान इस प्रकार फरमाये हैं, जिन्हें सुनकर धारण०

तंजहा--विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से निग्गंथे। नो इत्थीपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु इत्थिपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बंभ-यारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्प-ज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा दीह-कालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीपसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ताहवइ से निग्गंथे ॥१॥

जैसे कि-जो एकान्त शयन आसनादि करता है वह निर्ग्रन्थ है। जो स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त स्थान का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ होता है। प्रश्न-ऐसा क्यों कहा ? आचार्य उत्तर देते हैं कि-निश्चय ही स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त शय्या और आसनादि का सेवन करने वाले निर्ग्रन्थ ब्रह्म-चारी के ब्रह्मचर्य में शंका होती है। भोगेच्छा जगती है। ब्रह्म-चर्य के फल में सन्देह उत्पन्न होता है अथवा संयम का भंग

और उन्माद हो जाता है। दीर्घकाल तक रहने वाला रोग होता है। वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निश्चय ही निर्ग्रन्थों को स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त शय्या आसनादि का सेवन नहीं करना चाहिए ॥१॥

नो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीणं कहं कहेज्जा ॥२॥

जो स्त्रियों की कथा नहीं करता वह निर्ग्रन्थ होता है। प्रश्न—ऐसा क्यों कहा ? आचार्य उत्तर देते हैं कि (पूर्ववत्)

नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा ॥३॥

जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता है, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है। (शेष पूर्ववत्) ॥३॥

नो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएमाणस्स निज्झायमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा निज्झाएज्जा ॥४॥

जो स्त्रियों की मनोहर सुन्दर इन्द्रियों को नहीं देखता, उनका चिन्तन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है....॥४॥

नो इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपन्नताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो

निग्गंथे इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुईयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेमाणे विहरेज्जा ॥५॥

जो टट्टी की ओट से अथवा पर्दे के पीछे से या भीत के अन्तर से, स्त्रियों के मधुर शब्द, विरह, विलाप, गीत, हँसी सिसकारी, प्रेमालाप आदि को नहीं सुनता है, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है.....॥५॥

नो निग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवई से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलीपन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो इत्थीणं निग्गंथे पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा ॥६॥

स्त्रियों के साथ पहले भोगे हुए भोग और की हुई क्रीड़ा को जो स्मरण नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ होता है....॥६॥

नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु पणीयं आहारं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं

वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलि-पन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो निग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा ॥७॥

जो गरिष्ट भोजन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ होता है ··

नो अइमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा, तम्हा खलु नो निग्गंथे अइमायाए पाणभोयणं आहारेज्जा ॥८॥

जो प्रमाण से अधिक आहार पानी नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है...॥८॥

नो विभूसाणुवादी हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। णिग्गंथस्स खलु विभूसावत्तिए विभूसियसरीरे इत्थीजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ। तओ णं इत्थिजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीह-कालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा नो विभूसाणुवादी हविज्जा ॥९॥

जो शरीर की विभूषा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है ...॥९॥

नो सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवइ से निग्गंथे। तं कहमिति चे, आयरियाह। निग्गंथस्स खलु सद्दरूवरसगंध-फासाणुवादिस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विई-गिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु नो सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवेज्जा से निग्गंथे। दसमे बंभचेरसमाहिठाणे हवइ ॥१०॥ हवंति य इत्थ सिलोगा। तं जहा—

जो मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है....यह दसवां ब्रह्मचर्य समाधि स्थान है ॥१०॥

जं विवित्तमणाइण्णं, रहियं इत्थिजणेण य।
बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए ॥१॥

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए साधु ऐसे ही स्थान का सेवन करे जो एकान्त और स्त्री आदि से रहित हो।

मणपल्हायजणणिं, कामरागविवड्ढणिं।
बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए ॥२॥

ब्रह्मचर्य में लीन भिक्षु, ऐसी स्त्री-कथा का त्याग कर दे-जो मन में आल्हाद उपजानेवाली और काम राग बढ़ाने वाली हो ॥२॥

समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥३॥

ब्रह्मचर्य में प्रीति रखने वाला साधु, स्त्रियों का परिचय और साथ बैठकर वार्तालाप करना सदा के लिए त्याग दे ।३।

अंगपच्चंगसंठाणं, चारुल्लवियपेहियं ।
बंभचेररओ थीणं, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥४॥

ब्रह्मचर्य रत साधु, स्त्रियों के अंग, प्रत्यंग, संस्थान और उनके मधुर भाषण के ढंग को विकारी दृष्टि से देखना त्याग दे ॥४॥

कूइयं रुइयं गीयं, हसियं थणियकंदियं ।
बंभचेररओ थीणं, सोयगिज्झं विवज्जए ॥५॥

ब्रह्मचर्य प्रेमी साधु, स्त्रियों के मीठे शब्द, प्रेम-रुदन, गाना, हँसी, सिसकारी, विलाप आदि श्रोत्रग्राह्य विषयों को सुनना त्याग देवे ॥५॥

हासं किड्डं रइं दप्पं, सहसावित्तासियाणि य ।
बंभचेररओ थीणं, णाणुचिंते कयाइ वि ॥६॥

ब्रह्मचर्य का साधक भिक्षु गृहावस्था में स्त्रियों के साथ की हुई हँसी, क्रीड़ा, भोजन और भोगादि का स्मरण कदापि नहीं करे ॥६॥

पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥७॥

ब्रह्मचर्य प्रिय भिक्षु, शीघ्र ही मद बढ़ाने वाले ऐसे स्निग्ध भोजनादि को सदा के लिये त्याग देवे ।।७।।

धम्मलद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं ।
नाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेररओ सया ।।८।।

ब्रह्मचर्य पालक साधु, भिक्षा वेला में शुद्ध एषणा द्वारा प्राप्त किया हुआ आहार, स्वस्थचित्त से, संयमयात्रा के निर्वाह के लिए परिमित मात्रा में लेवे । प्रमाण से अधिक आहार नहीं करे ।।८।।

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमंडणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए ।।९।।

ब्रह्मचर्य-रत भिक्षु, शरीर की विभूषा और शोभा बढ़ाना त्याग देवे तथा शृंगार करने की कोई भी क्रिया नहीं करे ।

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य ।
पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए ।।१०।।

शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श इन पांच प्रकार के काम गुणों का सदा के लिए त्याग करे ।।१०।।

आलओ थीजणाइण्णो, थीकहा य मणोरमा ।
संथवो चेव नारीणं, तासिं इंदियदरिसणं ।।११।।

कूइयं रुइयं गीयं, हासभुत्तासियाणि य ।
पणीयं भत्तपाणं च, अइमायं पाणभोयणं ।।१२।।

गत्तभूसणमिट्ठं च, कामभोगा य दुज्जया ।
नरस्सत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥१३॥

१-स्त्रियों से व्याप्त स्थान, २-स्त्रियों की मनोरम कथा ३-स्त्रियों से परिचय, ४ उनकी इन्द्रियों का देखना, ५ उनके मीठे शब्द, रुदन, गीत, हँसी आदि सुनना, ६ पूर्व भोगे हुए भोगों का स्मरण करना ७ गरिष्ट आहारादि करना ८ अधिक आहारपानी करना ९ शरीर की शोभा करना और १०-मनोज्ञ शब्दादि विषय एवं दुर्जय काम भोग, ये आत्म गवेषी पुरुष के लिए तालपुट विष के समान है ॥११।१२।१३॥

दुज्जए कामभोगे य, निच्चसो परिवज्जए ।
संकाठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥१४॥

एकाग्र मन रखने वाला ब्रह्मचारी, दुर्जय काम भोगों को सदा के लिए त्याग देवे और सभी प्रकार के शंकास्पद स्थानों को छोड़ देवे ॥१४॥

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही ।
धम्मारामेरए दंते, बंभचेरसमाहिए ॥१५॥

धर्मरूप बगीचे में रमण करने वाला धर्मरथ का चालक, धैर्यवान, इन्द्रियों का दमन करने वाला और ब्रह्मचर्य समाधि का धारक साधु, सदैव धर्म रूप बगीचे में ही विचरण करे ॥१५॥

देवदाणवगंधव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा ।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥१६॥

जो दुष्कर व्रत का पालन करता है, उस ब्रह्मचारी को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरादि नमस्कार करते हैं ॥१६॥

एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं, सिज्झिस्संति तहावरे । त्तिबेमि

यह धर्म, ध्रुव, नित्य और शाश्वत है । जिनेश्वर भगवान् से उपदेशित है । इसका पालन करके अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, सिद्ध होते हैं और भविष्य में भी सिद्ध होंगे । ऐसा मैं कहता हूँ ॥१७॥

सोलहवाँ अध्ययन समाप्त

पावसमणिज्जं सत्तदहं अज्झयणं

जे केइ उ पव्वइए नियंठे, धम्मं सुणित्ता विणओववन्ने ।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं, विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु ॥

कोई कोई निग्रन्थ पहले धर्म सुनकर और विनय से युक्त होकर दुर्लभ धर्म में प्रव्रजित होते हैं, किन्तु बाद में वे स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने लग जाते हैं ॥१॥

सेज्जा दढा पाउरणंमि अत्थि, उप्पज्जई भोत्तु तहेव पाउं।
जाणामि जं वट्टइ आउसु त्ति, किं नाम काहामि सुएण भंते ॥

वे गुरु से कहते हैं कि—भगवन् ! मुझे दृढ़ आवास मिल गया, वस्त्र भी मेरे पास हैं, और भोजन पानी भी मिल जाता है तथा जो हो रहा है उसे मैं जानता हूँ, तो फिर हे आयुष्यमान् ! मैं श्रुत पढ़कर क्या करूँ ? ॥२॥

जे केई उ पव्वइए, निद्दासीले पगामसो ।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥३॥

जो दीक्षित होकर बहुत निद्रालु हो जाता है, और खा पीकर सुख से सो जाता है, वह पाप श्रमण कहलाता है।

आयरियउवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसई बाले, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥४॥

जिन आचार्य, उपाध्याय से श्रुत और विनय प्राप्त किया है, उन्हीं की निन्दा करने वाला अज्ञानी, पाप श्रमण कहलाता है ॥४॥

आयरियउवज्झायाणं, सम्मं न पडितप्पई ।
अप्पडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥५॥

जो घमण्डी होकर आचार्य, उपाध्याय की सुसेवा नही करता, और गुणीजनों की पूजा नही करता, वह पाप श्रमण कहाता है ॥५॥

संमद्दमाणो पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असंजए संजयमन्नमाणो, पावसमणो त्ति वुच्चई ॥६॥

प्राणियों, बीज और हरी का मर्दन करने वाला और स्वयं असंयती होकर भी अपने को संयती मानने वाला, पाप श्रमण कहाता है ॥६॥

संथारं फलगं पीढं, निसिज्जं पायकंबलं ।
अप्पमज्जियमारुहई, पावसमणो त्ति वुच्चई ॥७॥

जो तृणादि का बिछोना, पाट, आसन, स्वाध्याय भूमि, पाँव पोंछने का वस्त्र, इन्हें विना पूंजे बैठता है–काम में लेता है, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥७॥

दवदवस्स चरई, पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चंडे य, पावसमणो त्ति वुच्चई ॥८॥

जो शीघ्रता पूर्वक–अयतना से चलता है, प्रमादी होकर बालक आदि को उलंघता है और क्रोधी है, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥८॥

पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पायकंबलं ।
पडिलेहा अणाउत्ते, पावसमणो त्ति वुच्चई ॥९॥

जो प्रतिलेखन में प्रमाद करता है, पात्र और कम्बलादि को इधर उधर बिखेर रखता है और प्रतिलेखना में उपयोग नहीं रखता वह पाप श्रमण कहलाता है ॥९॥

पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु णिसामिया।
गुरुं परिभावए निच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१०॥

जो प्रतिलेखना में प्रमाद करता है और विकथादि सुनने में मन लगाता है। और हमेशा शिक्षादाता के सामने बोलता है, वह पाप श्रमण कहाता है ॥१०॥

बहुमाई पमुहरी, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अवियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥११॥

अति कपटी, वाचाल, अभिमानी, लुब्ध, इन्द्रियों को खुली छोड़ने वाला, असंविभागी और अप्रीतिकारी, पाप श्रमण०

विवायं च उदीरेइ, अधम्मे अत्तपन्नहा।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१२॥

शान्त हुए विवाद को पुनः जगाने वाला, सदाचार रहित, आत्मप्रज्ञा को नष्ट करने वाला, लड़ाई और क्लेश करने वाला पाप० ॥१२॥

अथिरासणे कुक्कुइए, जत्थ तत्थ निसीयई।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१३॥

अस्थिर आसन वाला, कुचेष्ठा वाला, जहाँ कहीं भी बैठजाने वाला और आसनादि के विषय में अनुपयोगी, पाप०

ससरक्खपाए सुवई, सेज्जं न पडिलेहइ।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१४॥

जो सचित्त रज से भरे हुए पैरों को बिना पूंजे ही सो जाता है, जो शय्या की प्रतिलेखना भी नहीं करता और संथारे के विषय में अनुपयोगी रहता है, वह पाप० ॥१४॥

दुद्धदहीविगईओ, आहारेइ अभिक्खणं ।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१५॥

जो दूध, दही और विगयों का बार बार आहार करता है और जिसकी तप कर्म में प्रीति नहीं है, वह पाप० ।

अत्थंतम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१६॥

जो सूर्य के अस्त होने तक बार बार खाता रहता है और ऐसा नहीं करने की शिक्षा देने वाले गुरु के सामने बोलता है, वह पाप० ॥१६॥

आयरियपरिच्चाई, परपासंडसेवए ।
गाणंगणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१७॥

आचार्य को छोड़कर पर पाखण्ड में जाने वाला और छः छः मास में गच्छ बदलने वाला, निन्दनीय साधु, पाप०

सयं गेहं परिच्चज्ज, परगेहंसि वावरे ।
निमित्तेण य ववहरई, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१८॥

जो अपना घर छोड़कर साधु हुआ, फिर भी अन्य गृहस्थों के यहाँ रसलोलुप होकर फिरता है, और निमित्त बताकर, द्रव्योपार्जन करता है, वह पाप श्रमण है ॥१८॥

सन्नाइपिंडं जेमेइ, नेच्छई सामुदाणियं।
गिहिनिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१९॥

जो अपनी जातिवालों के आहार को ही भोगता है, किन्तु सामुदानिकी भिक्षा नहीं लेता और गृहस्थ की शय्या पर बैठता है वह पाप० ॥१९॥

एयारिसे पंचकुसीलऽसंवुडे, रूवंधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए, न से इहं नेव परत्थ लोए॥

जो ऐसे पाँच प्रकार के कुशीलों (पार्श्वस्थ, उसन्न, कुशील, संसक्त और स्वच्छन्द) से युक्त, सँवर से रहित और वेशधारी है, वह श्रेष्ठ मुनियों की अपेक्षा नीच है। वह इस लोक में विष की तरह निन्दनीय है। उसका न तो यह लोक सुधरता है न परलोक ही ॥२०॥

जे वज्जए एते सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।
अयंसि लोए अमयं व पूइए, आराहए लोगमिणं तहा परं॥

जो मुनि, इन दोषों को सदा के लिए छोड़ देता है, वह मुनियों में सुव्रती होता है। वह इस लोक में अमृत के समान पूजनीय होकर इस लोक और परलोक की आराधना कर लेता है।

–सतरहवाँ अध्ययन समाप्त–

संजइज्जं अट्ठारहमं अज्झयणं

कंपिल्ले नयरे राया, उदिण्णबलवाहणे ।
नामेणं संजए नामं, मिगव्वं उवणिग्गए ॥१॥

कंपिलपुर का संजय नामवाला राजा, बहुतसी सेना और वाहनों से सज्जित होकर मृगया के लिये नगर के बाहर निकला ॥१॥

हयाणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए ॥२॥

मिए छुभित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाण केसरे ।
भीए संते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए ॥३॥

वह घोड़े पर सवार होकर, घोड़े, हाथी तथा रथों के समूह और पायदल—इन चार प्रकार की बड़ी सेना से घिरा हुआ, कम्पिलपुर के केसर उद्यान में पहुँचा और रस मूच्छित होकर हिरणों को क्षुभित करता हुआ, भयभीत और थके हुए मृगों को मारने लगा ॥२–३॥

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाण संजुत्ते, धम्मज्झाणं झियायइ ॥४॥

उस केसर उद्यान में एक तपोधनी अनगार, स्वाध्याय और ध्यान से युक्त होकर धर्मध्यान ध्याते थे ॥४॥

अप्फोवमंडवम्मि, झायइ खवियासवे।
तस्सागए मिगे पासं, वहेई से नराहिवे ॥५॥

वे महात्मा आश्रवों का क्षय करते हुए, वृक्ष लताओं के मण्डप में ध्यान कर रहे थे। राजा ने उनके पास आये हुए मृगों को मारा ॥५॥

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं।
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासई ॥६॥

घोड़े पर चढ़ा हुआ राजा, शीघ्र ही वहाँ आया और अपने मृगों को देखा, साथ ही अनगार को भी देखा ॥६॥

अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणाहओ।
मए उ मंदपुण्णेणं, रसगिद्धेण घत्तुणा ॥७॥

मुनि को देखकर राजा भयभीत हुआ। वह सोचने लगा कि मैं रसलोलुप, हतभागी हूँ। मैंने निरपराध जीवों को मारा और अनगार को भी दुखित किया ॥७॥

आसं विसज्जइत्ताणं, अणगारस्स सो निवो।
विणएण वंदए पाए, भगवं एत्थ मे खमे ॥८॥

राजा घोड़े से नीचे उतरा और मुनिराज के चरणों में विनय पूर्वक नमस्कार करता हुआ कहने लगा-"हे भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करें,, ॥८॥

अह मोणेण सो भगवं, अणगारे झाणमस्सिए।
रायाणं न पडिमंतेइ, तओ राया भयद्दुओ ॥९॥

मुनिराज, ध्यान में मग्न थे, इससे मौन रहे और राजा को कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इससे राजा अधिक भयभीत हुआ ॥९॥

संजओ अहमम्मीति, भगवं वाहराहि मे।
कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज नरकोडिओ ॥१०॥

हे भगवन्! मैं संजय राजा हूँ। आप मुझसे बोलिये, क्योंकि क्रुद्ध हुआ अनगार, अपने तप तेज से करोड़ों मनुष्यों को भस्म कर सकता है। मुनिराज ध्यान पालकर बोले— ॥१०॥

अभओ पत्थिवा! तुब्भं, अभयदाया भवाहि य।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥११॥

हे पार्थिव! तुझे अभय है। अब तू भी अभय दाता बन। इस नाशवान् संसार में, जीवों की हत्या में क्यों आसक्त हो रहा है ॥११॥

जया सव्वं परिच्चज्ज, गंतव्वमवसस्स ते।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि ॥१२॥

जब सब कुछ यहीं छोड़कर, कर्मों के वश होकर परलोक में जाना है, तो इस अनित्य संसार और राज्य में क्यों लुब्ध हो रहा है ॥१२॥

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपाय चंचलं।
जत्थ तं मुज्झसि रायं, पेच्चत्थं नावबुज्झसे ॥१३॥

राजन्! तुझे परलोक का बोध नहीं है। अरे तू जिस पर मोहित हो रहा है, वह भोगमय जीवन और रूप बिजली के चमत्कार की तरह चञ्चल है, नाशवान् है ॥१३॥

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा।
जीवंतमणुजीवंति, मयं नाणुव्वयंति य ॥१४॥

राजन्! स्त्री, पुत्र, मित्र और बान्धव, जीते जागते हुए के ही साथी हैं। मरने पर ये कोई साथ नहीं चलते।१४।

नीहरंति मयं पुत्ता, पितरं परमदुक्खिया।
पितरो वि तहा पुत्ते, बंधू रायं तवं चरे ॥१५॥

राजन्! मरे हुए पिता को पुत्र अत्यन्त दुःखी होकर निकाल देता है, इसी प्रकार पुत्र के मरने पर पिता, बन्धु के मरने पर भाई, मुर्दे को निकाल देता है। इसलिए तुझे तप का ही आचरण करना चाहिये ॥१५॥

तओ तेणज्जिए दव्वे, दारे य परिरक्खिए।
कीलंतिऽन्ने नरा रायं, हट्ठतुट्ठमलंकिया ॥१६॥

मरने के बाद उसके उपार्जन किये हुए धन का और रक्षा की हुई स्त्रियों का, दूसरे हृष्ट पुष्ट और विभूषित जन उपभोग करते हैं ॥१६॥

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं।
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छइ उ परं भवं ॥१७॥

मृतात्मा, उन शुभ फल दाता या दुःखप्रद कर्मों को साथ लेकर परभव में जाता है, जिनका उपार्जन उसने अपने जीवन में किया है ॥१७॥

सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए ।
महया संवेगनिव्वेदं, समावन्नो नराहिवो ॥१८॥

उन मुनिराज से धर्म सुनकर वह नराधिपति, महान् संवेग और निर्वेद को प्राप्त हुआ ॥१८॥

संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे ।
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए ॥१९॥

संयति राजा, राज्य को छोड़कर, भगवान् गर्दभाली अनगार के पास जिन शासन में दीक्षित हो गया ॥१९॥

चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ ।
जहा ते दीसई रूवं, पसन्नं ते तहा मणो ॥२०॥

राष्ट्र का त्याग कर प्रव्रजित हुए क्षत्रिय-राजर्षि ने संजय राजर्षि से कहा कि जैसा आपका रूप सुन्दर है, वैसा ही आपका मन भी प्रसन्न है । उन्होंने पूछा– ॥२०॥

किं नामे किं गोत्ते, कस्सट्ठाए व माहणे ।
कहं पडियरसि बुद्धे, कहं विणीए त्ति वुच्चसि ॥२१॥

प्रश्न–आपका नाम क्या है ? गोत्र क्या है ? आप किस लिये माहन हुए ? आप गुरुजनों की सेवा

किस प्रकार करते हैं ? और किस प्रकार विनयवान् कहलाते हैं ? ॥२१॥

संजओ नाम नामेणं, तहा गोत्तेण गोयमो ।
गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरणपारगा ॥२२॥

उत्तर-संजय मेरा नाम और गोतम गोत्र है । गर्दभाली मेरे आचार्य हैं-जो विद्या और चारित्र के पारगामी हैं ॥२२॥

किरियं अकिरियं विणयं, अन्नाणं च महामुणी ।
एएहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयन्ने किं पभासइ ॥२३॥

हे महामुनि ! क्रियावाद, अक्रियाद, विनयवाद और अज्ञानवाद, इन चारवादों में रहकर वे वादी क्या बोलते हैं ? अर्थात् वे एकान्त प्ररूपणा करते हैं ॥२३॥

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिणिव्वुए ।
विज्जाचरणसंपन्ने, सच्चे सच्चपरक्कमे ॥२४॥

विद्या और चारित्र सम्पन्न, सत्यवादी, सत्य पराक्रम वाले और परिनिवृत्त सर्वज्ञ ऐसे भ० महावीर ने इन वादों का कथन किया है ॥२४॥

पडंति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो ।
दिव्वं च गइं गच्छंति, चरित्ता धम्ममारियं ॥२५॥

पाप कर्म करने वाले घोर नरक में पड़ते हैं और आर्य धर्म का आचरण करने वाले दिव्य गति में जाते हैं ॥२५॥

मायावुइयमेयं तु मुसा भासा निरत्थिया ।
संजममाणो वि अहं, वसामि इरियामि य ॥२६॥

वे वादी माया पूर्वक बोलते हैं । इसलिए उनकी वाणी मिथ्या एवं निरर्थक है । उनके मिथ्या कथन को सुनकर भी में संयम में स्थिर हूँ और यतनापूर्वक चलता हूँ ॥२६॥

सव्वे ते विइया मज्झं, मिच्छादिट्ठी अणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पगं ॥२७॥

मैंने उन सब वादों को जान लिया है । वे सब मिथ्या दृष्टि और अनार्य हैं। मैं परलोक और आत्मा की विद्यमानता सम्यक् प्रकार से जानता हूँ ॥२७॥

अहमासि महापाणे, जुइमं वरिससओवमे ।
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससओवमे ॥२८॥

मैं महाप्राण विमान में द्युतिमान् देव था । यहाँ की सौ वर्ष की पूर्णायु के समान, वहाँ देवों की पल्योपम, सागरोपम, जैसी मेरी वर्षशतोपम आयु थी ॥२८॥

से चुए बंभलोगाओ, माणुसं भवमागए ।
अप्पणो य परेसिं च, आउं जाणे जहा तहा ॥२९॥

ब्रह्मलोक से च्यवकर मैं मनुष्य भव में आया । अब मैं अपनी और दूसरों की आयु को यथातथ्य जानता हूँ ॥२९॥

नाणारुइं च छंदं च, परिवज्जेज्ज संजए ।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ॥३०॥

क्षत्रिय राजर्षि ने कहा–साधु, विविध प्रकार की रुचि और अभिप्राय तथा समस्त अनर्थों का सर्वथा त्याग कर दे। और सम्यग्ज्ञान पूर्वक संयम पाले ॥३०॥

पडिक्कमामि पसिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे ॥३१॥

मैं सावद्य प्रश्नों और गृहकार्यों से निवृत्त हो गया हूँ। विद्वानों को इस प्रकार तपाचरण करना चाहिए ॥३१॥

जं च मे पुच्छसि काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे ॥३२॥

हे मुनि ! आप मुझ से शुद्ध चित्त से सम्यक् प्रश्न पूछो। ऐसा ज्ञान जिन शासन में विद्यमान है, जो सर्वज्ञों का कहा हुआ है ॥३२॥

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिवज्जए ।
दिट्ठिए दिट्ठिसंपन्ने, धम्मं चरसु दुच्चरं ॥३३॥

धीर पुरुष को चाहिए कि क्रिया में विश्वास करे और अक्रिया को त्याग दे और दृष्टि से सम्यग्दृष्टि सम्पन्न होकर दुष्कर धर्म का आचरण करे ॥३३॥

एवं पुण्णपयं सोच्चा, अत्थधम्मोवसोहियं ।
भरहो वि भारहं वासं, चिच्चा कामाइ पव्वए ॥३४॥

इन मोक्ष रूप अर्थ के देने वाले धर्म से शोभित पुण्य पदों को सुनकर 'भरत चक्रवर्ती' ने भारतवर्ष और काम भोगों को छोड़कर दीक्षा ली ॥३४॥

सगरो वि सागरंतं, भरहवासं नराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाइ परिनिव्वुडे ॥३५॥

'सगर चक्रवर्ती' ने सागर पर्यन्त, भारतवर्ष और ऐश्वर्य को छोड़कर दया से (संयम पालकर) मुक्त हुए ॥३५॥

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महड्ढिओ ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं नाम महाजसो ॥३६॥

महान् यशस्वी और महान् ऋद्धिशाली 'मघवा' नाम के चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को त्याग कर दीक्षा अंगीकार की ।

सणंकुमारो मणुस्सिंदो, चक्कवट्टी महड्ढिओ ।
पुत्तं रज्जे ठवेऊणं, सो वि राया तवं चरे ॥३७॥

महा ऋद्धिशाली 'सनत्कुमार' चक्रवर्ती नरेन्द्र ने अपने पुत्र को राज्य पर स्थापित कर, प्रव्रजा लेकर तपाचरण किया।

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महड्ढिओ ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३८॥

महा ऋद्धिमान् लोक में शान्ति के करने वाले 'शान्तिनाथ' चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को त्याग कर मोक्ष प्राप्त किया ॥३८॥

इक्खागरायवसभो, कुंथू नाम नरीसरो ।
विक्खायकित्ती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३९॥

इक्ष्वाकु वंश के राजाओं में श्रेष्ठ और विख्यात कीर्ति वाले भगवान् 'कुन्थुनाथ' नरेश्वर ने मोक्ष गति प्राप्त की ।

सागरंतं चइत्ताणं, भरहं नरवरीसरो ।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४०॥

समुद्र पर्यन्त भारतवर्ष को त्याग कर 'अर' नाम के नरेन्द्र ने, कर्मरज को उड़ाकर मोक्ष प्राप्त की ॥४०॥

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
चइत्ता उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे ॥४१॥

महा समृद्धिमान् 'महापद्म' नाम के चक्रवर्ती ने भारत वर्ष और उत्तम भोगों का त्याग कर तप अंगीकार किया ४१।

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माणनिसूदणो ।
हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४२॥

शत्रुओं के मान का मर्दन करके पृथ्वी पर एक छत्र राज्य करने वाले नरेन्द्र 'हरिषेण' चक्रवर्ती ने दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया ॥४२॥

अन्निओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे ।
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४३॥

हजारों राजाओं के साथ 'जय' नाम के नरेन्द्र ने भोगों का त्याग किया और जिन प्रणीत तप संयम का सेवन कर मोक्ष पाये ॥४३॥

दसण्णरज्जं मुदियं, चइत्ताणं मुणी चरे।
दसण्णभद्दो निक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥४४॥

साक्षात् इन्द्र से प्रेरित हुआ 'दशार्णभद्र' राजा, समृद्ध दशार्ण देश का त्याग कर, मुनि होकर तपाचरण किया ।४४।

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥४५॥

साक्षात् इन्द्र से प्रेरित हुए 'नमिराज' ने अपनी आत्मा को विनम्र बनाया और विदेह देश तथा घर को छोड़कर संयम अंगीकार किया ॥४५॥

करकंडू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो।
नमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य नग्गई ॥४६॥

कलिंग देश में 'करकंडू', पाञ्चाल देश में 'दुर्मुख,' विदेह देश में 'नमिराज' और गान्धार देश में 'निग्गई' राजा हुआ। ४६॥

एए नरिंदवसभा, निक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥४७॥

राजाओं में वृषभ के समान श्रेष्ठ, ये सब राजा अपने

पुत्रों को राज्य पर स्थापित कर, जिन शासन में दीक्षित हुए और श्रमण वृत्ति का पालन किया ॥४७॥

सोवीररायवसभो, चइत्ताणं मुणी चरे।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४८॥

सौवीर देश के राजाओं में श्रेष्ठ 'उदायन' राजा ने राज्य छोड़ कर दीक्षा ली, और संयम पाल कर मोक्ष पाया।

तहेव कासिराया वि, सेओ सच्चपरक्कमे।
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं ॥४९॥

इसी प्रकार काशीराज ने काम भोगों को छोड़ कर, श्रेष्ठ सत्य एवं संयम में पराक्रम करके कर्म रूप महावन को जला दिया ॥४९॥

तहेव विजओ राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो ॥५०॥

इसी प्रकार निर्मल कीर्तिवाले महायशस्वी 'विजय' राजा ने गुण समृद्ध राज्य को छोड़ कर दीक्षा ली ॥५०॥

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
महब्बलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरिं ॥५१॥

'महाबल' नाम के राजर्षि ने, एकाग्र मन से उग्र तप करके मोक्ष रूप लक्ष्मी को प्राप्त किया ॥५१॥

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व्व महिं चरे।
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥५२॥

जो धीर पुरुष हैं, वे कुहेतुओं में पड़कर उन्मत्त की तरह पृथ्वी पर कैसे विचर सकते हैं? अर्थात्-नहीं विचर सकते। पूर्वोक्त भरतादि महापुरुष, इसी विशेषता को ग्रहण करके शूरवीर और दृढ़ पराक्रमी हुए ॥५२॥

अच्चंतनियाणखमा, सच्चा मे भासिया वई।
अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागया ॥५३॥

मुनिजी! मैंने वह वाणी कही है- जो कर्म मल शोधने में अत्यन्त समर्थ है, इस वाणी को सुनकर भूतकाल में अनेक तिर गये, वर्त्तमान में तिर रहें हैं, और भविष्य में तिरेंगे।

कहं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे।
सव्वसंगविनिम्मुक्के, सिद्धे भवइ नीरए ॥५४॥

ऐसा कौन धीर पुरुष है जो कुहेतुओं को ग्रहण करके अपनी आत्मा का अहित करेगा? अर्थात् नहीं करेगा। बुद्धि-मान् वही है जो सब प्रकार के संगों से मुक्त होकर सिद्ध हो जाता है ॥५४॥

()-अठारहवाँ अध्ययन समाप्त-()



मियापुत्तीयं एगूणवीसइमं अज्झयणं

सुग्गीवे नयरे रम्मे, काणणुज्जाणसोहिए ।
राया बलभद्दित्ति, मिया तस्सग्गमाहिसी ॥१॥

अनेक प्रकार के उपवनों से सुशोभित और रमणीय ऐसे सुग्रीव नगर में बलभद्र नामक राजा था। उसके मृगा नाम की पटरानी थी ॥१॥

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए ।
अम्मापिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥२॥

उनके 'बलश्री' नाम का पुत्र था जो 'मृगापुत्र' के नाम से विख्यात था। वह युवराज, माता पिता का प्रिय और दुष्टों का दमन करने वाला–दमीश्वर था ॥२॥

नंदणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं ।
देवे दोगुंदगो चेव, निच्चं मुइयमाणसो ॥३॥

वह युवराज, नंदन वन के समान भवन में, स्त्रियों के साथ दोगुन्दक देव की तरह, सदैव प्रसन्न चित्त रहने वाला था।

मणिरयणकोट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ ।
आलोएइ नगरस्स, चउक्कत्तियचच्चरे ॥४॥

जिसके आँगन में मणि और रत्न जड़े हैं, ऐसे महल में

से वह युवराज नगर के तीन, चार और बहुत मार्गो वाले बाजार देख रहा था ॥४॥

अह तत्थ अइच्छंतं, पासई समणसंजयं ।
तवनियमसंजमधरं, सीलड्ढं गुणआगरं ॥५॥

युवराज ने एक श्रमण को–जो तप नियम और संयम को धारण करनेवाला, शीलवान् और गुणों के भण्डार को वहाँ जाते हुए देखा ॥५॥

तं पेहई मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाए उ ।
कहिमन्नेरिसं रूवं, दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥६॥

मृगापुत्र उन मुनि को एक दृष्टि से देखने लगा । उसे विचार हुआ कि मैंने इस प्रकार का रूप पहले कहीं देखा है ।

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे ।
मोहंगयस्स संतस्स, जाईसरणं समुप्पन्नं ॥७॥

साधु के दर्शन निमित्त एवं मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से तथा आन्तरिक भावों की शुद्धि से, मृगापुत्र को जाति–स्मरण ज्ञान हुआ ॥७॥

देवलोगचुओ संतो, माणुसं भवमागओ ।
सण्णिणाण समुप्पण्णे, जाइं सरइ पुराणयं ॥८॥

संज्ञीज्ञान उत्पन्न होने से, अपने पूर्व जन्म का स्मरण किया । उसे ज्ञात हुआ कि मैं देवलोक से च्यवकर मनुष्य भव में आया हूँ ॥८॥

जाईसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरई पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुरा कयं ॥९॥

जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त होने पर, महाऋद्धिवाले मृगापुत्र, अपने पूर्व जन्म और उसमें पाले हुये संयम को याद करने लगे ॥९॥

विसएसु अरज्जंतो, रज्जंतो संजमम्मिय ।
अम्मापियरमुवागम्म, इमं वयणमब्बवी ॥१०॥

विषय भोगों में रंजित न होकर और संयम में प्रीति रखते हुए मृगापुत्र, माता पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगे ॥१०॥

सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, नरएसु दुक्खं च तिरिक्खजोणिसु।
निव्विण्णकामो मि महण्णवाओ, अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ॥११॥

हे माता ! मैंने पाँच महाव्रतों को जान लिया है, और नरक तिर्यञ्च में भोगे हुए दुःखों को भी जान लिया है। मैं संसार समुद्र से निवृत्त होने का अभिलाषी हूँ। मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दो ॥११॥

अम्म ताय मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबंध दुहावहा ॥१२॥

हे माता पिता ! मैंने काम भोगों को भोग लिया।

ये विषफल के समान हैं। इनका परिणाम अत्यन्त कटु और दुःख दायक है ॥१२॥

इमं सरीरं अणिच्चं, असुई असुइसंभवं।
असासयावासमिणं, दुक्खकेसाण भायणं ॥१३॥

यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है, अशुचि से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। इसमें जीव का निवास भी अशाश्वत है और यह दुःखों तथा क्लेशों का भाजन है ॥१३॥

असासए सरीरम्मि, रइं नोवलभामहं।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसन्निभे ॥१४॥

पानी के बुलबुले के समान अशाश्वत ऐसे शरीर में मुझे प्रीति नहीं है, क्योंकि यह तो पहले या पीछे छोड़ना ही पड़ेगा ॥१४॥

माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए।
जरामरणघत्थम्मि, खणं पि न रमामहं ॥१५॥

व्याधि और रोगों के घर, तथा जन्म मरण से घिरे हुए, इस असार मनुष्य जन्म में मैं एक क्षण भर भी आनंद नहीं मानता ॥१५॥

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि यं।
अहो दुक्खो हु संसारो; जत्थ कीसंति जंतवो ॥१६॥

जन्म दुःख रूप है, बुढ़ापा, रोग और मृत्यु, ये सभी

दुःख दायक है, आश्चर्य है कि यह सारा संसार दुःख रूप है। इसमें जीव क्लेश पा रहे हैं ॥१६॥

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा।
चइत्ताणं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे ॥१७॥

क्षेत्र, घर, सोना-चाँदी, पुत्र, स्त्री और बान्धव तथा इस शरीर को भी छोड़कर मुझे अवश्य जाना पड़ेगा ॥१७॥

जहा किंपागफलाणं, परिणामो न सुंदरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुंदरो ॥१८॥

जिस प्रकार किंपाक फल खाने का परिणाम सुन्दर नहीं होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता है ॥१८॥

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जई।
गच्छंतो सो दुही होइ, छुहातण्हाए पीडिओ ॥१९॥

जो मनुष्य, बिना पाथेय-भाता साथ लिये, लंबा सफर करता है, वह आगे जाकर भूख प्यास से पीड़ित होकर दुःखी होता है ॥१९॥

एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं।
गच्छंतो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पिडिओ ॥२०॥

इसी प्रकार धर्म नहीं करने वाला जीव, परभव में जाते हुए व्याधि और रोग से पीड़ित होकर दुःखी होता है।

अद्धाणं जो महंतं तु, सपाहेज्जो पवज्जई ।
गच्छंतो सो सुही होइ, छुहातण्हाविवज्जिओ॥२१॥

जो मनुष्य, पाथेय साथ लेकर लम्बा सफर करता है, वह मार्ग में भूख प्यास से रहित होकर सुखी होता है ॥२१॥

एवं धम्मं पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥२२॥

इसी प्रकार जो धर्म पालन कर परभव में जाता है, वह अल्प कर्म और वेदना रहित होकर सुखी होता है ॥२२॥

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभंडाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ ॥२३॥
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ॥

जिस प्रकार घर में आग लगजाने पर गृहस्वामी, मूल्यवान् वस्तु को बाहर निकालता है और असार वस्तुओं को छोड़ देता है, उसी प्रकार जरा और मृत्यु से जलते हुए इस लोक में से आपकी आज्ञा पाकर मैं अपनी आत्मा को तारूँगा ।।२३-२४॥

तं बेंति अम्मापियरो, सामण्णं पुत्त दुच्चरं ।
गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणो ॥२५॥

माता पिता कहने लगे—हे पुत्र ! साधु को हजारों गुण

धारण करने पड़ते हैं, इसलिये साधु धर्म का पालन दुष्कर है।

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं ॥२६॥

पुत्र ! शत्रु हो या मित्र, सभी प्राणियों पर जीवन पर्यन्त समभाव रखना तथा हिंसा से निवृत्त होना दुष्कर है।

निच्चकालप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं।
भावियव्वं हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुक्करं ॥२७॥

सदा के लिए अप्रमत्त होकर झूठ का त्याग करना और उपयोग पूर्वक हितकारी सत्य वचन बोलना दुष्कर है।

दंतसोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्करं ॥२८॥

विना दिये तो दांत साफ करने को तिनका भी नहीं लेना और निर्वद्य तथा एषणीय वस्तु हो लेना अति दुष्कर है।

विरई अबंभचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा।
उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं ॥२९॥

काम भोग के रस को जानने वाले के लिए, मैथुन से निवृत्त होकर उग्र ब्रह्मचर्य को धारण करना अति दुष्कर है।

धणधन्नपेसवग्गेसु, परिग्गहविवज्जणं।
सव्वारंभपरिच्चाओ, णिम्ममत्तं सुदुक्करं ॥३०॥

सभी प्रकार के आरम्भ परिग्रह का और धन धान्य तथा नौकर चाकरों का त्याग कर, निर्ममत्व होना महा कठिन है।

चउव्विहे वि आहारे, राईभोयणवज्जणा ।
सन्निहीसंचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं ॥३१॥

रात्रि में चारों आहार का त्याग करना और घृतादि के संचय का त्याग करना अति कठिन है ।३१।

छुहा तण्हा य सीउण्हं, दंसमसगवेयणा ।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा जल्लमेव य ॥३२॥
तालणा तज्जणा चेव, वहबंधपरीसहा ।
दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ॥३३॥

क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण डांस और मच्छरों से होने वाला कष्ट, आक्रोश वचन, दुखद शय्या, प्राणादि स्पर्श, मैल परीषह, ताड़ना, तर्जना, तथा वध बन्धन का परीषह, भिक्षाचर्या याचना और अलाभ इत्यादि परीषहों का सहना अति दुखकारी है ॥३२-३३॥

कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ य दारुणो ।
दुक्खं बंभव्वयं घोरं, धारेउं असहप्पणो ॥३४॥

कापोत के समान दोषों से बचने की वृत्ति और केश लुंचन दुःखदायी है। जो महान् आत्मा नहीं है उनके लिए घोर ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करना अत्यन्त कठिन है ॥३४॥

सुहोइओ तुमं पुत्ता, सुकुमालो सुमज्जिओ ।
न हुसी पभू तुमं पुत्ता, सामण्णमणुपालिया ॥३५॥

हे पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य, सुकुमार और सदा अलंकृत रहने वाला है। हे पुत्र! तू संयम पालने योग्य नहीं है।

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महब्भरो ।
गुरुओ लोहभारु व्व, जो पुत्ता ! होइ दुव्वहो ॥३६॥

जिस प्रकार लोहे के बड़े भार को सदा उठाये रखना दुष्कर है, उसी प्रकार गुणों के महान् भार को जीवन पर्यन्त बिना विश्राम लिए, धारण करना बड़ा ही कठिन है ॥३६॥

आगासे गंगसोउ व्व, पडिसोउ व्व दुत्तरो ।
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोदही ॥३७॥

जिस प्रकार आकाश गंगा की धारा को तैरना और प्रतिश्रोत=धारा के सामने तैरना कठिन है तथा भुजाओं से समुद्र पार करना कठिन है, उसी प्रकार गुणों के समुद्र को पार करना भी कठिन है ॥३७॥

वालुयाकवलो चेव, निरस्साए उ संजमे ।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ॥३८॥

रेत के कवल की तरह संयम नीरस है, और तलवार की धार के समान तप का आचरण करना कठिन है ॥३८॥

अहीवेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त दुक्करे
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ॥३९॥

हे पुत्र ! सर्प की एकाग्र दृष्टि होती है, उसी प्रकार एकाग्र मन रखकर चारित्र पालना दुष्कर है और लोहे के चनों को चवाने के समान संयम पालना अत्यन्त ही कठिन है ।३९।

जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा ।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ॥४०॥

जिस प्रकार जलती हुई अग्नि शिखा को पीना महा दुष्कर है, उसी प्रकार तरुणवय में साधुपना पालना महा दुष्कर है ॥४०॥

जहा दुक्खं भरेउं जे, होइ वायस्स कोत्थलो ।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं ॥४१॥

जिस प्रकार कपड़े की थैली को हवा से भरना कठिन है, उसी प्रकार कायरता से संयम पालना कठिन है ॥४१॥

जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करं मंदरो गिरी ।
तहा निहुयनीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ॥४२॥

जिस प्रकार सुमेरु पर्वत को तराजू से तोलना दुशक्य है, उसी प्रकार निश्चल और शंका रहित होकर साधुता का पालन करना दुशक्य है ॥४२॥

जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणायरो ।
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दमसायरो ॥४३॥

जिस प्रकार समुद्र को भुजाओं से तैरना दुष्कर है, उसी प्रकार कषायों को उपशान्त किये बिना, संयम रूप समुद्र को तैरना कठिन है ॥४३॥

भुंज माणुस्सए भोगे, पंचलक्खणए तुमं ।
भुत्तभोगी तओ जाया, पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥४४॥

हे पुत्र ! अभी तुम शब्दादि पांच लक्षण वाले मनुष्य सम्बन्धी भोगों को भोगो । भुक्त भोगी होने के बाद ही धर्म का पालन करना ॥४४॥

सो बेइ अम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं ।
इहलोगे निप्पिवासस्स, नत्थि किंचि वि दुक्करं ॥४५॥

मृगापुत्र ने कहा—हे माता पिता ! आपका कहना ठीक है, किन्तु इस लोक से निस्पृह बने हुए पुरुष के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ॥४५॥

सारीरमाणसा चेव, वेयणाओ अणंतसो ।
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्खभयाणि य ।४६।

मैने शारीरिक और मानसिक भयङ्कर वेदनाएँ अनन्त बार सहन की और अनेक बार दुःख तथा भय का अनुभव किया।

जरामरणकंतारे, चाउरंते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥४७॥

जन्म मरण रूपी चार गतिवाली भयङ्कर अटवी में,

मैंने जन्म मरण के भयंकर कष्टों को सहन किये हैं ॥४७॥

जहा इहं अगणी उण्हो, इतोऽणंतगुणे तहिं ।
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥४८॥

यहाँ अग्नि में जितनी उष्णता है, उससे अनन्त गुणी उष्णता नरकों में है । मैंने उस कष्ट दायक वेदना को सहन किया है ॥४८॥

जहा इहं इमं सीयं, इत्तोऽणंतगुणो तहिं ।
नरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइया मए ॥४६॥

यहाँ जैसी शीत है, उससे अनन्त गुणी शीत नरकों में है । उस असाता वेदना को मैंने सहन की है ॥४६॥

कंदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलंतम्मि, पक्कपुव्वो अणंतसो ॥५०॥

मुझ आक्रन्द करते हुए को कुन्दु कुम्भियों में ऊँचे पैर और नीचे सिर करके पहले अनन्त बार पकाया गया ॥५०॥

महादवग्गिसंकासे, मरुम्मि वइरवालुए ।
कलंबवालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणंतसो ॥५१॥

महा दावाग्नि के समान तथा मरु देश की वालुका के समान वज्र वालुका में और कदम्ब नदी की वालुका में मुझे अनन्त बार जलाया गया ॥५१॥

रसंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढं बद्धो अबंधवो ।
करवत्तकरकयाईहिं, छिन्नपुव्वो अणंतसो ॥५२॥

स्वजनों से रहित आक्रन्द करते हुए मुझे, कुन्दुकुम्भी में ऊँचा बाँधकर, करवत और क्रकचो से पूर्वभवो मे अनन्तबार छेदन भेदन किया ॥५२॥

अइतिक्खकंटगाइण्णे, तुंगे सिंबलिपायवे ।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं ॥५३॥

अत्यन्त तीखे कांटो वाले ऊँचे शाल्मलि वृक्ष पर मुझे बन्धन से बांध दिया और कांटों पर इधर उधर खींचा । इस प्रकार कष्टों को सहन किया ॥५३॥

महाजंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुभेरवं ।
पीडिओ मि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणंतसो ॥५४॥

अपने अशुभ कर्मों के कारण मुझ पापकर्मी को, अत्यन्त रौद्रता से महायन्त्रों में डालकर इक्षु की तरह पीला गया ।५४।

कूवंतो कोलसुणएहिं, सामेहिं सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरंतो अणेगसो ॥५५॥

आक्रन्द करते और इधर उधर भागते हुए मुझे, कुत्तों और सुअरों रूपी श्याम और सबल परमाधामियों ने नीचे गिराया और फाड़ा तथा छेदा ॥५५॥

असीहिं अयसिवण्णेहिं, भल्लीहिं पट्टिसेहि य।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य, उववण्णो पावकम्मुणा॥५६॥

मैं पाप कर्मों से नरक में उत्पन्न हुआ और अलसी के वर्ण जैसी तलवारों, भालों और पट्टिश शस्त्रों से छेदन भेदन और टुकड़े टुकड़े किया गया ॥५६॥

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलंते समिलाजुए।
चोइओ तुत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ ॥५७॥

मुझ परवश पड़े हुए को जलते हुए समिला युक्त लोहे के रथ में जोता, फिर चाबुक और जोतों से मारकर हाँका तथा रोज की तरह भूमि पर गिराया ॥५७॥

हुयासणे जलंतम्मि, चियासु महिसो विव।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥५८॥

पाप कर्मों से परवश बने हुए मुझ पापी को, अग्नि से जलती हुई चित्ताओं में, भैंसे की तरह जलाया और पकाया गया।

बला संडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहिं पक्खिहिं।
विलुत्तो विलवंतोहं, ढंकगिद्धेहिंऽणंतसो ॥५९॥

मुझ रोते हुए को बलपूर्वक संडासी जैसे और लोहे के समान कठोर मुँह वाले ढंक और गिद्ध पक्षियों द्वारा अनन्ती बार छिन्न भिन्न किया गया ॥५९॥

तण्हाकिलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणिं णइं।
जलं पाहिं त्ति चिंतंतो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥६०॥

में प्यास से अत्यन्त पीड़ित होकर, जल पीने की इच्छा से दौड़ता हुआ वैतरनी नदी पर पहुँचा । वहां उस्तरे की धारा के समान नदी की धारा से मेरा विनाश हुआ ॥६०॥

उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहिं पडंतेहिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

मैं गर्मी से घबराया हुआ असिपत्र महावन में गया । किन्तु तलवार के समान पत्तों के गिरने से अनेक बार छिन्न-भिन्न हुआ । ६१॥

मुग्गरेहिं मुसुंढीहिं, सूलेहिं मूसलेहि य ।
गयासं भग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणंतसो ॥६२॥

मुद्गरों, मुसंढियों, त्रिशूलों, मूसलों और गदा से मेरे गात्रों का भंग किया । मैंने ऐसा दुःख अनन्त बार पाया ।६२।

खुरेहिं तिक्खधारेहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कित्तो य अणेगसो ॥६३॥

में अनेक बार कतरणियों से कतरा गया, छुरियों से चीरा गया और मेरी चमड़ी उतार दी गई ॥६३॥

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ बद्धरुद्धो य, बहुसो चेव विवाइओ ॥६४॥

मृग की तरह परवश पड़ा हुआ मैं, धोखे से पाशों और कूट जालों में बाँधा गया, रोका गया और मारा गया ।

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो वा अवसो अहं ।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणंतसो ॥६५॥

मैं परवश होकर बडिश यन्त्र से, और मगर जाल से मच्छी की तरह खींचा गया, फाड़ा, पकड़ा और मारा गया ॥६५॥

विदंसएहिं जालेहिं, लेप्पाहिं सउणो विव ।
गहिओ लग्गो य बद्धो य, मारिओ य अणंतसो ॥६६॥

बाज पक्षियों से, जालों से और लेपों से, पक्षी की तरह मैं अनन्तबार पकड़ा गया, चिपटाया गया, बांधा और मारा गया।

कुहाडफरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओ य अणंतसो ॥६७॥

मैं सुथार रूपी देवों से, कुल्हाड़े फरसे आदि से, वृक्ष की तरह अनन्त बार फाड़ा गया, छीला गया और टुकड़े टुकड़े कर दिया गया ॥६७॥

चवेडमुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अयं विव ।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो, चुण्णिओ य अणंतसो ॥६८॥

जिस प्रकार लोहार लोहे को कूटते हैं, उसी प्रकार मैं भी थप्पड़ मुष्ठि आदि से अनन्त बार पीटा गया, कूटा गया, भेदा गया और चूर्ण के समान पीस डाला गया ॥६८॥

तत्ताइं तंबलोहाइं, तउयाइं सीसयाणि य ।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरवं ॥६९॥

बहुत जोर से अरड़ाट करते हुए मुझे, कल कल शब्द करता हुआ तप्त ताम्बा, लोहा, कथीर, और शीशा पिलाया गया ॥६९॥

तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य ।
खाविओ मि समंसाइं, अग्गिवण्णाइं णेगसो ॥७०॥

"तुझे मांस प्रिय था"—ऐसा कहकर मेरे शरीर का मांस काटकर उसे भूनकर, अग्नि के समान करके, मुझे अनेक बार खिलाया ॥७०॥

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणिय ।
पाइओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य ॥७१॥

"तुझे ताड़ वृक्ष से, गुड़ से और महुए आदि से बनी हुई मदिरा प्रिय थी"—यों कहकर, मुझे जलती हुई चर्बी और रुधिर पिलाया गया ॥७१॥

निच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेदिता मए ॥७२॥

मैंने सदा भयभीत, उद्विग्न, दुखित और व्यथित बने हुए अत्यन्त दुःखपूर्ण वेदना सहन की ॥७२॥

तिव्वचंडप्पगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा ।
महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु वेदिता मए ॥७३॥

मैंने नरकों में तीव्र, प्रचण्ड, गाढ़, घोर, भीम, अत्यन्त

पीकर, मृगचर्या करता हुआ अपने स्थान पर चला जाता है।

एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए ।
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥८३॥

इसी प्रकार संयम में सावधान और अनेक स्थानों में भ्रमण करने वाला भिक्षु, मृगचर्या का आचरण करके मोक्ष में जाता है ॥८३॥

जहा मिगे एग अणेगचारी, अणेगवासे धुवगोयरे य ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे, नो हीलए नो वि य खिंसएज्जा ।८४।

जिस प्रकार मृग, अकेला किसी एक स्थान पर न रहकर, अनेक स्थानों में भ्रमण करने वाला और सदा गोचरी से ही निर्वाह करने वाला होता है, उसी प्रकार गोचरी के लिए गया हुआ मुनि, आहार न मिलने पर किसी की अवहेलना या निन्दा नहीं करे ॥८४॥

मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता जहासुहं ।
अम्मापिऊहिं अणुन्नाओ, जहाइ उवहिं तओ ॥८५॥

मैं मृगचर्या का पालन करूंगा। "हे पुत्र ! जैसा सुख हो वैसा करो"। इस प्रकार माता पिता की आज्ञा मिलने पर वह उपधि (गृहस्थी के साधनों) का त्याग करने लगा ॥८५॥

मिगचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं ।
तुब्भेहिं अब्भणुन्नाओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ॥८६॥

मृगापुत्र ने कहा–आपकी आज्ञा पाकर मैं सभी दुःखों से मुक्त करने वाली मृगचर्या का आचरण करूँगा। माता पिता ने कहा–पुत्र ! जाओ तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो ॥८६॥

एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणित्ताण बहुविहं।
ममत्तं छिंदई ताहे, महानागो व्व कंचुयं ॥८७॥

यों अनेक प्रकार से माता पिता की आज्ञा लेकर वे उसी प्रकार ममत्व का त्याग करने लगे, जिस प्रकार महानाग, कांचली का त्याग करता है ॥८७॥

इड्ढी वित्तं च मित्ते य, पुत्तदारं च नायओ।
रेणुयं व पडे लग्गं, निद्धुणित्ताण निग्गओ ॥८८॥

मृगापुत्रजी, वस्त्र पर लगी हुई धुल की तरह, ऋद्धि सम्पत्ति, मित्र, पुत्र, स्त्री और सम्बन्धियों को छोड़कर निकल गये ॥८८॥

पंचमहव्वयजुत्तो, पंचहिं समिओ तिगुत्तिगुत्तो य।
सब्भितरबाहिरओ, तवोकम्मम्मि उज्जुओ ॥८९॥

मृगापुत्र, पांच महाव्रतों से युक्त, पांच समिति सहित, तीन गुप्तियों से गुप्त होकर बाह्य और आभ्यन्तर तप कर्म में सावधान हुए ॥८९॥

णिम्ममो णिरहंकारो, णिस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥९०॥

वे ममत्व अहंकार और सर्वसंग से रहित हो और गर्व का त्याग कर, सभी त्रस स्थावर प्राणियों पर समभाव रखने लगे।

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो णिंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥९१॥

वे लाभ अलाभ, सुख दुःख, जीवन मरण, निन्दा प्रशंसा और मानापमान में समभाव रखने लगे ॥९१॥

गारवेसु कसाएसु, दंडसल्लभएसु य।
णियत्तो हाससोगाओ, अणियाणो अबंधणो ॥९२॥

मृगापुत्रजी, निदान और बन्धन से रहित होकर तीन गर्व, चार कषाय, तीन दण्ड, तीन शल्य, सात भय तथा हास्य और शोक से निवृत्त हो गये ॥९२॥

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।
वासी चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥९३॥

वे इस लोक और परलोक की आकांक्षाओं से रहित थे। आहारादि मिलने न मिलने पर, तथा चन्दन से पूजने वाले और वसूले से छोलने वाले पर, समभाव रखने वाले थे।

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो।
अज्झप्पज्झाण जोगेहिं, पसत्थदमसासणो ॥९४॥

वे सभी अप्रशस्त द्वारों और सभी आश्रवों का निरोध कर, आध्यात्मिक शुभ ध्यान के योग से, प्रशस्त संयम वाले हुए।

एवं णाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य।
भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्मं भावित्तु अप्पयं ॥६५॥

बहुयाणि उ वासाणि, सामण्णमणुपालिया।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं ॥६६॥

इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप से तथा शुद्ध भावना से सम्यक् प्रकार से आत्मा को भावित करते हुए मृगापुत्रजी ने बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया और एक मास का संथारा करके सर्वश्रेष्ठ सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, मियापुत्ते जहामिसी ॥६७॥

वे मनुष्य बुद्धिमान् तत्वज्ञ पंडित और विचक्षण हैं, जो ऋषि-श्रेष्ठ मृगापुत्र की तरह भोगों से निवृत्त हो जाते हैं।

महापभावस्स महाजसस्स, मियाइ पुत्तस्स निसम्म भासियं।
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं॥

श्री मृगापुत्र, महा प्रभावशाली और महान् यशस्वी थे। उनके तप प्रधान, चारित्र प्रधान और गति प्रधान, ऐसे तीन लोक में प्रसिद्ध कथन को सुनकर, धर्म में पुरुषार्थ करना चाहिए ॥६८॥

वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं, ममत्तबंधं च महाभयावहं।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेज्ज निव्वाणगुणावहं महं।६९।

हे भव्यों ! धन को दुःख बढ़ाने वाला, ममत्व रूपी बन्धन का कारण, तथा महान् भयदाता जानकर धर्मधुरा को धारण करो, जो सुखदायक और महान् निर्वाण गुणों की देने वाली है ॥९९॥

–: उन्नीसवां अध्ययन समाप्त :–

महानियंठिज्जं वीसइमं अज्झयणं

–:२०:–

सिद्धाणं णमो किच्चा, संजयाणं च भावओ ।
अत्थधम्मगइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे ॥१॥

सिद्धों और संयतों को भावपूर्वक नमस्कार करके मुझसे अर्थ धर्म के यथार्थ स्वरूप को सुनो ॥१॥

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्तं निज्जाओ, मंडिकुच्छिसि चेइए ॥२॥

अनेक रत्नों का स्वामी और मगध देश का अधिपति श्रेणिक राजा; विहार यात्रा (घूमने) के लिए 'मण्डीकुक्षि' नाम के उद्यान में गया ॥२॥

नाणादुमलयाइण्णं, नाणापक्खि निसेवियं ।
नाणाकुसुमसंछन्नं, उज्जाणं नंदणोवमं ॥३॥

वह उद्यान, नाना प्रकार के वृक्षों, लताओं, और पुष्पों

से आच्छादित था। वह नाना प्रकार के पक्षियों से सेवित तथा नन्दनवन के समान था ॥३॥

तत्थ सो पासइ साहुं, संजयं सुसमाहियं ।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥४॥

राजाने वृक्ष के नीचे एक ऐसे साधु को बैठा हुआ देखा, जो सुकुमार होता हुआ भी संयम, शील और समाधि से युक्त तथा प्रसन्न चित्त था ॥४।

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए ।
अच्चंतपरमो आसी, अउलो रूव विम्हओ ॥५॥

राजा, उस मुनि के अत्यन्त उत्कृष्ट रूप को देखकर, आश्चर्य में पड़ गया ॥५॥

अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया ॥६॥

आश्चर्य है इसकी भव्य आकृति और सुन्दर रूप को। इस आर्य पुरुष की क्षमा, निर्लोभता और भोगों से निस्पृहता आश्चर्यकारी है ॥६॥

तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छइ ॥७॥

राजा ने उनको प्रदक्षिणा और चरणों में वन्दना की। फिर न अति दूर और न अति निकट बैठकर हाथ जोड़ कर पूछने लगा।

तरुणो सि अज्जो पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया ।
उवट्ठिओ सि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमि ता ॥८॥

हे आर्य ! आप भोग के योग्य इस तरुण अवस्था में ही प्रव्रजित होकर संयमी बन गये हैं। मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ ॥८॥

अणाहो मि महाराय ! नाहो मज्झ न विज्जइ ।
अणुकंपगं सुहिं वावि, कंचि णाभिसमेमहं ॥९॥

महाराज ! मैं अनाथ हूँ। मेरा कोई नाथ नहीं है, न कोई मुझ पर कृपा करने वाला मित्र ही है। इसीलिए मैं साधु हुआ हूँ ॥९॥

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्ढिमंतस्स, कहं नाहो न विज्जइ ॥१०॥

यह सुनकर राजा हँसने लगा। उसे आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार की ऋद्धिवाले के भी कोई नाथ नहीं है ॥१०॥

होमि नाहो भयंताणं, भोगे भुंजाहि संजया ।
मित्तनाईपरिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥११॥

हे संजती ! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ। आप मित्र ज्ञाति युक्त होकर भोगों को भोगें। यह मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है।

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया मगहाहिवा ।
अप्पणा अणाहो संतो,कस्स नाहो भविस्ससि ॥१२॥

हे मगध देश के अधिपति श्रेणिक! तुम स्वयं ही अनाथ हो। स्वयं अनाथ होते हुए, दूसरों के नाथ कैसे हो सकोगे।

एवं वुत्तो नरिंदो सो, सुसंभंतो सुविम्हिओ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयन्निओ ॥१३॥

पहले कभी नहीं सुने ऐसे वचन साधु से सुनकर राजा विस्मित हुआ, व्याकुल हुआ। उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे।
भुंजामि माणुसे भोगे, आणा इस्सरियं च मे ॥१४॥

हे मुनि! मेरे पास हाथी, घोड़े, मनुष्य, नगर और अन्तपुर है। मैं ऐश्वर्यशाली हूँ। मेरी आज्ञा चलती है। मैं मनुष्य सम्बन्धी सभी भोग भोगता हूँ ॥१४।

एरिसे संपयग्गम्मि, सव्वकामसमप्पिए।
कहं अणाहो भवइ, मा हु भंते मुसं वए ॥१५॥

हे भगवन्! इस प्रकार प्रधान सम्पत्ति और सब प्रकार के कामभोग होते हुए मैं अनाथ कैसे हूँ? आप झूठ नहीं बोलें?

न तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं च पत्थिवा।
जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा नराहिवा ॥१६॥

हे राजन्! तुम 'अनाथ' शब्द के अर्थ और उसकी उत्पत्ति को नहीं जानते हो कि अनाथ और सनाथ किसे कहते हैं ॥१६॥

सुणेह मे महाराय, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
जहा अणाहो भवइ, जहा मेयं पवत्तियं ॥१७॥

हे महाराज ! जिस प्रकार जीव अनाथ होता है और जिस आशय से मैंने कहा है, वह एकाग्र मन से सुनो ॥१७॥

कोसंबी नाम नयरी, पुराण पुरभेयणी ।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूयधणसंचओ ॥१८॥

प्राचीन नगरियों में श्रेष्ठ ऐसी कोशाम्बी नाम की नगरी है, वहाँ मेरे पिता प्रभूतधनसंचय रहते हैं ॥१८॥

पढमे वए महाराय, अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वंगेसु य पत्थिवा ॥१९॥

राजन् ! प्रथम (यौवन) वय में मेरी आँखों में अत्यन्त वेदना हुई, और सारे शरीर में अति जलन होने लगी।

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीरविवरंतरे ।
आवीलिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥२०॥

मेरी आँखों में ऐसी असह्य वेदना होती थी कि जिस प्रकार क्रोधित शत्रु, शरीर के मर्म स्थानों में बहुत ही तीखे शस्त्र घुसेड़ रहा हो ॥२०॥

तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई ।
इंदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥२१॥

इन्द्र का वज्र लगने से जैसी वेदना होती है वैसी घोर

और महा दुःखदायी वेदना, मेरी कमर, हृदय और मस्तक में हो रही थी ॥२१॥

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामंततिगिच्छगा।
अबीया सत्थकुसला, मंतमूलविसारया ॥२२॥

मेरी चिकित्सा करने के लिए, विद्या, मन्त्र, मूल और शस्त्र चिकित्सा में कुशल एवं विशारद ऐसे आचार्य उपस्थित हुए थे ॥२२॥

ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥२३॥

मेरे हित के लिए वैद्याचार्य मेरी चतुष्पाद (वैद्य, औषधि, श्रद्धा और परिचारक) चिकित्सा करते थे, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके। यही मेरी अनाथता है।

पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जा हि मम कारणा।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥२४॥

मेरे पिता, मेरे लिए वैद्यों को सभी बहुमूल्य वस्तुएँ दे रहे थे, किन्तु फिर भी मैं कष्टों से मुक्त नहीं हुआ। यही मेरी अनाथता है ॥२४॥

माया वि मे महाराय, पुत्तसोगदुहट्टिया।
न यि दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥२५॥

राजन्! पुत्र शोक से अति दुखी हुई मेरी माता

भी अनेक उपाय किये, किन्तु वह भी मुझे कष्टों से नहीं छुड़ा सकी। यही मेरी अनाथता है ॥२५॥

भायरो मे महाराय, सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥२६॥

नरेन्द्र ! मेरे छोटे बड़े सगे भाइयों ने भी अनेक प्रयत्न किये, किन्तु वे भी मुझे कष्टों से मुक्त नहीं कर सके। यही मेरी अनाथता है ॥२६॥

भइणीओ मे महाराय, सगा जेट्ठकणिट्ठगा ।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥२७॥

नरेश ! मेरी छोटी बड़ी सगी बहिनें भी मुझे कष्टों से मुक्त नहीं कर सकी। यही मेरी अनाथता है ॥२७॥

भारिया मे महाराय, अणुरत्ता अणुव्वया ।
अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं, उरं मे परिसिंचई ॥२८॥
अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गंधमल्ल विलेवणं ।
मए णायमणायं वा, सा बाला नेव भुंजई ॥२९॥
खणं पि मे महाराय, पासाओ वि ण फिट्टई ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥३०॥

महाराज ! मुझ पर अत्यन्त प्रेम रखनेवाली मेरी पतिव्रता पत्नी, मेरे पास बैठकर अपनी आँखों के आँसुओं से मेरे हृदय को भिगोती थी। वह मेरे जानते या अजानते

भी अन्न-पानी, स्नान, सुगन्ध, विलेपन और माला आदि का सेवन नहीं करती थी, तथा एक क्षण के लिए भी मुझ से दूर नहीं होती थी। किन्तु वह भी मुझे दुःख से नहीं छुड़ा सकी। यही मेरी अनाथता है ॥२८-२९-३०॥

तओऽहं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणंतए ॥३१॥
सइं च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ।
खंतो दंतो निरारंभो, पव्वए अणगारियं ॥३२॥

तब मैंने सोचा कि 'इस अनन्त संसार में मैंने ऐसी दुस्सह वेदना बारबार सहन की है। अब एक बार भी मैं इस महावेदना से मुक्त हो जाऊँ, तो क्षमावान्, दमितेन्द्रिय और निरारंभी अनगार हो जाऊँ ॥३१-३२॥

एवं च चिंतइत्ताणं, पसुत्तो मि नराहिवा।
परियत्तंतीए राईए, वेयणा मे खयं गया ॥३३॥

हे नरेन्द्र! ऐसा विचार करके मैं सो गया। और रात्रि बीतने के साथ मेरी वेदना भी नष्ट होती गई ॥३३॥

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बंधवे।
खंतो दंतो निरारंभो, पव्वइओ अणगारियं ॥३४॥

दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने बन्धुजनों से पूछकर, क्षमावान् दमितेन्द्रिय और आरम्भ रहित अनगार प्रव्रज्या धारण की ॥३४॥

तो ऽहं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाणं थावराण य ॥३५॥

अब मैं अपना, दूसरों का और सभी त्रस स्थावर प्राणियों का नाथ हो गया हूँ ॥३५॥

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥३६॥

मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है और आत्मा ही कूट-शालमली वृक्ष है । आत्मा ही कामधेनु है और यही नन्दन वन है ॥३६॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठियसुपट्ठिओ ॥३७॥

आत्मा ही सुखों व दुखों का कर्त्ता है और यही कर्म क्षयकरने वाला है । श्रेष्ठ आचारवाली आत्मा मित्र और दुराचारवाली आत्मा शत्रु है ॥३७॥

इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा, तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि ।
नियंठधम्मं लहियाण वि जहा, सीयंति एगे बहुकायरा नरा ॥

हे राजन् ! अनाथ के अन्य प्रकार भी हैं, उन्हें तुम स्थिर होकर एकाग्र मन से सुनो । निर्ग्रंथ धर्म पाकर भी बहुत से कायर लोग, शिथिल हो जाते हैं ॥३८॥

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं, सम्मं च नो फासयई पमाया ।
अणिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिन्नइ बंधणं से ।३९।

जो प्रव्रजित होकर प्रमादवश, महाव्रतों का सम्यग् पालन नहीं करता और इन्द्रियों के वश होकर रसों में गृद्ध रहता है, वह कर्मों को मूल से नहीं काट सकता है ॥३६॥

आउत्तया जस्स य नत्थि काइ, इरियाए भासाए तहेसणाए।
आयाणनिक्खेव दुगुंछणाए, न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥४०॥

जिसका ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेप में तथा जुगुप्सा में उपयोग नहीं है, वह वीर सेवित मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता ॥४०॥

चिरं पि से मुंडरुई भवित्ता, अथिरव्वए तवनियमेहि भट्ठे।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए ॥४१॥

जो लम्बे समय से मुण्डित होकर भी व्रतों में अस्थिर और तप नियम से भ्रष्ट है, वह साधु, बहुत काल तक आत्मा को क्लेशित करके भी संसार से मुक्त नहीं हो सकता ॥४१॥

पोल्ले व मुट्ठी जह से असारे, अयंतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ हु जाणएसु ।४२।

जिस प्रकार खाली मुट्ठी और खोटा सिक्का असार है, तथा काच, वैडूर्यमणि की तरह प्रकाश करता हुआ भी जानकार के सामने अल्प मूल्यवाला है। वैसे ही द्रव्य-लिंगी (वेशधारी) भी अनाथ है ॥४२॥

कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता।
असंजए संजयलप्पमाणे, विणिग्घायमागच्छइ से चिरं पि ।४३।

कुशील लिंग तथा ऋषिध्वज (रजोहरण मुखवस्त्रिका) को धारण करके, उनके द्वारा आजीविका करता हुआ असंयती, अपने को संयती बतलाता है। वह बहुत काल तक विनाश को प्राप्त होता है ॥४३॥

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसो वि धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ॥४४॥

जिस प्रकार कालकूट विष से, उल्टा शस्त्र पकड़ने से और वश में नहीं किये हुए पिशाच से नाश होता है, उसी प्रकार शब्दादि विषयों से युक्त धर्म भी विनाश कर देता है।

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे, निमित्तकोऊहलसंपगाढे।
कुहेडविज्जासवदारजीवी, न गच्छई सरणं तम्मि काले ॥४५॥

जो साधु, लक्षण शास्त्र व स्वप्न शास्त्र का प्रयोग करता है, और निमित्त कुतूहल में आसक्त रहता है तथा आश्चर्य पैदा करके आश्रव बढ़ाने वाली विद्या से जीवन चलता है, उसे कर्म भोग के समय कोई भी शरणभूत नहीं होता है ॥४५॥

तमं तमेणेव उ से असीले, सया दुही विप्परियामुवेइ।
संधावई नरगतिरिक्खजोणिं, मोणं विराहेत्तु असाहुरूवे ॥४६॥

वह द्रव्यलिंगी कुशीलिया, अपने गाढ़ अज्ञान एवं विपरीत भावों से चारित्र की विराधना करता है और नरक तिर्यञ्च गति में जाकर सदा के लिए दुःखी हो जाता है ॥४६॥

उद्देसियं कीयगडं नियागं, न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता, इओ चुए गच्छइ कट्टु पावं ४७

जो साधु, उद्देशिक, क्रीतकृत, नित्यपिण्ड और सदोष आहार, किंचित् भी नहीं छोड़ता, वरन् अग्नि की तरह सर्व भक्षी होता है, वह मरकर अपने पाप कर्मों से दुर्गति में जाता है।

न तं अरी कंठछेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से नाहई मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ।४८।

दुराचार में प्रवृत्त आत्मा, अपना जितना अनिष्ट करता है, उतना अनर्थ गला काटनेवाला शत्रु भी नहीं करता । ऐसा दया विहीन मनुष्य, मृत्यु के मुख में जाने पर अपने दुराचार को जानेगा और फिर पश्चात्ताप करेगा ।।४८।।

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए ।।

ऐसे द्रव्यलिंगी की संयम रुचि भी व्यर्थ है, जो उत्तमार्थ–मोक्ष में भी विपरीत भाव रखता है । ऐसी आत्मा के लिए दोनों लोक नहीं है । वह दोनों लोक से भ्रष्ट होता है ।।४६।।

एमेवऽहाछंदकुसीलरूवे, मग्गं विराहेत्तु जिणुत्तमाणं ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, निरट्ठसोया परियावमेइ ।५०।

इस प्रकार स्वच्छन्दाचारी कुशीलिया, जिनेन्द्र भग-

वान् के उत्तम मार्ग की विराधना करके, भोग रस में गृद्ध होकर, निरर्थक शोक करने वाली पक्षिणी की तरह परिताप पाता है ॥५०॥

सोच्चाण मेहावि सुभासियं इमं,
अणुसासणं नाणगुणोववेयं ।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं,
महानियंठाण वए पहेणं ॥५१॥

इस ज्ञान गुणयुक्त एवं शिक्षामय सुभाषित को सुनकर बुद्धिमान् साधु, कुशील मार्ग का सर्वथा त्याग कर दे और महानिग्रन्थ के मार्ग पर चले ॥५१॥

चरित्तमायारगुणन्निए तओ, अणुत्तरं संजम पालियाणं ।
निरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ।५२।

चारित्र और ज्ञानादि गुणों से युक्त होकर, उत्कृष्ट संयम का पालन करने से जीव, आश्रव रहित होता है। फिर कर्मों को क्षय करके विशाल एवं शाश्वत–मोक्ष–स्थान को प्राप्त होता है ॥५२॥

एवुग्गदंते वि महातवोधणे, महामुणी महापइन्ने महायसे ।
महानियंठिज्जमिणं महासुयं, से काहए महया वित्थरेणं ॥५३॥

कर्मों का उग्र रूप से दमन करने वाले, महातपोधनी दृढ़प्रतिज्ञ और महान् यशस्वी उन महामुनि ने, इस महा-निर्ग्रंथीय महाश्रुत का अति विस्तार से कथन किया ॥५३॥

तुट्ठो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कयंजली।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥५४॥

इसे सुनकर श्रेणिक राजा संतुष्ट हुआ और दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा—'भगवन्! अनाथता का सच्चा स्वरूप आपने मुझे अच्छी तरह समझाया ॥५४॥

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी।
तुब्भे सणाहा य सबंधवा य, जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं ॥५५॥

हे महर्षि! आपका मनुष्य जन्म सफल है। आपने ही इसका लाभ उठाया है। आप ही सनाथ और सबान्धव हैं। क्योंकि आप जिनेन्द्र के सर्वोत्तम मार्ग में स्थित हैं ॥५५॥

तं सि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया।
खामेमि ते महाभाग, इच्छामि अणुसासिउं ॥५६॥

हे महाभाग! आप अनाथों के नाथ हैं। हे संयति! आप सभी प्राणियों के नाथ हैं। मैं आप से क्षमा चाहता हूँ और आपसे शिक्षा पाने का इच्छुक हूँ ॥५६॥

पुच्छिऊण मए तुब्भं, झाणविग्घो य जो कओ।
निमंतिया य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे ॥५७॥

मैंने आपसे प्रश्न पूछकर ध्यान में विघ्न किया, भोगों का निमन्त्रण दिया। इन सब अपराधों की क्षमा प्रदान करें।

एवं थुणित्ताण स रायसीहो, अणगारसीहं परमाइ भत्तिए।
सओरोहो सपरियणो सबंधवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥

इस प्रकार राजाओं में सिंह समान श्रेणिक, उन अनगार सिंह की परम भक्ति से स्तुति करके अपने अन्तःपुर, परिजन और बान्धवों के साथ निर्मल चित्त से धर्म में अनुरक्त हुआ ॥५८॥

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं।
अभिवंदिऊण सिरसा, अइयाओ नराहिवो ॥५९॥

हर्ष से रोमांचित हुआ राजा, प्रदक्षिणा करके और मस्तक झुकाकर वन्दना करके अपने स्थान को चला गया।

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो।६०। त्ति बेमि।

अनाथी मुनि, गुणो से समृद्ध, तीन गुप्तियों से गुप्त और तीन दण्ड से निवृत्त एवं मोह रहित थे। वे पक्षी की तरह प्रतिबन्ध रहित होकर पृथ्वी पर विचरने लगे ॥६०॥

—बीसवाँ अध्ययन समाप्त—

समुद्दपालीयं एगवीसइमं अज्झयणं

:—:२१:—:

चंपाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥१॥

चम्पा नगरी में पालित नामक व्यापारी श्रावक रहता था। वह महात्मा महावीर भगवान् का शिष्य था ॥१॥

निग्गंथे पावयणे, सावए से वि कोविए।
पोएण ववहरंते, पिहुंडं नगरमागए ॥२॥

वह श्रावक, निर्ग्रंथ प्रवचनों में विशेष पंडित था। वह जहाज से व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नगर में गया ॥२॥

पिहुंडे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयरं।
तं ससत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ॥३॥

पिहुण्ड नगर में व्यापार करते उसे किसी व्यापारी ने अपनी कन्या देदी। कालान्तर में गर्भवती स्त्री को लेकर वह अपने देश को रवाना हुआ ॥३॥

अह पालियस्स घरणी, समुद्दंमि पसवई।
अह दारए तहिं जाए, समुद्दपालि त्ति नामए ॥४॥

इसके बाद पालित की स्त्री के समुद्र में प्रसव हुआ। समुद्र में बालक का जन्म हुआ, इसलिए उसका नाम 'समुद्रपाल' रक्खा।

खेमेण आगए चंपं, सावए वाणिए घरं।
संवड्ढई घरे तस्स, दारए से सुहोइए ॥५॥

वह पालित श्रावक, कुशलतापूर्वक चम्पा नगरी में अपने घर आगया और सुकुमार बालक, सुखपूर्वक बढ़ने लगा ॥५॥

बावत्तरी कलाओ य, सिक्खई नीइकोविए।
जोव्वणेण य संपन्ने, सुरूवे पियदंसणे ॥६॥

समुद्रपाल ने बहत्तर कलाएँ सीखीं और नीति कोविद हुआ। युवावस्था प्राप्त होने पर वह अत्यन्त सुरूप और सबको प्रिय लगने लगा ॥६॥

तस्स रूववइं भज्जं, पिया आणेइ रूविणिं।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुंदगो जहा ॥७॥

उसका पिता, उसके लिये रूपिणी नाम की रूपवती भार्या लाया। वह उसके साथ रमणीय महल में, दोगुन्दक जाति के देव की तरह क्रीड़ा करने लगा ॥७॥

अह अन्नया कयाई, पासायालोयणे ठिओ।
वज्झमंडणसोभागं, वज्झं पासइ वज्झगं ॥८॥

किसी समय भवन की खिड़की में बैठे हुए समुद्रपाल ने एक अपराधी को मृत्यु चिन्हों से युक्त, वध-स्थान पर ले जाते हुए देखा ॥८॥

तं पासिऊण संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहोऽसुहाण कम्माणं, निज्जाणं पावगं इमं ॥९॥

उसे देखकर समुद्रपाल, संवेग को प्राप्त होकर, इस प्रकार कहने लगा—'अहो! अशुभ कर्मों का अंतिम फल पाप रूप ही है। यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है ॥९॥

संबुद्धो सो तहिं भगवं, परमसंवेगमागओ।
आपुच्छम्मापियरो, पव्वए अणगारियं ॥१०॥

ऐश्वर्यसंपन्न समुद्रपाल, वहीं बैठे हुए बोध पाकर परम संवेग को प्राप्त हुए और माता पिता को पूछकर प्रव्रज्या लेकर अनगार हो गये ॥१०॥

जहित्तु संगं च महाकिलेसं, महंतमोहं कसिणं भयावहं।
परियायधम्मं च ऽभिरोयएज्जा, वयाणि सीलाणि परीसहे य॥

महान् क्लेश, महामोह और अनेक भय उत्पन्न करने वाले स्वजनादि के सम्बन्ध को छोड़कर, प्रव्रज्या धर्म में रुचि रखने लगे और व्रत एवं शील का पालन कर, परीषहों को सहन करने लगे ॥११॥

अहिंस सच्चं च अतेणगं च, तत्तो अबंभं अपरिग्गहं च।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों को स्वीकार कर वे बुद्धिमान् मुनि, जिनोपदेशित धर्म का पालन करने लगे ॥१२॥

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी, खंतिक्खमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो, चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइंदिए।१३।

सब जीवों पर दया पूर्वक अनुकम्पा करने वाला, कठोर वचनों को क्षमा से सहने वाला, संयती, ब्रह्मचारी, समाधिवंत और इन्द्रियों को वश में रखने वाला साधु, सभी प्रकार के सावद्य योगों का त्याग करके विचरे ॥१३॥

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे, बलाबलं जाणिय अप्पणो य ।
सीहो व सद्देण न संतसेज्जा, वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु ॥

यथा समय प्रतिलेखनादि क्रिया करता हुआ, अपने बलाबल को जानकर राष्ट्र में विचरे और भयंकर शब्द को सुनकर भी सिंह की तरह निडर रहे, तथा कठोर वचन नहीं कहे ।

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा, पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा ।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा, न यावि पूयं गरहं च संजए ॥

मुनि उपेक्षा पूर्वक संयम में विचरे । प्रिय और अप्रिय सब को सहन करे । सब जगह सभी वस्तुओं की अभिलाषा नहीं करे तथा पूजा और निन्दा को भी नहीं चाहे ॥१५॥

अणेगछंदामिह माणवेहिं, जे भावओ संपगरेइ भिक्खू ।
भयभेरवा तत्थ उइंति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥

इस लोक में मनुष्यों में अनेक प्रकार के अभिप्राय होते हैं । साधु के मनमें भी वैसे भाव हो सकते हैं, किन्तु साधु, संयम में दृढ़ रहे, और देव, मनुष्य तथा तिर्यंच सम्बन्धी अत्यन्त भयंकर उपसर्ग उत्पन्न हों, उन्हें समभाव से सहन करे ॥१६॥

परीसहा दुव्विसहा अणेगे, सीयंति जत्था बहुकायरा नरा ।
से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू, संगामसीसे इव नागराया ॥

अनेक प्रकार के दुर्जय परीषह उत्पन्न होने पर बहुत से कायर मनुष्य, संयम में शिथिल हो जाते हैं । किन्तु संग्राम

के आगे रहे हुए शूरवीर हाथी की तरह संयम में दृढ़ रहने वाले साधु, परीषहों से नहीं घबराते। समुद्रपाल भी परीषहों से चलित नहीं होते थे ॥१७॥

सीओसिणा दंसमसा य फासा, आयंका विविहा फुसंति देहं।
अकुक्कुओ तत्थऽहियासएज्जा, रयाइं खेवेज्ज पुरे कयाइं ॥

शीतोष्ण, डांस, मच्छर, तृणस्पर्श और अनेक प्रकार के रोग, शरीर को नष्ट कर देते हैं। उस समय आक्रन्द नहीं करता हुआ समभाव से सहे और पूर्वकृत कर्म रूप रज को क्षय करे।

पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणो।
मेरु व्व वाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ।१६।

विचक्षण मुनि, राग द्वेष और मोह को निरन्तर त्यागे और वायु से कम्पित नहीं होनेवाले मेरु की तरह आत्म गुप्त होकर परीषहों को सहन करे ॥१६॥

अणुन्नए नावणए महेसी, न यावि पूयं गरहं च संजए।
से उज्जुभावं पडिवज्ज संजए, निव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥२०॥

जो महर्षि, पूजा पाकर उन्नत और निन्दा पाकर अवनत नहीं होता तथा ऋजुभाव रखकर विरत होता है, वह निर्वाण मार्ग को प्राप्त करता है ॥२०॥

अरइरइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई, छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥२१॥

अरति और रति को सहन करते हुए गृहस्थों के परिचय को छोड़े और आत्महितार्थ विरत होकर संयम में लीन रहे। शोक एवं ममत्व से रहित हो, अकिंचन भाव से मोक्ष मार्ग में स्थिर होवे ॥२१॥

विवित्तलयणाइं भएज्ज ताई, निरोवलेवाइं असंथडाइं ।
इसीहिं चिण्णाइं महायसेहिं, काएण फासेज्ज परीसहाइं ॥

प्राणी रक्षक साधु, महायशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेप और बीज रहित एकान्त स्थान का सेवन करे। यदि वहाँ परीषह आवे तो सहन करे ॥२२॥

स नाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी, ओभासई सूरिए वंतलिक्खे ॥२३॥

समुद्रपाल मुनि, श्रुतज्ञान से सम्पन्न और उत्कृष्ट क्षमादि धर्म का संचय करके सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान को प्राप्त किया। फिर आकाश में सूर्य की तरह प्रकाशित होने लगे ॥२३॥

दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं, निरंजणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोघं, समुद्दपाले अपुणागमं गए ।त्तिबेमि।

दोनों प्रकार के कर्म तथा पुण्य और पाप को क्षय करके समुद्रपालजी, सभी बंधनों से मुक्त हो गये और शैलेशी अवस्था पाकर संसार रूप महासमुद्र को तिर कर मोक्ष को प्राप्त हुए ॥२४॥

—इक्कीसवां अध्ययन समाप्त—

रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणं

॥:२२:॥

सोरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

शौर्यपुर नगर में वसुदेव नाम के राजा राज्य करते थे । वे महाऋद्धिशाली और राजा के लक्षणों से युक्त थे ॥१॥

तस्स भज्जा दुवे आसि, रोहिणी देवई तहा ।
तासिं दोण्हं दुवे पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

उनके रोहिणी और देवकी नाम की दो स्त्रियाँ थी । उन दोनों के राम और केशव ऐसे दो पुत्र थे-जो सबको प्रिय लगते थे ॥२॥

सोरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजए नामं, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

शौर्यपुर नगर में, समुद्रविजय नाम के राजा, महाऋद्धिमान् और राज्य लक्षणों से युक्त थे ॥३॥

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

उनकी शिवा नाम की भार्या थी । उनके पुत्र, महायशस्वी, परमजितेन्द्रिय, त्रिलोकनाथ भगवान् अरिष्टनेमि थे ॥४॥

सोऽरिट्ठनेमिनामो य, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

वे अरिष्टनेमि कुमार, लक्षण और स्वर से युक्त, एक हजार आठ लक्षणों के धारक, गौतम गोत्रीय और कृष्ण कांति वाले थे ॥५॥

वज्जरिसहसंघयणो, समचउरंसो झसोयरो ।
तस्स राईमई कन्नं, भज्जं जायइ केसवो ॥६॥

वे वज्रऋषभनाराच संहनन, समचतुरस्र संस्थान और मत्स्य के समान उदर वाले थे । श्रीकृष्ण ने उनकी भार्या बनाने के लिए, राजमती नामवाली कन्या की याचना की ॥६॥

अह सा रायवरकन्ना, सुसीला चारुपेहिणी ।
सव्वलक्खणसंपन्ना, विज्जुसोयामणिप्पभा ॥७॥

वह राजकन्या सुशीला, सुन्दर दृष्टिवाली, सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न और चमकती हुई बिजली के समान प्रभा वाली थी ॥७॥

अहाह जणओ तीसे, वासुदेवं महिड्ढियं ।
इहागच्छउ कुमारो, जा से कन्नं दलामि हं ॥८॥

राजमती के पिता (उग्रसेनजी) ने महाऋद्धिशाली श्रीकृष्ण को कहा कि यदि अरिष्टनेमि कुमार यहाँ पधारें, तो मैं उन्हें अपनी कन्या दे दूं ॥८॥

सव्वोसहीहिं ण्हविओ, कयकोउयमंगलो।
दिव्वजुयलपरिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ ॥९॥

श्री अरिष्टनेमि कुमार को सर्व औषधियों से मिश्रित हुए जल से स्नान कराया। कौतुक मंगल किये। दिव्य वस्त्र युगल पहिनाये और आभूषणों से विभूषित किये ॥९॥

मत्तं च गंधहत्थिं, वासुदेवस्स जेट्ठगं।
आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणी जहा ॥१०॥

जिस प्रकार सिर पर चूड़ामणि—मुकुट शोभा पाता है, उसी प्रकार वासुदेव के मस्त और सबसे बड़े गंधहस्ती पर चढ़े हुए श्री अरिष्टनेमि कुमार अत्यन्त शोभित हुए ॥१०॥

अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिओ।
दसारचक्केण य सो, सव्वओ परिवारिओ ॥११॥

ऊँचे छत्र और चामरों तथा दशार्हचक्र से सभी ओर घिरे हुए कुमार शोभा पाने लगे ॥११॥

चउरंगिणीए सेणाए, रइयाए जहक्कमं।
तुडियाण सन्निनाएणं, दिव्वेणं गगणं फुसे ॥१२॥

क्रमानुसार सजी हुई चतुरंगिणी सेना तथा वादिन्त्रों के शब्द से आकाश गुंज उठा ॥१२॥

एयारिसीए इड्ढीए, जुईए उत्तमाइ य।
नियगाओ भवणाओ, निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥१३॥

इस प्रकार उत्तम ऋद्धि और तेज से युक्त होकर, वृष्णिपुंगव–अरिष्टनेमिकुमार अपने भवन से निकले ।।१३।।

अह सो तत्थ निज्जंतो, दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ।।१४।।

प्रस्थान करते हुए अरिष्टनेमिकुमार ने बाड़ों और पिंजरों में बन्द, भयभीत तथा दुखित पशुओं को देखा ।।१४।।

जीवियंतं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापन्ने, सारहिं इणमब्बवी ।।१५।।

महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि नें मांस भक्षण के लिए जीवन के अन्त को प्राप्त होनें वाले प्राणियों को देखकर सारथि से इस प्रकार पूछा ।।१५।।

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ।।१६।।

ये सभी प्राणी सुख को चाहने वाले हैं । इन्हें बाड़ों और पिंजरों में किस लिये बन्द किये हैं ।।१६।।

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झं विवाहकज्जम्मि, भोयावेउं बहुं जणं ।।१७।।

तब सारथि ने कहा–इन सब निर्दोष जीवों को आपके विवाह कार्य में, बहुतों को भोजन कराने के लिए बन्द किये हैं।

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाणिविणासणं ।
चिंतेइ से महापन्ने, साणुक्कोसे जिएहिउ ॥१८॥

बहुत से प्राणियों के विनाश रूप सारथि के वचन सुनकर, जीवों पर करुणा रखने वाले महाप्राज्ञ नेमिकुमार सोचने लगे ॥१८॥

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मंति सुबहू जिया ।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई ॥१९॥

यदि मेरे कारण से बहुत से जीव मारेजायेंगे, तो यह कार्य मेरे लिए परलोक में कल्याणकारी नहीं होगा ॥१९॥

सो कुंडलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामए ॥२०॥

उन महायशस्वी भगवान् ने, दोनों कुण्डल कन्दोरा तथा सभी आभूषण सारथि को प्रदान कर दिये ॥२०॥

मणपरिणामे य कए, देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्विड्ढीइ सपरिसा, निक्खमणं तस्स काउं जे ॥२१॥

भगवान् के दीक्षा के परिणाम होने पर, देवता अपनी सर्वऋद्धि और परिषद के साथ, निष्क्रमण महोत्सव करने आये ।

देवमणुस्सपरिवुडो, सीवियारयणं तओ समारूढो ।
निक्खमिय बारगाओ, रेवययंमि ठिओ भयवं ॥२२॥

देव और मनुष्यों से परिवरे हुए भगवान् शिविका रत्न

पर आरूढ़ होकर द्वारका से निकले और रैवतक पर्वत पर पधारे ।

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तमाउ सीयाओ ।
साहस्सीए परिवुडो, अह निक्खमई उ चित्ताहिं ॥२३॥

वहाँ उद्यान में पहुँच कर, उत्तम शिविका से नीचे उतरे और चित्रा नक्षत्र में एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा अंगीकार की ।

अह सो सुगंधगंधिए, तुरियं मउअकुंचिए ।
सयमेव लुंचई केसे, पंचमुट्ठीहिं समाहिओ ॥२४॥

इसके पश्चात् भगवान् ने, सुगन्ध से सुवासित कोमल केशों का स्वयं शीघ्र ही पाँच मुष्टि लोच किया ॥२४॥

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइंदियं ।
इच्छियमणोरहं तुरियं, पावसू तं दमीसरा ॥२५॥

लुञ्चित केश वाले जितेन्द्रिय भगवान् को वासुदेव आदि कहने लगे कि "हे दमीश्वर ! आप शीघ्र ही इच्छित मनोरथ अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करो" ॥२५॥

नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेणं तवेण य ।
खंतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ॥२६॥

हे महाभाग ! आप ज्ञान से, दर्शन से, चारित्र से, तप से, क्षमा और निर्लोभता से, सदा बढ़ते ही रहो ॥२६॥

एवं ते रामकेसवा, दसारा य बहूजणा ।
अरिट्ठनेमिं वंदित्ता, अइगया बारगापुरिं ॥२७॥

इस प्रकार वे केशव और दशार्ह आदि अनेक मनुष्य, भ० अरिष्टनेमि को वन्दना करके द्वारका नगरी में आगये।

सोऊण रायकन्ना, पव्वज्जं सा जिणस्स उ।
नीहासा य निराणंदा, सोगेण उ समुत्थिया ॥२८॥

वह राजकन्या, भगवान् की दीक्षा सुनकर हास्य और आनन्द से रहित एवं शोकाकुल हो गई ॥२८॥

राईमई विचिंतेइ, धिरत्थु मम जीवियं।
जाऽहं तेण परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम ॥२६॥

राजमती विचारने लगी कि 'मेरे जीवन को धिक्कार है जो मैं अरिष्टनेमिनाथ के द्वारा त्याग दी गई'। अब मेरे लिए दीक्षा लेना ही श्रेष्ठ है ॥२६॥

अह सा भमरसन्निभे, कुच्चफणगप्पसाहिए।
सयमेव लुंचई केसे, धिइमंता ववस्सिया ॥३०॥

उस धैर्यधारिणी एवं संयम के लिए उद्यत हुई राजमती ने अपने भ्रमर जैसे काले तथा कुर्च और कंघी से सँवारे हुए केशों का स्वयं लोच किया ॥२७॥

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइंदियं।
संसारसायरं घोरं, तर कन्ने लहुं लहुं ॥३१॥

उस लुञ्चित केशवाली जितेन्द्रिय राजमती से वासुदेवादि कहने लगे कि "हे कन्ये! तू इस दुस्तर संसार समुद्र को शीघ्र ही तिर जा" ॥३१॥

सा पव्वइया संती, पव्वावेसी तहिं बहुं ।
सयणं परियणं चेव, सीलवंता बहुस्सुया ॥३२॥

शीलवती बहुश्रुता राजमती ने दीक्षित होकर, बहुत-सी स्वजन परिजन स्त्रियों को दीक्षा दी ॥३२॥

गिरिं रेवतयं जंती, वासेणुल्ला उ अंतरा ।
वासंते अंधयारम्मि, अंतो लयणस्स सा ठिया ॥३३॥

वह रैवतगिरि पर जाती हुई वर्षा से भींग गई और वर्षा से वचने के लिए एक अन्धकारवाली गुफ़ा में ठहर गई ।

चीवराइं विसारंति, जहाजाय त्ति पासिया ।
रहनेमि भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो य तीइ वि ॥३४॥

उस गुफा में पहले से रथनेमि ध्यानस्थ था । उसने राजमती को वस्त्र सुखाते हुए नग्नरूप में देखा रथनेमि का चित्त भंग हो गया । राजमती ने भी बाद में उसे देख लिया ॥३४॥

भीया य सा तहिं दट्ठुं, एगंते संजयं तयं ।
बाहाहिं काउ संगोप्फं, वेवमाणी निसीयई ॥३५॥

एकान्त में संयती को देखकर भयभीत हुई राजमती, अपनी दोनों भुजाओं से शरीर को ढक कर काँपती हुई बैठ गई ।

अह सो वि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं, इमं वक्कं उदाहरे ॥३६॥

समुद्रविजय का पुत्र वह रथनेमि, भय से काँपती हुई राजमती को देखकर यों कहने लगा ॥३६॥

रहनेमी अहं भद्दे, सुरूवे चारुभासिणि ।
ममं भयाहि सुयणु, नते पीला भविस्सई ॥३७॥

हे भद्रे ! मैं रथनेमि हूँ। हे सुन्दरी, मृदुभाषिनी, सुन्दर शरीरवाली ! मुझे सेवन कर, तुझे किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होगी ॥३७॥

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।
भुत्तभोगी पुणो पच्छा, जिणमग्गं चरिस्सिमो ॥३८॥

तुम इधर आओ, यह मनुष्यभव मिलना बहुत दुर्लभ है। अपन पहले भोग भोग लें। भुक्तभोगी होने के बाद फिर जिन मार्ग पर चलेंगे ॥३८॥

दट्ठूण रहनेमिं तं, भग्गुज्जोयपराजियं ।
राईमई असंभंता, अप्पाणं संवरे तहिं ॥३९॥

भग्न चित्त और स्त्री परीषह से पराजित हुए रथनेमि को देखकर, राजीमती निर्भीक हुई। उसने अपने शरीर को ढंक लिया ॥३९॥

अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिया नियमव्वए ।
जाई कुलं च सीलं च, रक्खमाणी तयं वए ॥४०॥

फिर वह राजकन्या स्थिर होकर अपने जाति, कुल

और शील की रक्षा करती हुई रथनेमि से इस प्रकार बोली।

जइ सि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकूबरो।
तहा वि ते न इच्छामि, जइ सि सक्खं पुरंदरो ॥४१॥

तू यदि रूप में वैश्रमण हो और लीला विलास में नल-कूबर के समान भी हो तथा साक्षात इन्द्र हो, तो भी मैं तुझे नहीं चाहती ॥४१॥

पक्खंदे जलियं जोइं, धुमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयं भोतुं, कुले जाया अगंधणे ॥४२॥

अगन्धन कुल के सर्प जाज्वल्यमान अग्नि में गिरना स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु वमन किये हुए विष को नहीं चाहते।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥४३॥

हे अपयश को चाहने वाले ! तुझे धिक्कार है, जो तू असंयमी जीवन के लिए, वमन किये हुए भोगों को चाहता है। इससे तो तेरा मरजाना ही श्रेयस्कर है। ॥४३॥

अहं च भोगरायस्स, तं चऽसि अंधगवण्हिणो।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ॥४४॥

मैं उग्रसेन की पुत्री हूँ और तुम समुद्रविजय के पुत्र हो। हमें गन्धन कुल के सर्प के समान नहीं होना चाहिए। इसलिए निश्चल होकर संयम पालो ॥४४॥

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥४५॥

यदि तुम वैषयिक भाव रक्खोगे, तो जहाँ जहाँ स्त्रियों को देखोगे, वहाँ वहां वायु से हिलाये हुए हड वृक्ष की तरह अस्थिर हो जाओगे ॥४५॥

गोवालो भंडवालो वा, जहा तद्दव्वऽणिस्सरो ।
एवं अणिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥४६॥

जिस प्रकार ग्वाला, गायों का स्वामी नहीं है और भंडारी, भंडार का धनी नहीं है, उसी प्रकार तुम भी वैदयिक भाव के कारण संयम के धनी नहीं रहोगे ॥४६॥

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥४७॥

रथनेमि ने उस संयमशीला राजमती के सुभाषित को सुनकर, अंकुश लगाये हुए हाथी की तरह अपने को वश में किया और धर्म में स्थिर हुआ ॥४७॥

कोहं माणं निगिण्हित्ता, मायं लोभं च सव्वसो ।
इंदियाइं वसे काउं, अप्पाणं उवसंहरे ॥४८॥

क्रोध, मान, माया और लोभ को जीतकर और पांचों इन्द्रियों को वश में करके तथा आत्मा को प्रमाद से हटाकर धर्म में स्थिर किया ॥४८॥

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ ।
सामण्णं निच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥४९॥

मन, वचन और काया से गुप्त तथा जितेन्द्रिय होकर दृढ़ और निश्चलता से जीवन पर्यन्त श्रमण धर्म का पालन किया ॥४९॥

उग्गं तवं चरित्ताणं, जाया दोण्णि वि केवली ।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥५०॥

उग्र तप का आचरण करके दोनों केवलज्ञानी हो गये और सभी कर्मों का क्षय करके सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो । त्ति बेमि ॥

जिस प्रकार पुरुषोत्तम रथनेमि ने आत्मा को वश में करके मोक्ष पाया, उसी प्रकार तत्त्वज्ञानी, विचक्षण, पंडितजन, भोगों से निवृत्त होकर मुक्त होते हैं ॥५१॥

—: बावीसवां अध्ययन समाप्त :—

केसिगोयमिज्जं तेवीसइमं अज्झयणं

—:२३:—

जिणे पासित्ति नामेणं, अरहा लोगपूइओ ।
संबुद्धप्पा य सव्वन्नू, धम्मतित्थयरे जिणे ॥१॥

त्रिलोक पूज्य, धर्म तीर्थङ्कर, सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्री पार्श्व-नाथ नाम के अर्हन्त जिनेश्वर हुए ॥१॥

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे ।
केसीकुमार समणे, विज्जाचरणपारगे ॥२॥

उन लोक-प्रकाशक भगवान् के शिष्य, महायशस्वी केशीकुमार श्रमण थे, जो ज्ञान और चारित्र में परिपूर्ण थे ।

ओहिनाणसुए बुद्धे, सीससंघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयंते, सावत्थि पुरमागए ॥३॥

मति, श्रुत, अवधिज्ञान से तत्वों के ज्ञाता केशीकुमार अपने शिष्य संघ सहित श्रावस्ति नगरी में पधारे ॥३॥

तिंदुयं नाम उज्जाणं, तम्मी नगरमंडले ।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥४॥

वे उस नगर के समीप वाले तिंदुक उद्यान में निर्दोष शय्या संथारा लेकर ठहरे ॥४॥

अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे ।
भगवं वद्धमाणि त्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥५॥

उस समय विश्वविख्यात, जिनेश्वर भगवान् वर्द्धमान स्वामी, धर्म तीर्थ के प्रवर्त्तक थे ॥५॥

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे ।
भगवं गोयमे नामं, विज्जाचरणपारगे ॥६॥

उन लोक-प्रकाशक भगवान् के शिष्य, महायशस्वी भगवान् गौतम स्वामी थे, जो विद्या और चारित्र में परिपूर्ण थे।

बारसंगविऊ बुद्धे, सीससंघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयंते, से वि सावत्थिमागए ॥७॥

द्वादशांग के वेत्ता, तत्व ज्ञानी भगवान् गौतम, अपने शिष्य संघ के साथ उसी श्रावस्ति नगरी में पधारे ॥७॥

कोट्ठगं नाम उज्जाणं, तम्मि नगरमंडले ।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥८॥

वे उस नगर के बाहर कोष्टक उद्यान में निर्दोष स्थान और शय्या लेकर ठहरे ॥८॥

केसीकुमारसमणे, गोयमे य महायसे ।
उभओ वि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया ॥९॥

महायशस्वी केशीकुमार श्रमण और श्री गौतम स्वामी ये दोनों ही इन्द्रियों को वश में करके समाधिपूर्वक विचरने लगे।

उभओ सीससंघाणं, संजयाणं तवस्सिणं ।
तत्थ चिंता समुप्पन्ना, गुणवंताण ताइणं ॥१०॥

दोनों ओर के शिष्य समुदाय में संयमी तपस्वी और गुणवान् श्रमण थे। उनमें इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ।

केरिसो वा इमो धम्मो, इमो धम्मो य केरिसो ?।
आयारधम्मप्पणिही, इमा वा सा व केरिसी ? ॥११॥

हमारा धर्म कैसा है और इनका धर्म कैसा है ! तथा हमारे और इनके आचार धर्म की व्यवस्था कैसी है ? ॥११॥

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेणं, पासेण य महामुणी ॥१२॥

महामुनि पार्श्वनाथ ने चारयामरूप धर्म और वर्द्धमान स्वामी ने पांच शिक्षारूप धर्म का उपदेश किया ॥१२॥

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो ।
एगकज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ॥१३॥

एक अचेलक धर्म है और एक प्रधान वस्त्ररूप धर्म है। एक ही कार्य के लिए प्रवृत्त, दोनों तीर्थंकरों में यह भेद क्यों ?

अह ते तत्थ सीसाणं, विन्नाय पवितक्कियं ।
समागमे कयमई, उभओ केसिगोयमा ॥१४॥

श्री केशीकुमार और गौतम स्वामी दोनों ने अपने शिष्य समुदाय की शंका को जानकर, परस्पर मिलने का विचार किया ॥१४॥

गोयमे पडिरूवन्नू, सीससंघसमाउले ।
जेट्ठं कुलमवेक्खंतो, तिंदुयं वणमागओ ॥१५॥

विनयज्ञ श्री गौतम स्वामी, ज्येष्ठ कुल का विचार करके अपने शिष्य संघ के साथ तिन्दुक वन में आये ॥१५॥

केसी कुमारसमणे, गोयमं दिस्समागयं ।
पडिरूवं पडिवत्तिं, सम्मं संपडिवज्जई ॥१६॥

श्री गौतमस्वामी को आते हुए देखकर श्री केशीकुमार ने भक्ति और बहुमान पूर्वक उनका स्वागत किया ॥१६॥

पलालं फासुयं तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ।
गोयमस्स निसेज्जाए, खिप्पं संपणामए ॥१७॥

श्री गौतमस्वामी के बैठने के लिए प्रासुक पराल, कुश तथा पांच प्रकार के तृण समर्पण किये ॥१७॥

केसीकुमारसमणे, गोयमे य महायसे ।
उभओ निसण्णा सोहंति, चंदसूरसमप्पभा ॥१८॥

केशीकुमार श्रमण और महायशस्वी गौतम दोनों बैठे हुए इस प्रकार शोभित होने लगे, जैसे चन्द्र और सूर्य अपनी प्रभा से शोभा पाते हैं ॥१८॥

समागया बहू तत्थ, पासंडा कोउगा मिया ।
गिहत्थाणं अणेगाओ, साहस्सीओ समागया ॥१९॥

वहां बहुत से पाखण्डी, कौतूहली, अज्ञानी और हजारों गृहस्थ आ गये ॥१९॥

देवदाणवगंधव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा ।
अदिस्साणं च भूयाणं, आसी तत्थ समागमो ॥२०॥

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर तथा

अदृश्य भूत भी वहां आ गये ॥२०॥

पुच्छामि ते महाभाग, केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥२१॥

श्री केशीकुमार, गोतमस्वामी से कहने लगे कि हे महाभाग ! मैं आपसे प्रश्न पूछता हूँ । इस पर गोतमस्वामी ने कहा कि—

पुच्छ भंते ! जहिच्छं ते, केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसी अणुन्नाए, गोयमं इणमब्बवी ॥२२॥

हे भगवन् ! इच्छानुसार पूछिये । गोतमस्वामी की आज्ञा मिलने पर केशी श्रमण ने इस प्रकार कहा ।

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥२३॥

श्री वर्द्धमान स्वामी ने पांच शिक्षारूप धर्म कहा और श्री पार्श्वनाथ ने चार यामरूप धर्म का उपदेश दिया ।

एगकज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ? ।
धम्मे दुविहे मेहावि, कहं विप्पच्चओ न ते ॥२४॥

हे मेधाविन् ! एक ही कार्य के लिए प्रवृत्त इन दोनों जिनेश्वरों में विशेष भेद होने का कारण क्या है ? इस प्रकार धर्म के दो भेद होने पर आपको संशय क्यों नहीं होता ?।२४।

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
पन्ना समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्त विणिच्छियं ॥२५॥

श्री केशीस्वामी के कहने पर गौतमस्वामी ने कहा कि तत्वों का निश्चय करने वाली प्रज्ञा ही धर्म को सम्यग्रूप से देखती है।

पुरिमा उज्जुजड्डा उ, वक्कजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ, तेण धम्मे दुहा कए ॥२६॥

प्रथम तीर्थङ्कर के मुनि, ऋजुजड़ और अन्तिम तीर्थकर के साधु वक्रजड़ तथा मध्य के ऋजुप्राज्ञ होते हैं। इसलिए धर्म के दो भेद हैं ॥२६॥

पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

प्रथम तीर्थकर के मुनि कठिनता से समझते हैं और अन्तिम जिनके मुनियों को धर्म पालना कठिन होता है। किन्तु मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनियों के लिए समझना और पालना सुलभ होता है।

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥२८॥

हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है, मेरी शंका दूर हो गई। किन्तु मुझे अन्य शंका भी है। आप उसका समाधान करें।

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो संतरुत्तरो।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥२९॥

हे गौतम! श्री वर्द्धमान स्वामी का उपदेश किया

हुआ अचेलक-धर्म है और प्रधान वस्त्र धारण करने का धर्म महामुनि पार्श्वनाथ का है ॥२९॥

एगकज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं।
लिंगे दुविहे मेहावी, कहं विप्पच्चओ न ते ॥३०॥

एक ही कार्य में प्रवृत्ति करने वालों में भेद होने का कारण क्या है? हे मेधाविन्! लिंग के दो भेद होने से आपको शंका नहीं होती? ॥३०॥

केसिमेवं बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी।
विन्नाणेण समागम्म, धम्मसाहणमिच्छियं ॥३१॥

केशी स्वामी के पूछने पर श्री गौतमस्वामी ने कहा कि विज्ञान से जानकर ही धर्म साधनों की आज्ञा दी गई।

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविहविगप्पणं।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगपओयणं ॥३२॥

लोक में प्रतीति के लिए, संयम निर्वाह के लिए, ज्ञानादि ग्रहण के लिए और वर्षाकल्प आदि में संयम पालने के लिए उपकरण और लिंग की आवश्यकता है ॥३२॥

अह भवे पइन्ना उ, मोक्खसब्भूयसाहणा।
नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं चेव निच्छए ॥३३॥

दोनों तीर्थंकरों की प्रतिज्ञा तो निश्चय से मोक्ष के सद्भूत साधन-ज्ञान दर्शन, और चारित्ररूप ही है ॥३३॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥३४॥

हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। मेरी शंका दूर हो गई ....॥३४॥

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा।
ते य ते अहिगच्छंति, कहं ते निज्जिया तुमे ॥३५॥

हे गौतम ! तुम हजारों शत्रुओं के मध्य में खड़े हो। वे शत्रु तुम्हें जीतने को तैयार हैं। तुमने उन शत्रुओं को कैसे जीता ? ॥३५॥

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥३६॥

एक के जीतने पर पांच जीते गये और पाँच के जीतने पर दस। दस प्रकार के शत्रुओं को जीतकर, मैंने सभी शत्रुओं को जीत लिया ॥३६॥

सत्तू य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥३७॥

हे गौतम ! वे शत्रु कौनसे हैं ? केशी श्रमण के इस प्रश्न का श्री गौतम स्वामी उत्तर देने लगे ॥३७॥

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ॥३८॥

हे मुनि ! एक निरंकुश आत्मा ही शत्रु है और इन्द्रियाँ तथा कषाय भी शत्रुरूप हैं; मैं इन्हें न्यायपूर्वक जीतकर विचर रहा हूँ ॥३८॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥३९॥

गाथा २८ वत्

दीसंति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, कहं तं विहरसि मुणी ॥४०॥

हे मुनि ! लोक में बहुत से प्राणी, पाश में बन्धे हुए देखे जाते हैं, किन्तु तुम बन्धन मुक्त और हल्के होकर कैसे विचर रहे हो ? ॥४०॥

ते पासे सव्वसो छित्ता, निहंतूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी ॥४१॥

हे मुनिवर ! मैंने उन पाशों (बन्धनों) को सद्प्रयत्नों से काटकर सर्वथा नष्ट कर दिया । अब मैं बन्धन मुक्त और लघुभूत होकर विचरता हूँ ॥४१॥

पासा य इइ के वुत्ता, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥४२॥

प्रश्न–वे पाश कौनसे हैं ? गौतमस्वामी ने कहा ।

रागद्दोसादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा ।
ते छिंदित्तु जहानायं, विहरामि जहक्कमं ॥४३॥

राग द्वेषादि और तीव्र स्नेहरूप पाश भयङ्कर है। मैं इन पाशों को न्यायपूर्वक काटकर अनुक्रम से विचरता हूँ ॥४३॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥४४॥

गाथा २८ वत्

अंतोहियसंभूया, लया चिट्ठइ गोयमा ।
फलेइ विसभक्खीणि, सा उ उद्धरिया कहं ॥४५॥

हे गौतम! हृदय के भीतर उत्पन्न हुई लता, विषफल देती है। आपने उस लता को कैसे उखाड़ा ? ॥४५॥

तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं ।
विहरामि जहानायं, मुक्को मि विसभक्खणं ॥४६॥

मैंने उस बेलि को सर्वथा काटकर और जड़ से उखाड़कर फेंक दिया। अब मैं उसके विष से मुक्त होकर विचरता हूँ।

लया य इइ का वुत्ता, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥४७॥

केशी—वह लता कौनसी है ? गौतम स्वामी ने कहा।

भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया ।
तमुच्छित्तु जहानायं, विहरामि महामुणी ॥४८॥

हे महामुने ! संसार में तृष्णारूपी भयंकर लता है, जो भयंकर फल देनेवाली है। मैंने उस लता को उखाड़ फेंका। अब मैं सुख पूर्वक विचरता हूँ। ॥४८॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥४९॥

गाथा २८ वत्

संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा।
जे डहंति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे ॥५०॥

हे गोतम ! शरीर में भयंकर अग्नि जल रही है और शरीर को जला रही है। आपने उस आग को कैसे शान्त किया ?

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं।
सिंचामि सययं ते उ, सित्ता नो व डहंति मे ॥५१॥

महामेघ से बरसे हुए जल को लेकर, मैं अग्नि को निरंतर बुझाता रहता हूँ। वह बुझी हुई अग्नि मुझे नहीं जलाती।५१।

अग्गी य इइ के वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५२॥

प्रश्न—अग्नि कौनसी है ? उत्तर—

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवो जलं।
सुयधाराभिहया संता, भिन्ना हु न डहंति मे ॥५३॥

कषाय अग्नि है। श्रुत, शील, और तप रूपी जल है।

श्रुतरूप जलधारा से अग्नि को शान्त करने पर फिर वह मुझे नहीं जला सकती ॥५३॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥५४॥

गाथा २८ वत्

अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
जंसि गोयम आरूढो, कहं तेण न हीरसि ॥५५॥

हे गौतम ! यह साहसिक, भयंकर और दुष्ट घोड़ा भाग रहा है । आप इस दुष्ट घोड़े पर सवार हैं । कहिये, वह घोड़ा आपको उन्मार्ग में कैसे नहीं ले गया ? ॥५५॥

पहावन्तं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं ।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जई ॥५६॥

भागते हुए दुष्ट अश्व को मैं श्रुतरूप रस्सी से बांधकर रखता हूँ । इससे मेरा अश्व, उन्मार्ग में नहीं जाकर सुमार्ग पर ही चलता है ॥५६॥

आसे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५७॥

प्रश्न—अश्व कौनसा है ? उत्तर—

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
तं सम्मं तु निगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कंथगं ॥५८॥

यह मन ही साहसिक, दुष्ट और भयंकर घोड़ा है, जो चारों ओर भागता है। मैं उसका जातिवान् और सुधरे हुए अश्व की तरह, धर्म शिक्षा द्वारा निग्रह करता हूँ ॥५८॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥५९॥

गाथा २८ वत्

कुप्पहा बहवे लोए, जेसिं नासंति जंतवो।
अद्धाणे कह वट्टंतो, तं न नाससि गोयमा ॥६०॥

हे गौतम ! लोक में बहुत कुमार्ग हैं, जिन पर चलने से जीव दुखी होते हैं। किन्तु आप सुमार्ग में चलते हुए किस प्रकार पथ भ्रष्ट नहीं होते ? ॥६०॥

जे य मग्गेण गच्छंति, जे य उम्मग्गपट्ठिया।
ते सव्वे वेइया मज्झं, तो न नस्सामहं मुणी ॥६१॥

हे मुनि ! जो सन्मार्ग से जाते हैं और उन्मार्ग में प्रवृत्ति करते हैं, उन सबको मैं जानता हूँ। इसलिए मैं सन्मार्ग भ्रष्ट नहीं होता ॥६१॥

मग्गे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६२॥

प्रश्न–सुमार्ग और कुमार्ग कौन से हैं ? उत्तर–

कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ॥६३॥

कुप्रवचन को माननेवाले सभी पाखण्डी लोग उन्मार्ग में रहे हुए हैं। श्री जिनभाषित मार्ग ही सन्मार्ग है, और यही उत्तम मार्ग है ॥६३॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥६४॥

गाथा २८ वत्

महाउदगवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।
सरणं गई पइट्ठा य, दीवं कं मन्नसी मुणी ॥६५॥

पानी के महाप्रवाह में बहते हुए प्राणियों को शरण देकर स्थिर रखने वाला द्वीप, आप किसे मानते हैं ॥६५॥

अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ न विज्जई ॥६६॥

समुद्र के मध्य में एक महाद्वीप है। उस द्वीप पर पानी के महाप्रवाह की गति नहीं होती ॥६६॥

दीवे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६७॥

प्रश्न—वह द्वीप कौनसा है ? उत्तर—

जरामरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥६८॥

जरा और मृत्युरूप वेग से डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म द्वीप ही उत्तम स्थान और शरणरूप है ॥६८॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥६९॥

गाथा २८ वत्

अण्णवंसि महोहंसि, नावा विपरिधावई ।
जंसि गोयममारूढो, कहं पारं गमिस्ससि ॥७०॥

हे गोतम ! महाप्रवाहवाले समुद्र में विपरीत जाने वाली नौका में आप सवार हो रहे हैं । आप उस पार कैसे जा सकेंगे ? ॥७०॥

जा उ अस्साविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी ।
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥७१॥

छिद्रोंवाली नाव, पार नहीं पहुँचा सकती, किन्तु जो नौका छिद्र रहित है वह पार पहुँचा सकती है ॥७१॥

नावा य इइ का वुत्ता, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७२॥

प्रश्न—वह नौका कौनसी है ? उत्तर—

सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥७३॥

भगवान् ने कहा कि—यह शरीर नौकारूप है, जीव नाविक है तथा संसार समुद्ररूप है। जो महर्षि हैं, वे इस शरीर रूप नौका से संसार समुद्र तैर जाते हैं ॥७३॥

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥७४॥

गाथा २८ वत्

अंधयारे तमे घोरे, चिट्ठंति पाणिणो बहू।
को करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥७५॥

बहुत से प्राणी घोर अन्धकार में पड़े हैं। लोक में रहे हुए इन सब प्राणियों को प्रकाशित करने वाला कौन है?

उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोयप्पभंकरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥७६॥

समस्त लोक में प्रकाश करनेवाले निर्मल सूर्य का उदय हुआ है, वही सभी प्राणियों को प्रकाशित करेगा।

भाणू य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७७॥

प्रश्न—वह सूर्य कौनसा है? उत्तर—

उग्गओ खीणसंसारो, सव्वण्णू जिणभक्खरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयम्मि पाणिणं ॥७८॥

जिसने ज्ञानावरणीयादि संसार रूप कर्म अन्धकार का क्षय कर दिया है, ऐसे सर्वज्ञ जिनेश्वररूपी सूर्य का उदय हुआ है। यही सूर्य लोक के समस्त प्राणियों को प्रकाश देगा।

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥७६॥

गाथा २८ वत्

सारीरमाणसे दुक्खे, वज्झमाणाण पाणिणं।
खेमं सिवं अणाबाहं, ठाणं किं मन्नसी मुणी ॥८०॥

हे मुने ! सांसारिक प्राणी, शारीरिक और मानसिक दुखों से पीड़ित हो रहे हैं। इनके लिए निर्भय, निरुपद्रव और शान्तिदायक स्थान कोनसा है ? ॥८०॥

अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।
जत्थ नत्थि जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥८१॥

लोक के अग्रभाग पर एक निश्चल स्थान है, जहाँ जरा मृत्यु, रोग और दुःख नहीं है। किन्तु वहां तक पहुँचना कठिन है ॥८१॥

ठाणे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥८२॥

वह स्थान कोनसा है ?

निव्वाणं ति अबाहं ति, सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो ॥८३॥

उस स्थान का नाम निर्वाण, अव्याबाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध है। इसे महर्षि ही प्राप्त करते हैं॥

तं ठाणं सासयंवासं, लोगग्गम्मि दुरारुहं।
जं संपत्ता न सोयंति, भवोहंतकरा मुणी ॥८४॥

हे मुने ! वह स्थान शाश्वत निवासरूप है। वह लोक के अग्रभाग में स्थित है, किन्तु उसे प्राप्त करना महा कठिन है। जिसने भव का अन्त करके इस स्थान को प्राप्त कर लिया; वे फिर सोच नहीं करते और संसार में फिर आना नहीं पड़ता।

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत, सव्वसुत्तमहोयही ॥८५॥

हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा अच्छी है। मेरे सन्देह नष्ट हो गये हैं। अतः हे संशयातीत ! हे समस्त श्रुत समुद्र के पार-गामी ! आपको नमस्कार है ॥८५॥

एवं तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमे।
अभिवंदित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं ॥८६॥
पंचमहव्वयं धम्मं, पडिवज्जइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥८७॥

इस प्रकार शंकाएँ दूर हो जाने पर, घोर पराक्रमी श्रीकेशी श्रमण ने महायशस्वी श्री गौतम स्वामीजी को सिर झुकाकर वन्दना की और पाँच महाव्रत धर्म को भाव से ग्रहण किया, क्योंकि प्रथम और चरम तीर्थंकर के मार्ग में यही धर्म सुख देने वाला है ॥८६–८७॥

केसी गोयमओ निच्चं, तम्मि आसि समागमे।
सुयसीलसमुक्करिसो, महत्थऽत्थविणिच्छओ ॥८८॥

उस वन में श्रीकेशी श्रमण और गौतम स्वामी का नित्य समागम हुआ। इस समागम से श्रुत एवं शील का सम्यग् उत्कर्ष हुआ और मोक्ष साधक अर्थों का विशिष्ट निर्णय हुआ ॥८८॥

तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्गं समुवट्ठिया।
संथुया ते पसीयंतु, भयवं केसिगोयमे ॥८९॥त्ति बेमि

यह संवाद सुन कर परिषद सन्तोष पाई और सन्मार्ग में लगी। परिषद ने भगवान् केशीकुमार और गौतमस्वामी की स्तुति करते हुए कहा कि हे भगवन्! आप प्रसन्न रहें ॥८८॥

तेवीसवां अध्ययन समाप्त

समिइओ चउवीसइमं अज्झयणं

-:२४:-

अट्ठ पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य ।
पंचेव य समिईओ तओ गुत्तीओ आहिया ॥१॥

समिति और गुप्ति रूप आठ प्रवचन माताएँ हैं। समिति पांच और गुप्ति तीन हैं ॥१॥

इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥२॥

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान और उच्चार समिति तथा मन, वचन और काय गुप्ति आठवीं है ॥२॥

एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया ।
दुवालसंगं जिणक्खायं, मायं जत्थ उ पवयणं ॥३॥

आठ समितियों का यह संक्षिप्त वर्णन है। जिनभाषित द्वादशांग रूप प्रवचन, इन्हीं में अन्तर्भूत होता है ॥३॥

आलंबणेण कालेण, मग्गेण जयणाइ य ।
चउकारणपरिसुद्धं, संजए इरियं रिए ॥४॥

आलम्बन, काल, मार्ग और यतना, इन चार कारणों की शुद्धि के साथ साधु गमन करे ॥४॥

तत्थ आलंबणं नाणं, दंसणं चरणं तहा ।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए ॥५॥

ईर्यासमिति में ज्ञान, दर्शन और चारित्र आलम्बन हैं। काल, दिवस है, और कुमार्ग का त्याग सुमार्ग है ॥५॥

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
जयणा चउव्विहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥६॥

यतना चार प्रकार की है,–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। अब मैं इनका वर्णन करता हूँ सो सुनो ॥६॥

दव्वओ चक्खुसा पेहे, जुगमित्तं च खित्तओ।
कालओ जाव रीइज्जा, उवउत्ते य भावओ ॥७॥

द्रव्य की अपेक्षा आँखों से देखकर चले। क्षेत्र से चार हाथ प्रमाण देखकर, काल से चलते समय–जब तक चले और भाव से उपयोग सहित गमन करे ॥७॥

इंदियत्थे विवज्जिता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते रियं रिए ॥८॥

इन्द्रियों के विषयों और पाँच प्रकार की स्वाध्याय को वर्जता हुआ चले। ईर्यासमिति में तन्मय होकर और उसी में उपयोग रखकर चले ॥८॥

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया।
हासे भए मोहरिए, विकहासु तहेव य ॥९॥
एयाइं अट्ठ ठाणाइं, परिवज्जितु संजए।
असावज्जं मियं काले, भासं भासिज्ज पन्नवं ॥१०॥

बोलते समय, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, वाचालता तथा विकथा में उपयोग, इन आठ स्थानों का बुद्धिमान् साधु त्याग कर दे और बोलते समय परिमित और निर्वद्य भाषा बोले।

गवेसणाए गहणे य, परिभोगेसणा य जा ।
आहारोवहिसेज्जाए, एए तिन्नि विसोहए ॥११॥

आहार, उपधि और शय्या, इन तीनों की गवेषणा, ग्रहणैषणा तथा परिभोगैषणा, शुद्धता पूर्वक करे ॥११॥

उग्गमुप्पायणं पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं ।
परिभोयम्मि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई ॥१२॥

यतनावन्त साधु, प्रथम एषणा में उद्‌गम और उत्पादन दोष की शुद्धि करे। दूसरी एषणा में शंकितादि दोषों की शुद्धि करे। तीसरी परिभोगैषणा में आहार, वस्त्र, पात्र और शय्या, इन चारों की संयोजनादि दोषों की शुद्धि करे ॥१२॥

ओहोवहोवग्गहियं, भंडयं दुविहं मुणी ।
गिण्हंतो निक्खिवंतो वा, पउंजेज्ज इमं विहिं ॥१३॥

रजोहरणादि ओघ उपधि, और पाट पाटला शय्यादि औपग्रहिक उपधि, इन दो प्रकार के उपकरणों को ग्रहण करते और रखते हुए मुनि को इस विधि का पालन करना चाहिए।

चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई ।
आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओवि समिए सया ॥१४॥

तीनों प्रकार की उपधि को आँखों से देखकर प्रमार्जन करे, और ग्रहण तथा निक्षेप में सदैव समिति का पालन करे।

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण जल्लियं ।
आहारं उवहिं देहं, अन्नं वावि तहाविहं ॥१५॥

मल, मूत्र, श्लेष्म, सेड़ा, शरीर का मैल, आहार, उपधि, शव आदि फेंकने योग्य वस्तु को विधि से परठना चाहिये ।

अणावायमसंलोए, अणावए चेव होइ संलोए ।
आवायमसंलोए, आवाए चेव संलोए ॥१६॥

जहां १-कोई आता नहीं और देखता भी नहीं हो, २-आता नहीं किन्तु देखता हो, ३-देखता नहीं, किन्तु आता हो और ४-आता भी हो और देखता भी हो । ऐसे स्थानों में से ।

अणावायमसंलोए, परस्सऽणुवघाइए ।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिरकालकयम्मि य ॥१७॥

जहां कोई आता नहीं हो और देखता भी नहीं हो तथा जीवों की घात भी नहीं हो, जो स्थान सम हो, बिना ढका हो और थोड़े समय से अचित्त हुआ हो ॥१७॥

वित्थिण्णे दूरमोगाढे, णासन्ने विलवज्जिए ।
तसपाणवीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥१८॥

वह स्थान विस्तृत हो, नीचे दूर तक अचित्त हो, ग्रामादि के समीप नहीं हो, चूहे आदि के बिल से रहित हो

तथा प्राणी और बीज से रहित हो, ऐसे स्थान में मल आदि का त्याग करे ॥१८॥

एयाओ पंच समिईओ, समासेण वियाहिया ।
इत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो ॥१९॥

यहां पांच समितियों का वर्णन संक्षेप से किया गया है। अब तीन गुप्ति का वर्णन अनुक्रम से कहता हूँ ॥१९॥

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चमोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा य, मणगुत्ती चउव्विहा ॥२०॥

मन गुप्ति चार प्रकार की है—१ सत्या २ असत्या ३ मिश्रा और ४ असत्यामृषा ॥२०॥

संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य ।
मणं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२१॥

संयमी पुरुष, संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त होते हुए मन का नियन्त्रण करे—रोके। यह मन गुप्ति है।

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चमोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा य, वइगुत्ती चउव्विहा ॥२२॥

वचन गुप्ति चार प्रकार की है—१ सत्या २ असत्या ३ सत्यामृषा और ४ असत्यामृषा ॥२२॥

संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य ।
वयं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२३॥

साधु, संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त वाणी को रोके। यह वचन गुप्ति है ॥२३॥

ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लंघण पल्लंघणे, इंदियाण य जुंजणे ॥२४॥

खड़े होने में, बैठने में, शयन करने में, उल्लंघन करने में, चलने में और इन्द्रियों की प्रवृत्ति करने में यतना करे।।२४॥

संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२५॥

साधु, संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में जाते हुए शरीर को रोके। यह काय गुप्ति है ॥२५॥

एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥२६॥

ये पांच समिति, चारित्र की प्रवृत्ति के लिए हैं और तीन गुप्ति सभी प्रकार की अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्त होने के लिए कही है ॥२६॥

एसा पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी ।
सो खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए।२७। त्ति बेमि

जो पण्डित मुनि, इन प्रवचन माताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह संसार के समस्त बन्धनों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥२७॥

—:चोवीसवां अध्ययन समाप्त:—

जण्णइज्जं पंचवीसइमं अज्झयणं

—:२५:—

माहणकुलसंभूओ, आसि विप्पो महायसो ।
जायाई जमजन्नम्मि, जयघोसे त्ति नामओ ॥१॥

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न,जयघोष नाम का प्रसिद्ध और महा यशस्वी विप्र हुआ। वह यम नियम रूप भाव यज्ञ करने वाला था।

इंदियग्गामनिग्गाही, मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयंते, पत्तो वाणारसिं पुरिं ॥२॥

इन्द्रियों को निग्रह करनेवाले, मोक्षमार्ग के पथिक वे महामुनि ग्रामानुग्राम विचरते हुए वाणारसी नगरी में पधारे।

वाणारसीए वहिया, उज्जाणम्मि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसंथारे,, तत्थ वासमुवागए ॥३॥

वे वाणारसी नगरी के बाहर मनोरम उद्यान में आये और निर्दोष शय्या संस्तारक लेकर रहने लगे ॥३॥

अह तेणेव कालेण, पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति नामेणं, जन्नं जयइ वेयवी ॥४॥

उस समय उसी नगरी में वेदों का ज्ञाता, विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ करता था ॥४॥

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्नम्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ॥५॥

वे जयघोष अनगार, मासखमण के पारणे के लिये भिक्षा लेने को, विजयघोष के यज्ञ में उपस्थित हुए ॥५॥

समुवट्ठियं तहिं संतं, जायगो पडिसेहए ।
न हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू जायाहि अण्णओ ॥६॥

उनके आने पर याजक–विजयघोष ने निषेध करते हुए कहा–हे भिक्षु ! मैं तुझे भिक्षा नहीं दूंगा, तू अन्यत्र जाकर याचना कर ॥६॥

जे य वेयविऊ विप्पा, जन्नमट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण पारगा ॥७॥
जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
तेसिं अन्नमिणं देयं, भो भिक्खू सव्वकामियं ॥८॥

सर्व कामनाओं को पूर्ण करनेवाला यह भोजन, उन्हीं विप्रों को देने का है, जो वेदों के ज्ञाता, यज्ञार्थी, जोतिषांग के वेत्ता और धर्म के पारगामी द्विज हैं । तथा अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं ॥७–८॥

सो तत्थ एव पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो, उत्तमट्ठगवेसओ ॥९॥

यज्ञ कर्त्ता के इस प्रकार प्रतिषेध करने पर, वे महामुनि, न तो हर्षित हुए न क्रोधित हुए। वे मोक्ष की गवेषणा करनेवाले थे।

नन्नट्ठं पाणहेउं वा, नवि निव्वाहणाय वा।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, इमं वयणमव्ववी ॥१०॥

उन्होंने आहार पानी तथा अपने निर्वाह के लिए नहीं, किन्तु उन लोगों के मोक्ष के लिए इस प्रकार कहा–॥१०॥

नवि जाणासि वेयमुहं, नवि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ॥११॥

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य।
न ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥१२॥

हे विप्रों ! तुम वेदों के मुख को नहीं जानते, यज्ञ के मुख को भी नहीं जानते, न नक्षत्रों के मुख को जानते हो और न धर्म के मुख को ही समझते हो। तुम उनको भी नहीं जानते जो स्व-पर का उद्धार करने में समर्थ है। यदि जानते हो तो बताओ ॥११-१२॥

तस्सऽक्खेवपमोक्खं च, अचयंतो तहिं दिओ।
सपरिसो पंजलीहोउं, पुच्छई तं महामुणिं ॥१३॥

मुनि के इन आक्षेपों का उत्तर देने में असमर्थ होकर उस द्विज ने, अपनी परिषद सहित महामुनि से हाथ जोड़कर पूछा।

वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ॥१४॥

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
एयं मे संसयं सव्वं, साहू कहसु पुच्छिओ ॥१५॥

हे साधु ! आप कहें कि वेदों का मुख कौनसा है ? यज्ञ, नक्षत्र और धर्म का मुख कौनसा है । और यह भी बताइये कि स्व–पर का उद्धार करने में समर्थ कौन है ? मेरे इन सब संशयों का उत्तर देवें ॥१४–१५॥

अग्गिहुत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसां मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माण कासवो मुहं ॥१६॥

अग्निहोत्र, वेदों का मुख है । यज्ञार्थी वेद का मुंह है । नक्षत्रों का मुख चन्द्रमा और धर्म का मुख काश्यप भ० ऋषभदेव हैं ॥१६॥

जहा चंदं गहाईया, चिट्ठंते पंजलीउडा ।
वंदमाणा नमंसंता, उत्तमं मणहारिणो ॥१७॥

जिस प्रकार चन्द्रमा के आगे ग्रह नक्षत्रादि हाथ जोड़कर वन्दना और मनोहर स्तुति करते हैं, उसी प्रकार उन उत्तम भ० काश्यप की इन्द्रादि देव सेवा करते हैं ॥१७॥

अजाणगा जन्नवाई, विज्जामाहणसंपया ।
मूढा सज्झायतवसा, भासच्छन्ना इवऽग्गिणो ॥१८॥

तुम यज्ञवादी विप्र, राख से ढँकी अग्नि की तरह तत्त्व से अनभिज्ञ हो। विद्या और ब्राह्मण की सम्पदा से भी अनजान हो तथा स्वाध्याय और तप के विषय में भी मूढ़ हो ॥१८॥

जो लोए बंभणो वुत्तो, अग्गी व महिओ जहा।
सया कुसलसंदिट्ठं, तं वयं बूम माहणं ॥१९॥

जिन्हें कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है और जो सदा अग्नि के समान पूजनीय हैं, उन्हीं को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो न सज्जइ आगंतुं, पव्वयंतो न सोयई।
रमइ अज्जवयणम्मि, तं वयं बूम माहणं ॥२०॥

जो स्वजनादि में आसक्त नहीं होता और प्रव्रजित होने में सोच नहीं करता, किन्तु आर्य वचनों में रमण करता है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥२०॥

जायरूवं जहामट्ठं, निद्धंतमलपावगं।
रागद्दोसभयाईयं, तं वयं बूम माहणं ॥२१॥

जिस प्रकार अग्नि से शुद्ध किया हुआ सोना निर्मल होता है, उसी प्रकार जो राग द्वेष और भयादि से रहित है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥२१॥

तवस्सियं किसं दंतं, अवचियमंससोणियं।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥२२॥

जो तपस्वी, कृश और इन्द्रियों का दमन करनेवाला है, जिसके शरीर में रक्त और मांस थोड़ा रह गया है, जो सुव्रतों के पालन से निर्वाण प्राप्त करनेवाला है, उसी को०

तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं ॥२३॥

जो त्रस और स्थावर प्राणियों को संक्षेप या विस्तार से जानकर, त्रिकरण त्रियोग से हिंसा नहीं करता, उसी को०

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥२४॥

क्रोध से, लोभ से, हास्य तथा भय से भी जो झूठ नहीं बोलता, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥२४॥

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
न गिण्हइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥२५॥

सचित्त या अचित्त, थोड़ी या अधिक भी बिना दी हुई वस्तु जो नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥२५॥

दिव्वमाणुस्सतेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं ।
मणसा कायवक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥२६॥

जो मन, वचन और काया से देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी मैथुन सेवन नहीं करता, वही ब्राह्मण कहलाता है ।

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२७॥

जिस प्रकार कमल पानी में उत्पन्न होने पर भी उसमें लिप्त नहीं रहता, उसी प्रकार जो कामभोगों से अलिप्त है....

आलोलुयं मुहाजीविं, अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२८॥

जो लोलुपता रहित, भिक्षा जीवी, अनगार और अकिंचन होता है तथा गृहस्थों में आसक्ति नहीं रखता, उसी को....

जहित्ता पुव्वसंजोगं, नाइसंगे य बंधवे ।
जो न सज्जइ भोगेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२९॥

जाति और बन्धुजनों का पूर्व संयोग छोड़कर फिर भोगों में आसक्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२९॥

पसुबंधा सव्ववेया, जट्ठं च पावकम्मुणा ।
न तं तायंति दुस्सीलं, कम्माणि बलवंति हि ॥३०॥

सभी वेद, पशुओं के वध के लिए हैं और यज्ञ, पाप कर्म का हेतु है। ये वेद और यज्ञ, यज्ञकर्ता दुराचारी का रक्षण नहीं कर सकते, क्योंकि कर्म अपना फल देने में बलवान है।

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ॥३१॥

केवल सिर मुंडाने से कोई श्रमण नहीं होता, न ॐकार बोलने से ब्राह्मण होता है। अरण्य में बसने मात्र से कोई मुनि नहीं हो जाता और न वल्कलादि पहिनने से तापस हो सकता है ॥३१॥

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२॥

समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है ॥३२॥

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये सब कर्म से होते हैं।

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविणिम्मुक्कं, तं वयं बूम माहणं ॥३४॥

इस धर्म को सर्वज्ञ ने प्रकट किया, जिसके आचरण से स्नातक–(विशुद्ध) होकर सभी कर्म से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे उतम धर्म के पालन करनेवाले को हम ब्राह्मण कहते है ॥३४॥

एवं गुणसमाउत्ता, जे भवंति दिउत्तमा ।
ते समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ॥३५॥

उपर्युक्त गुणों से युक्त जो द्विजोत्तम होते हैं, वे ही स्व-पर की आत्मा का कल्याण करने में समर्थ होते हैं ॥३५॥

एवं तु संसए छिन्ने, विजयघोसे य माहणे ।
समुदाय तओ तं तु, जयघोसं महामुणिं ॥३६॥

इस प्रकार संशयों के नष्ट होने पर विजयघोष ब्राह्मण ने सम्यग् प्रकार से जयघोष मुनि को पहचान लिया ॥३६॥

तुट्ठे य विजयघोसे, इणमुदाहु कयंजली ।
माहणत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥३७॥

विजयघोष प्रसन्न होकर हाथ जोड़कर कहने लगा– आपने ब्राह्मणत्व के यथार्थ स्वरूप का बहुत अच्छा उपदेश दिया ॥३७॥

तुब्भे जइया जन्नाणं, तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुब्भे, तुब्भे धम्माण पारगा ॥३८॥

भगवन् ! आप वेदज्ञ हैं, यज्ञ करनेवाले हैं, ज्योतिषांग के ज्ञाता आप ही हैं और आप ही धर्म के पारगामी हैं ।

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
तमणुग्गहं करेहऽम्हं, भिक्खेणं भिक्खुउत्तमा ॥३९॥

हे उत्तमोत्तम भिक्षु ! आप ही अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं । अतएव हम पर अनुग्रह करके भिक्षा ग्रहण करें ॥३९॥

न कज्जं मज्झ भिक्खेण, खिप्पं निक्खमसू दिया ।
मा भमिहिसि भयावट्टे, घोरे संसारसागरे ॥४०॥

हे द्विज ! मुझे भिक्षा का प्रयोजन नहीं है, तू शीघ्र ही प्रव्रजित होजा। इस भयचक्ररूप घोर संसार सागर में भ्रमण मत कर ॥४०॥

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥४१॥

भोगी जीव कर्म से लिप्त होता है, अभोगी कर्म से लिप्त नहीं होता । भोगी जीव संसार में परिभ्रमण करता है और भोगों का त्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है ॥४१॥

उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई ॥४२॥

गीला और सूखा ऐसे मिट्टी के दो गोले भींत पर फेंकने पर जो गीला होता है वह चिपक जाता है । किन्तु सूखा हुआ गोला नहीं चिपकता ॥४२॥

एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लग्गंति, जहा से सुक्कगोलए ॥४३॥

इसी प्रकार काम भोगों में मूर्छित दुर्बुद्धि जीव को कर्म लगते हैं, किन्तु विरक्त को सूखे गोले की तरह कर्म नहीं लगते ।

एवं से विजयघोसे, जयघोसस्स अंतिए ।
अणगारस्स निक्खंतो, धम्मं सुच्चा अणुत्तरं ॥४४॥

श्रीजयघोष मुनि के पास से उत्तम धर्म को सुनकर विजयघोष गृह त्यागकर दीक्षित हो गये ॥४४॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
जयघोसविजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥त्ति बेमि॥

श्रीजयघोष मुनि, तप और संयम से अपने पूर्व कर्मों का क्षय करके सर्वोत्तम सिद्ध गति को प्राप्त हुए ॥४५॥

—पच्चीसवां अध्ययन समाप्त—

समायारी छव्वीसइमं अज्झयणं

:२६:

सामायारिं पवक्खामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं।
जं चरित्ताण निग्गंथा, तिण्णा संसारसागरं ॥१॥

मैं सभी दुःखों से मुक्त करनेवाली वह समाचारी कहता हूँ, जिसका आचरण करनेवाले निर्ग्रंथ, संसार सागर से पार होते हैं ॥१॥

पढमा आवस्सिया नामं, बिइया य निसीहिया।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥२॥
पंचमी छंदणा नामं, इच्छाकारो य छट्ठओ।
सत्तमो मिच्छकारो य, तहक्कारो य अट्ठमो ॥३॥

अब्भुट्ठाणं च नवमं, दसमी उवसंपदा।
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया ॥४॥

प्रथमा आवश्यकी, दूसरी नैषेधिकी, तीसरी आपृच्छनी, चौथी प्रतिप्रच्छनी, पांचवी छन्दना, छठी इच्छाकार, सातवीं मिच्छाकार, आठवीं तथाकार, नौवीं अभ्युत्थान, और दसवीं का नाम उपसम्पदा है। इस प्रकार साधुओं की दशांग समाचारी तीर्थंकरों ने बताई है ॥२–४॥

गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा निसीहियं।
आपुच्छणा सयंकरे, परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥
छंदणा दव्वजाएणं, इच्छाकारो य सारणे।
मिच्छाकारो य निंदाए, तहकारो पडिस्सुए ॥६॥
अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसंपया।
एवं दुपंचसंजुत्ता, सामायारी पवेइया ॥७॥

जाते समय 'आवश्यकी,' स्थान पर आते 'नैषेधिकी,' अपना कार्य करते समय पूछना-'आपृच्छनी,' पर का कार्यकरने के लिये पूछने को 'पृतिप्रच्छनी' कहते हैं। द्रव्य जाति के लिये निमन्त्रित करना 'छन्दना' है। अपने और दूसरे के कार्य की इच्छा बतलाना अथवा दूसरों की इच्छानुसार चलना 'इच्छाकार' है। आलोचना कर प्रायश्चित लेना 'मिथ्याकार' और गुरुजनों के वचनों को स्वीकार करना 'तथाकार' है। गुरुजनों का बहुमान करने में तत्पर रहना 'अभ्युत्थान' समाचारी है और ज्ञानादि के लिये उनके समीप विनीत भाव से रहना 'उपसम्पदा' समाचारी है। यह दस प्रकार की समाचारी है।५-से-७।

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भंडयं पडिलेहित्ता, वंदित्ता य तओ गुरुं ॥८॥

दिन के प्रथम चतुर्थ भाग में, सूर्योदय होने पर, भण्डोपकरण की प्रतिलेखना करके गुरु को वन्दना करे, फिर॥८॥

पुच्छिज्ज पंजलिउडो, किं कायव्वं मए इह ।
इच्छं निओइउं भंते, वेयावच्चे व सज्झाए ॥९॥

हाथ जोड़कर पूछे कि भगवन् ! मैं क्या करूं ? आप आज्ञा प्रदान करें कि मैं वैयावृत्य करूं या स्वाध्याय ? ॥९॥

वेयावच्चे निउत्तेणं, कायव्वं अगिलायओ ।
सज्झाए वा निउत्तेणं, सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥१०॥

यदि वैयावृत्य में नियुक्त करे, तो ग्लानी रहित होकर वैयावृत्य करे और स्वाध्याय की आज्ञा दें, तो समस्त दुःखों से छुड़ाने वाला स्वाध्याय करे ॥१०॥

दिवसस्स चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥११॥

बुद्धिमान् मुनि, दिन के चार भाग करके उन चारों भागों में उत्तर गुणों की वृद्धि करे ॥११॥

पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं झाणं झियायई ।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झायं ॥१२॥

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचरी और चौथे प्रहर में फिर स्वाध्याय करे ॥१२॥

आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया ।
चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइ पोरिसी ॥१३॥

आषाढ़ मास में दो पाँव, पौष मास में चार कदम, चैत्र और आश्विन मास में तीन पावन्डे भरने से पौरुषी होती है ।

अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेणं च दुअंगुलं ।
वड्ढए हायए वावि, मासेणं चउरंगुलं ॥१४॥

सात दिन रात में एक अंगुल, पक्ष में दो अंगुल, और मास में चार अंगुल दिन बढ़ता और घटता है ॥१४॥

आसाढबहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य ।
फग्गुणवइसाहेसु य, बोद्धव्वा ओमरत्ताओ ॥१५॥

आषाढ़, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख के कृष्ण पक्ष में एक दिन रात की न्यूनता—क्षय—होती है ।१५।

जेट्ठामूले आसाढसावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा ।
अट्ठहिं बीयतइयम्मि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥१६॥

ज्येष्ठ आषाढ़ और श्रावण में छः अंगुल बढ़ाने से और भाद्रपद, आश्विन, तथा कार्तिक में आठ अंगुल, मार्गशीर्ष, पौष और माघ में दस अंगुल और फाल्गुन, चैत्र और वैशाख में आठ अंगुल बढ़ामे से पौन पौरुषी का काल होता है ।

रत्तिं पि चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राइभाएसु चउसु वि ॥१७॥

बुद्धिमान् साधु, रात्रि के भी चार भाग करके उन चारों में उत्तर गुणों की आराधना करे ॥१७॥

पढमं पोरिसिं सज्झायं, बिइयं झाणं झियायई।
तइयाए निद्दमोक्खंतु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥१८॥

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में निद्रा–त्याग और चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करे ॥१८॥

जं नेइ जया रत्तिं, नक्खत्तं तम्मि नहचउब्भाए।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झायं पओसकालम्मि ॥१९॥

जो नक्षत्र, जिस रात्रि की पूर्ति करता हो, वह नक्षत्र आकाश के चौथे भाग में आवे तब प्रदोष काल होता है। उस समय स्वाध्याय से निवृत्त हो जावे ॥१९॥

तम्मेव य नक्खत्ते, गयणचउब्भागमावसेसम्मि।
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥२०॥

वही नक्षत्र, आकाश का चौथा भाग रहे वहां आ जावे तो वैरात्रिक काल को जानकर आवश्यक क्रिया करे ॥२०॥

पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, पडिलेहित्ताण भंडयं।
गुरुं वंदित्तु सज्झायं, कुज्जा दुक्खविमोक्खणं ॥२१॥

दिन के प्रथम पहर के चतुर्थ भाग में भण्डोपकरण की प्रतिलेखना करे, फिर गुरुजनों को वन्दना करके सर्व दुःखों से छुड़ाने वाला स्वाध्याय करे ॥२१॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं।
अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायणं पडिलेहए ॥२२॥

पोरुषी के चौथे भाग में गुरु को वन्दना करके काल का उल्लंघन किये बिना, पात्रादि की प्रतिलेखनादि करे ॥२२॥

मुहपत्तिं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं।
गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए ॥२३॥

मुँहपत्ती की प्रतिलेखना करके गोच्छक की प्रतिलेखना करे, फिर गोच्छक को अंगुलियों से ग्रहण करके वस्त्रों की प्रतिलेखना करे ॥२३॥

उड्ढं थिरं अतुरियं, पुव्वं ता वत्थमेव पडिलेहे।
तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जिज्जा ॥२४॥

पहिले तो वस्त्र को ऊँचा रक्खे. दृढ़ता से पकड़े, शीघ्रता न करे, वस्त्र को शुरु से आखिर तक देखे। इसके बाद वस्त्र को हिलावे और फिर प्रमार्जन करे ॥२४॥

अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबंधिअमोसलिं चेव।
छप्पुरिमा नव खोडा, पाणीपाणिविसोहणं ॥२५॥

वस्त्र को नचावे नहीं, मोड़े नहीं, फटके नहीं, झटके

नहीं, किन्तु उपयोग पूर्वक प्रतिलेखना करे। षट् पूर्व और नव खोटक से प्रतिलेखना करते हुए यदि जीव निकले, तो हाथ में उठाकर विशुद्ध करे-रक्षण करे॥२५॥

आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइया।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी ॥२६॥

आरभटा, संमर्दा, मोसली, प्रस्फोटन, विक्षिप्ता और वेदना ये छः दोष टालना चाहिये ॥२६॥

पसिढिलपलंबलोला, एगामोसा अणेगरूवधुणा।
कुणइ पमाणिपमायं, संकिय गणणोवगं कुज्जा ॥२७॥

ढीला पकड़ना, दूर रखना, भूमि पर रोलना, मध्य से पकड़कर झाड़ना, शरीर व वस्त्र को हिलाना, प्रमाद पूर्वक प्रतिलेखना करना, शंकित होकर गिनना, ये वस्त्र प्रतिलेखना के दोष हैं ॥२७॥

अणूणाइरित्तपडिलेहा, अविवच्चासा तहेव य।
पढमं पयं पसत्थं, सेसाणि उ अप्पसत्थाइं ॥२८॥

इनमें से न्यूनाधिकता और विपरीतता से रहित प्रतिलेखना रूप प्रथम पद प्रशस्त है, शेष अप्रशस्त हैं ॥२८॥

पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा।
देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥२९॥

प्रतिलेखना करते हुए वार्त्तालाप करे, जनपद कथा कहे, प्रत्याख्यान करावे, किसी को पढ़ावे या स्वयं प्रश्नोत्तर करे।

पुढवी आउकाए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ तसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हं पि विराहओ होइ ॥३०॥

प्रतिलेखना में प्रमाद करने वाला, पृथ्वीकाय, अप, तेजस, वायु वनस्पति और त्रस काय की विराधना करता है।

पुढवी आउकाए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं ।
पडिलेहणाआउत्तो, छण्हं संरक्खओ होइ ॥३१॥

प्रमाद रहित होकर प्रतिलेखना करनेवाला, पृथ्वी आदि षट्काय का रक्षक होता है ॥३१॥

तइयाए पोरिसीए, भत्तं पाणं गवेसए ।
छण्हं अन्नयरागम्मि, कारणम्मि उवट्ठिए ॥३२॥

दिन के तीसरे प्रहर, छः कारणों से किसी एक कारण के उपस्थित होने पर भोजन पानी की गवेषणा करे। वे कारण ये हैं,–

वेयण-वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥३३॥

१ क्षुधा वेदना २ वैयावृत्य ३ ईर्यासमिति शोधने ४ संयम पालने ५ प्राणरक्षा और ६ धर्म चिन्तन के लिये।

निग्गंथो धिइमंतो, निग्गंथी वि न करेज्ज छहिं चेव ।
ठाणेहिं उ इमेहिं, अणइक्कमणाइ से होइ ॥३४॥

धैर्यवान् साधु साध्वी, इन छः कारणों के उपस्थित

तुलसी-काव्य-मीमांसा

... संजत बिरति बिबेक।

होने पर आहारादि नहीं करे। इससे उनके संयम का उल्लंघन नहीं होता है। वे छः कारण ये हैं:-

आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बंभचेरगुत्तीसु।
पाणिदया तवहेउं, सरीरवोच्छेयणट्ठाए ॥३५॥

१ रोग होने पर २ उपसर्ग आने पर ३ ब्रह्मचर्य रक्षार्थ ४ प्राणियों की दया के लिए ५ तप करने के लिए और ६ शरीर से सम्बन्ध छोड़ने के लिए ॥३५॥

अवसेसं भंडगं गिज्झा, चक्खुसा पडिलेहए।
परमद्धजोयणाओ, विहारं विहरे मुणी ॥३६॥

भिक्षा के लिए, शेष भंडोपकरण को लेकर और उन्हें अच्छी तरह देखकर आधे योजन तक जावे ॥३६॥

चउत्थीए पोरिसीए; निक्खिवित्ताण भायणं।
सज्झायं च तओ कुज्जा, सव्वभावविभावणं ॥३७॥

चौथी पौरुषी में भाजनों को रखकर, सर्वभावों को प्रकट करनेवाला स्वाध्याय करे ॥३७॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्जं तु पडिलेहए ॥३८॥

चौथी पौरुषी के चौथे भाग में स्वाध्याय काल से निवृत्त होकर गुरु वन्दन करे, फिर शय्या की प्रतिलेखना करे।

पासवणुच्चारभूमिं च, पडिलेहिज्ज जयं जई ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥३९॥

यतनावंत मुनि, उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना करे और बाद में सब दुःखों से छुड़ाने वाला कायोत्सर्ग करे ।

देवसियं च अईयारं, चिंतिज्जा अणुपुव्वसो ।
नाणंमि दंसणे चेव, चरित्तम्मि तहेव य ॥४०॥

कायोत्सर्ग में दिन के समय ज्ञान, दर्शन और चारित्र में लगे हुए अतिचारों का क्रमशः चिंतन करे ॥४०॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
देवसियं तु अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४१॥

कायोत्सर्ग पालकर गुरु वन्दन करे । फिर देवसिक अतिचारों की क्रमशः आलोचना करे ॥४१॥

पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४२॥

प्रतिक्रमण करके शल्य रहित होवे और गुरु वन्दन कर के सभी दुःखों से छुड़ाने वाला कायोत्सर्ग करे ॥४२॥

*पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
थुइमंगलं च काऊणं, कालं संपडिलेहए ॥४३॥

कायोत्सर्ग पालकर गुरु की वन्दना करे और स्तुति

* सिद्धाणं संथवं किच्चा—पाठान्तर ।

भगति पथ संजत बिरति बिबेक।

मंगल करके काल की प्रतिलेखना करे ॥४३॥

पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं झाणं झियायई ।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ।

रात की प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय करे। दूसरी में ध्यान करे। तीसरे प्रहर में निद्रा त्याग कर चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे ॥४४॥

पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहिया ।
सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहंतो असंजए ॥४५॥

चौथे प्रहर में काल की प्रतिलेखना करके असंयत जीवों को नहीं जगाता हुआ स्वाध्याय करे ॥४५॥

पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥४६॥

इस पौरुषी के चौथे भाग में गुरु वन्दन करके कालका प्रतिक्रमण करे, फिर प्रातःकाल की प्रतिलेखना करे ॥४६॥

आगए कायवोसग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४७॥

कायोत्सर्ग का समय आ जाने पर समस्त दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ॥४७॥

राइयं च अइयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणंमि दंसणंमि य, चरित्तंमि तवंमि य ॥४८॥

रात्रि में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में लगे हुए अतिचारों का अनुक्रम से चिन्तन करे ॥४८॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं।
राइयं तु अइयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४९॥

कायोत्सर्ग पालकर गुरु की वन्दना करे, फिर अनुक्रम से रात्रि के अतिचारों की आलोचना करे ॥४९॥

पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥५०॥

प्रतिक्रमण करके निःशल्य होकर गुरुवन्दन करे और सभी दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ॥५०॥

किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए।
काउस्सग्गं तु पारित्ता, करिज्जा जिणसंथवं ॥५१॥

"मैं कौनसा तप करूँ" ऐसा ध्यान में विचार करके काउसग्ग पाले और जिनराज का स्तवन करे ॥५१॥

पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं।
तवं तु पडिवज्जेज्जा, कुज्जा सिद्धाण संथवं ॥५२॥

कायोत्सर्ग पालकर गुरु की वन्दना करे, फिर तप स्वीकार कर सिद्धों की स्तुति करे ॥५२॥

एसा सामायारी, समासेण वियाहिया।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं ॥५३॥ त्ति बेमि।

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

इस प्रकार उस समाचारी का संक्षेप से वर्णन किया गया कि जिसका आचरण करके बहुत से जीव संसार से तिर गये ५३॥

—छब्बीसवाँ अध्ययन समाप्त—

खलुंकिज्जं सत्तवीसइमं अज्झयणं

—:२७:—

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए।
आइण्णे गणिभावम्मि, समाहिं पडिसंधए ॥१॥

सभी शास्त्रों में विशारद ऐसे 'गर्ग' नाम के आचार्य हो गये हैं। वे गुणवान् आचार्य, सतत समाधि भाव में रहते थे।

वहणे वहमाणस्स, कंतारं अइवत्तई।
जोगे वहमाणस्स, संसारं अइवत्तई ॥२॥

जिस तरह गाड़ी में योग्य वृषभ को जोड़ने से, वन को सरलता से पार किया जा सकता है, उसी प्रकार संयम में जुड़े हुए साधु, संसार को पारकर जाते है ॥२॥

खलुंके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सई।
असमाहिं च वेएइ, तोत्तओ से य भज्जई ॥३॥

दुष्ट बैल को गाड़ी में जोड़ने वाला क्लेशित होता है,

वह मारते मारते थक जाता है, उसका चाबुक टूट जाता है और खुद भी दुःख भोगता है ॥३॥

एगं डसइ पुच्छम्मि, एगं विंधईऽभिक्खणं।
एगो भंजइ समिलं, एगो उप्पहपट्ठिओ ॥४॥

ऐसे दुष्ट बैल की पूंछ में शूल चुभाई जाती है। कोई कोई बार-बार बिंधा जाता है, कई बैल जुआ तोड़ डालते हैं और कई उन्मार्ग में चले जाते हैं ॥४॥

एगो पडइ पासेणं, निवेसइ निवज्जई।
उक्कुद्दइ उप्फिडइ, सढे बालगवी वए ॥५॥

कोई बैल करवट लेकर गिर जाता है, कोई बैठ जाता है, कोई सो जाता है, कोई उछल कूद करता है, तो कोई धूर्त बैल, तरुण गाय के पीछे भागने लगता है ॥५॥

माई मुद्धेण पडइ, कुद्धे गच्छइ पडिप्पहं।
मयलक्खेण चिट्ठई, वेगेण य पहावई ॥६॥

कपटी बैल, सिर झुकाकर गिर जाता है, कोई क्रोधित होकर पीछे भाग जाता है, कोई शव की तरह पड़ जाता है, और कोई जोर से भाग जाता है ॥६॥

छिन्नाले छिंदई सेल्लिं, दुद्दंतो भंजए जुगं।
से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जहित्ता पलायए ॥७॥

कोई दुष्ट बैल, रस्सियें तोड़ डालता है, कोई निरंकुश

हो जुआ तोड़ डालता है और कोई सुत्कार करते हुए भाग जाता है ॥७॥

खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा ।
जोइया धम्मजाणम्मि, भज्जंति धिइदुब्बला ॥८॥

ऐसे दुष्ट बैलों की तरह चंचल चित्त कुशिष्य, धर्म रूपी वाहन में जुतने पर भी संयम का पालन नहीं करके भंग कर देते हैं ॥८॥

इड्ढीगारविए एगे, एगेऽत्थ रसगारवे ।
सायागारविए एगे, एगे सुचिरकोहणे ॥९॥

कोई ऋद्धि गर्व में, कोई रस गर्व में और कोई शिष्य, साता गौरव में मस्त है तथा कोई कोई क्रोधी ही बने रहते हैं ॥९॥

भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाणभीरुए ।
थद्धे एगे अणुसासम्मि, हेऊहिं कारणेहि य ॥१०॥

कोई भिक्षाचरी में आलस्य करते हैं, तो कोई अपमान से डरते हैं और कोई घमण्डी हैं। ऐसे दुष्ट शिष्यों को मैं किन उपायों से शिक्षित करूँ ॥१०॥

सो वि अंतरभासिल्लो, दोसमेव पकुव्वई ।
आयरियाणं तु वयणं, पडिकूलेइऽभिक्खणं ॥११॥

शिक्षा देने पर कुशिष्य, बीच में ही बोल पड़ते हैं,

उल्टा दोष मढ़ते हैं और कोई कोई तो गुरु के विरुद्ध बोला करते हैं ॥११॥

न सा ममं वियाणाई, न वि सा मज्झ दाहिई ।
निग्गया होहिई मन्ने, साहू अन्नोऽत्थ वच्चउ ॥१२॥

(भिक्षार्थ जाने का कहने पर कुशिष्य कहते हैं कि) वह श्राविका मुझे नहीं पहचानती, वह मुझे आहार भी नहीं देगी। वह घर पर भी नहीं होगी। आप अन्य साधु को भेज दें।

पेसिया पलिउंचंति, ते परियंति समंतओ ।
रायवेट्ठिं च मन्नंता, करेंति भिउडिं मुहे ॥१३॥

जिस कार्य के लिए भेजे जाते हैं, उसे नहीं करते और झूठ बोलते हैं। इधर उधर घूमते फिरते हैं, और काम को राज की बेगार जैसा मानते हैं, तथा भृकुटी चढ़ाते हैं ॥१३॥

वाइया संगहिया चेव, भत्तपाणेण पोसिया ।
जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमंति दिसो दिसिं ॥१४॥

(आचार्य सोचते हैं कि) मैंने इन्हें पढ़ाया, अपने पास रक्खा, आहार पानी से पोषण किया, किन्तु जैसे पंख आने पर हंस उड़ जाते हैं, वैसे ही ये स्वेच्छाचारी हो गये हैं ॥१४॥

अह सारही विचिंतेइ, खलुंकेहिं समागओ ।
किं मज्झ दुट्ठसीसेहिं, अप्पा मे अवसीयई ॥१५॥

इन दुष्ट शिष्यों से दुखी हुए वे सारथी-आचार्य सोचते

हैं कि मुझे इनसे क्या प्रयोजन ? इन दुष्टों से मेरी आत्मा भी सताप पाती है ॥१५॥

जारिसा मम सीसाओ, तारिसा गलिगद्दहा।
गलिगद्दहे जहित्ताणं, दढं पगिण्हई तवं ॥१६॥

जैसे आलसी गदहे होते हैं, वैसे ही मेरे शिष्य हैं। इन्हें छोड़कर में उग्र तप का आचरण करूँ ॥१६॥

मिउमद्दवसंपन्नो, गंभीरो सुसमाहिओ।
विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा।१७। त्ति बेमि।

गंभीर मृदु एवं सरल भाव वाले वे महात्मा, शील सम्पन्न एवं समाधिवंत होकर पृथ्वी पर विचरने लगे ॥१७॥

सत्ताइसवां अध्ययन समाप्त

मोक्खमग्गगई अट्ठावीसइमं अज्झयणं

:-२८:-

मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्तं, नाणदंसणलक्खणं ॥१॥

हे शिष्य ! श्री जिनेन्द्र भाषित मोक्षमार्ग गति को मुझसे सुनो, जो चार कारणों से युक्त और ज्ञान दर्शन लक्षण वाला है ॥१॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥२॥

सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनराज ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को ही मोक्ष मार्ग कहा है ॥२॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एयमग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छंति सुग्गइं ॥३॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप मोक्ष मार्ग को प्राप्त हुए जीव सुगति को जाते हैं ॥३॥

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं।
ओहिनाणं तु तइयं, मणनाणं च केवलं ॥४॥

ज्ञान पाँच प्रकार का है,—मति, श्रुत, अवधि, मनः—पर्यव और केवलज्ञान ॥४॥

एयं पंचविहं नाणं, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाण य सव्वेसिं, नाणं नाणीहि देसियं ॥५॥

ज्ञानियों ने उपरोक्त पाँच प्रकार का ज्ञान द्रव्य, गुण और उनकी समस्त पर्यायों को जानने के लिए बताया है ॥५॥

गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥६॥

गुणों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं। एक द्रव्य के आश्रित ज्ञानादि तथा वर्णादि गुण रहते हैं। द्रव्य और गुण

के आश्रय से पर्याय रहती है ।६॥

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो ।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥७॥

-सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेन्द्र ने धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव, यह षट् द्रव्यात्मक लोक कहा है ॥७॥

धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गलजंतवो ॥८॥

धर्म, अधर्म और आकाश ये एक एक द्रव्य हैं । और काल, पुद्गल और जीव से अनन्त द्रव्य हैं ॥८॥

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो ।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं ॥९॥

धर्मास्तिकाय का लक्षण गति है । स्थिति, अधर्मास्तिकाय का लक्षण है । आकाश, सभी द्रव्यों का भाजन और अवगाहना लक्षणवाला द्रव्य है ॥९॥

वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो ।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य ॥१०॥

काल का लक्षण वर्त्तना और जीव का लक्षण उपयोग है । वह ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से जाना जाता है ॥१०॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥११॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण हैं ॥११॥

सद्दंधयार-उज्जोओ, पभा छायातवोऽऽइ वा ।
वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥१२॥

शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया, धूप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श—ये पुद्‌गल के लक्षण हैं ॥१२॥

एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव य ।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ॥१३॥

मिलना, भिन्न होना, संख्या, संस्थान, संयोग, और विभाग, ये पर्यायों के लक्षण हैं ॥१३॥

जीवाजीवा य बंधो य, पुण्णं पावाऽसवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव ॥१४॥

जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये नौ पदार्थ हैं ॥१४॥

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥१५॥

इन पदार्थों के यथार्थ भावों को स्वभाव से या उपदेश से भाव पूर्वक श्रद्धा करने को सम्यक्त्व कहते हैं ॥१५॥

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त-बीयरुइमेव ।
अभिगम-वित्थाररुई, किरिया-संखेव धम्मरुई ॥१६॥

सम्यक्त्व के भेद-१ निसर्ग-रुचि, २ उपदेश-रुचि ३ आज्ञा-रुचि ४ सूत्र, ५ बीज ६ अभिगम, ७ विस्तार, ८ क्रिया, ९ संक्षेप और १० धर्म रुचि ॥१६॥

भूयत्थेणाहिगया, जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
सहसम्मुइयासवसंवरो य, रोएइ उ निस्सग्गो ॥१७॥

जिसने जातिस्मरणादि ज्ञान से जीव, अजीव, पुण्य, पाप आदि को यथार्थरूप से जान लिये, वह निसर्गरुचि है।

जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव।
एमेव नन्नह त्ति य, स निसग्गरुइ त्ति नायव्वो ॥१८॥

जिनेन्द्र द्वारा दृष्ट पदार्थों को द्रव्यादि चार प्रकार से जो स्वयमेव जानकर यथार्थ श्रद्धा करता है, उसे 'निसर्ग-रुचि सम्यक्त्व जानना चाहिए ॥१८॥

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई।
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥१९॥

उपर्युक्त पदार्थों को छद्मस्थ या सर्वज्ञ से सुनकर श्रद्धा करे, उसे 'उपदेश रुचि' सम्यक्त्व कहते हैं ॥१९॥

रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई नामं ॥२०॥

जिसके राग, द्वेष, मोह और अज्ञान दूर हो गये हैं, ऐसे महापुरुषों की आज्ञा से रुचि हो, वह 'आज्ञा रुचि है।

जो सुत्तमहिज्जंतो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।
अंगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरुई त्ति नायव्वो ॥२१॥

जो अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य सूत्रों को पढ़कर सम्यक्त्व पाता है, उसे 'सूत्र रुचि' कहते हैं ॥२१॥

एगेण अणेगाइं, पयाइं जो पसरई उ सम्मत्तं ।
उदए व्व तेल्लबिंदू, सो बीयरुइ त्ति नायव्वो ॥२२॥

पानी में डाले हुए तेल की बूंद की तरह, जो एक पद से अनेक पदों में फैलता है, उसे 'बीज-रुचि सम्यक्त्व कहते हैं ।

सो होइ अभिगमरुई, सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं ।
एक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥२३॥

जिसने ग्यारह अंग, दृष्टिवाद और प्रकीर्ण आदि श्रुत को अर्थ सहित पढ़कर सम्यक्त्व पाई, वह 'अभिगम-रुचि' है ।

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा ।
सव्वाहिं नयविहीहिं, वित्थाररुइ त्ति नायव्वो ॥२४॥

जिसने द्रव्यों के सभी भावों का सभी नयों और प्रमाणों से जानकर श्रद्धा की, उसे विस्तार-रुचि सम्यक्त्व कहते हैं।

दंसणनाणचरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु ।
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥२५॥

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति और गुप्तिरूप क्रिया से हा सद् पदार्थों में जिसकी रुचि होती है, वह क्रिया-रुचि है ॥२५॥

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

अणभिग्गहियकुदिट्ठी, संखेवरुइ त्ति होइ नायव्वो।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥२६॥

जिसने मिथ्या-मत को ग्रहण नहीं किया और न अन्य मतों में उसकी श्रद्धा है। इधर वह जिन प्रवचन में भी विशारद नहीं है, उसे 'संक्षेप रुचि' कहते हैं ॥२६॥

जो अत्थिकाय-धम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च।
सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो ॥२७॥

जो जिन प्ररूपित अस्तिकाय धर्म, श्रुत धर्म और चारित्र धर्म में श्रद्धा रखता है, उसे धर्म रुचि कहते हैं ॥२७॥

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि।
वावन्नकुदंसणवज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥२८॥

परमार्थ का विशेष परिचय करना, जिन्होंने परमार्थ को देखा है, उनकी सेवा करना, पतित और कुदर्शनी से दूर रहना,—यह सम्यक्त्व की श्रद्धा है ॥२८॥

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं।
सम्मत्तचरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥२९॥

सम्यक्त्व के बिना चारित्र नहीं होता। दर्शन में चारित्र की भजना है। सम्यक्त्व और चारित्र साथ हो, तो भी उसमें सम्यक्त्व पहले होती है ॥२९॥

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥३०॥

दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना चारित्र रूप गुण प्राप्त नहीं होता। चारित्र गुण से रहित जीव की मुक्ति नहीं होती और बिना मुक्ति के निर्वाण नहीं होता।

निस्संकिय-निक्कंखिय-निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्लपभावणे अट्ठ ॥३१॥

निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपबृंहणा, स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना—ये सम्यक्त्व के आठ अंग हैं ॥३१॥

सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ॥३२॥

पहला सामायिक चारित्र, दूसरा छेदोपस्थापनीय, तीसरा परिहारविशुद्ध और चौथा सूक्ष्मसंपराय चारित्र है।

अकसायमहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा।
एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं ॥३३॥

कषाय से रहित चारित्र, 'यथाख्यात' कहलाता है। यह छद्मस्थ और केवली के होता है। ये पांचों चारित्र, कर्मों को हटाने वाले हैं। ऐसा भगवान् ने कहा है ॥३३॥

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भंतरो तवो ॥३४॥

तप के बाह्य और आभ्यन्तर ऐसे दो भेद हैं। बाह्य तप छः प्रकार का है और आभ्यन्तर तप भी छः प्रकार का है।

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति विवेक ।

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥३५॥

ज्ञान से पदार्थों को जाना जाता है। दर्शन से श्रद्धा होती है। चारित्र से कर्माश्रव की रोक होती है और तप से शुद्धि होती है ॥३५॥

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥३६॥

जो महर्षि हैं, वे संयम और तप से पूर्व कर्मों का क्षय करके समस्त दुःखों से रहित होकर मोक्ष पाने का प्रयत्न करते हैं ॥३६॥

॥–॥ अठ्ठाइसवां अध्ययन समाप्त ॥–॥

सम्मत्तपरक्कमं

एगूणतीसइमं अज्झयणं

–: २९ :–

सुयं मे आउसं ! तेण भगवया एवमक्खायं–इह खलु सम्मत्तपरक्कमे नाम अज्झयणे समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए, जं सम्मं सद्दहित्ता पत्तइत्ता रोयइत्ता फासित्ता पालइत्ता तीरित्ता कित्तइत्ता सोहइत्ता आराहित्ता

आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ॥१॥

हे शिष्य ! मैंने भगवान् का उपदेश सुना है । उन काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने सम्यक्त्व पराक्रम' नाम का अध्ययन कहा है ।'जिस पर सम्यक् प्रकार से श्रद्धा करके, रुचि और प्रतीति करके, तदनुसार स्पर्श एवं पालन करके, उसका अन्त तक निर्वाह करते हुए प्रशंसा सहित शुद्धि करके और आज्ञा का निरन्तर पालन करके आराधना करने से बहुत से जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध (सर्वज्ञ) होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं, और समस्त दुःखों का अन्त कर देते हैं ॥१॥

तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ, तं जहा-संवेगे निव्वेए धम्मसद्धा गुरुसाहम्मियसुस्सूसणाया आलोयणाया निंदणाया गरहणाया सामाइए चउवीसत्थए वंदणे पडिक्कमणे काउस्सग्गे पच्चक्खाणे थवथुईमंगले कालपडिलेहणाया पायच्छित्तकरणे खमावणाया सज्झाए वायणाया पडिपुच्छणाया पडियट्टणाया अणुप्पेहा धम्मकहा सुयस्स आराहणाया एगग्गमणसंनिवेसणाया संजमे तवे वोदाणे सुहसाए अप्पडिबद्धया विवित्तसयणासणसेवणाया विणियट्टणाया संभोगपच्चक्खाणे उवहिपच्चक्खाणे आहारपच्चक्खाणे कसायपच्चक्खाणे जोगपच्चक्खाणे सरीरपच्चक्खाणे सहायपच्चक्खाणे भत्तपच्चक्खाणे

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति विवेक।

सब्भावपच्चक्खाणे पडिरूवणया वेयावच्चे सव्वगुणसंपण्णया वीयरागया खंती मुत्ती मद्दवे अज्जवे भावसच्चे करणसच्चे जोगसच्चे मणगुत्तया वयगुत्तया कायगुत्तया मणसमाधारणया वयसमाधारणया कायसमाधारणया नाणसंपन्नया दंसणसंपन्नया चरित्तसंपन्नया सोइंदियनिग्गहे चक्खिदियनिग्गहे घाणिंदियनिग्गहे जिब्भिदियनिग्गहे फासिंदियनिग्गहे कोहविजए माणविजए मायाविजए लोहविजए पेज्जदोसमिच्छादंसणविजए सेलेसी अकम्मया ॥२॥

सम्यक्त्व पराक्रम का अर्थ इस प्रकार कहा है—१संवेग २ निर्वेद ३ धर्म श्रद्धा ४ गुरु और साधार्मियों की सेवा ५ आलोचना ६ निन्दा ७ गर्हा ८ सामायिक ९ चतुर्विंशति स्तव १० वंदना ११ प्रतिक्रमण १२ कायोत्सर्ग १३ प्रत्याख्यान १४ स्तवस्तुति मंगल १५ काल प्रतिलेखना १६ प्रायश्चित्त १७ क्षमापना १८ स्वाध्याय १९ वाचना १० प्रतिपृच्छना, २१ परावर्त्तना २२ अनुप्रेक्षा २३ धर्म कथा २४ श्रुतआराधना २५ चित्त को एकाग्रता २६ संयम २७ तप २८ व्यवदान २९ संतोप ३० अप्रतिबद्धता ३१ एकान्त शयनाशन ३२ विनिवर्तना ३३ संभोग त्याग ३४ उपधि त्याग ३५ आहार त्याग ३६ कषाय त्याग ३७ योग त्याग ३८ शरीर त्याग ३९ सहाय त्याग ४० भक्त प्रत्याख्यान ४१ सद्भाव प्रत्याख्यान ४२ प्रतिरूपता ४३ वैयावृत्य ४४ सर्वगुण सम्पन्नता ४५ वीतरागता

४६ क्षमा ४७ निर्लोभता ४८ सरलता ४९ मृदुता ५० भाव सत्य ५१ करण सत्य ५२ योग सत्य ५३ मनगुप्ति ५४ वचन गुप्ति ५५ काय गुप्ति ५६ मन समाधारणा ५७ वचन समा-धारणा ५८ काय समाधारणा ५९ ज्ञान सम्पन्नता ६० दर्शन सम्पन्नता ६१ चारित्र सम्पन्नता ६२ श्रोतेन्द्रिय निग्रह ६३ चक्षु-इन्द्रिय निग्रह ६४ घ्राणेन्द्रिय निग्रह ६५ रसेन्द्रिय निग्रह ६६ स्पर्शेन्द्रिय निग्रह ६७ क्रोध विजय ६८ मान विजय ६९ माया विजय ७० लोभ विजय ७१ राग द्वेष और मिथ्या दर्शन विजय ७२ शैलेशी ७३ अकर्मता ॥२॥

संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ, अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ, अणंताणुबंधिकोहमाणमायालोभे खवेइ, नवं कम्मं न बंधइ, तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ, दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ । सोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥१॥

हे भगवन् ! संवेग से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है ? उत्तर-संवेग से उत्तम धर्म श्रद्धा जागृत होती है। धर्म की उत्कृष्ट श्रद्धा करने से संवेग (मोक्ष की अभिलाषा) की शीघ्र प्राप्ति होती है। अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय होता है। नये कर्मों का वन्धन नहीं होता।

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

इससे मिथ्यात्व की विशुद्धि करके दर्शन की आराधना होती है। दर्शन विशुद्धि से शुद्ध होने पर कोई तो उसी भव मे सिद्ध हो जाते हैं और जो उस भव में सिद्ध नहीं होते वे तीसरे भव का अतिक्रमण नही करते अर्थात् तीसरे भव में सिद्ध हो जाते हैं।

निव्वेएणं भंते! जीवे किं जणयइ? निव्वेएणं दिव्वमाणुसतेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ सव्वविसएसु विरज्जइ, सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरंभपरिग्गहपरिच्चायं करेइ, आरंभपरिग्गहपरिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ, सिद्धिमग्गं पडिवन्ने य हवइ ॥२॥

हे भगवन्! निर्वेद (संसार से विरक्ति) का क्या फल है? निर्वेद से देव, मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी काम भोगों से और अन्य सभी विषयों से विरक्त हो जाता है। फिर आरम्भ परिग्रह का त्याग करके संसार मार्ग को छोड़कर मोक्ष मार्ग को ग्रहण करता है ॥२॥

धम्मसद्धाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? धम्मसद्धाए णं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ, आगारधम्मं च णं चयइ, अणगारिए णं जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खाणं छेयणभेयणसंजोगाईणं वोच्छेयं करेइ, अव्वाबाहं च णं सुहं निव्वत्तेइ ।३।

हे भगवन्! धर्म श्रद्धा से जीव क्या फल पाता है? उत्तर–धर्म श्रद्धा से सातावेदनीय कर्मजनित सुख से विरक्त हो जाता है। फिर गृहस्थाश्रम छोड़कर अनगार हो जाता है।

अनगार होकर शारीरिक और मानसिक छेदन भेदनादि संयोग जन्य दुःखों का विच्छेद कर शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ? गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाए णं विणयपडिवत्तिं जणयइ, विणयपडिवन्ने य णं जीवे अणच्चासायणासीले नेरइय-तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवदुग्गईओ निरुंभइ, वण्णसंजलण-भत्तिबहुमाणयाए मणुस्सदेवगईओ निबंधइ, सिद्धिं सोग्गइं च विसोहेइ, पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सव्वकज्जाइं साहेइ, अन्ने य बहवे जीवे विणइत्ता भवइ ॥४॥

हे भगवन् ! गुरु एवं सावर्मीजनों की सेवा करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है ? उत्तर-गु० सा० सेवा से विनय गुण की प्राप्ति होती है। विनय से अनाशातनाशील सत्कार करता हुआ जीव, नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव सम्बन्धि दुर्गति को रोक देता है, और श्लाघा-प्रशंसा, भक्ति बहुमान पाता हुआ, मनुष्य और देव सम्बन्धी सुगति बांधता है और सिद्ध गति की विशुद्धि करता है और विनय मूल सभी प्रशस्त कार्यों को साध लेता है, साथ ही अन्य अनेक जीवों को विनय धर्म में जोड़ता है ॥४॥

आलोयणाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? आलोयणाए णं मायानियाणमिच्छादंसणसल्लाणं मोक्खमग्गविग्घाणं अणंतसंसारवद्धणाणं उद्धरणं करेइ, उज्जुभावं च जणयइ,

उज्जुभावपडिवन्ने य णं जीवे अमाई इत्थीवेयनपुंसगवेयं च न बंधइ, पुव्वबद्धं च णं निज्जरेइ ॥५॥

हे भगवन्! आलोचना से जीव क्या फल पाता है? उत्तर—आलोचना से मोक्ष मार्ग विघातक, अनन्त संसार वर्धक ऐसे माया, निदान, मिथ्या दर्शन शल्य को दूर करता है और ऋजु भाव को प्राप्त करता है। ऋजु भाव से माया रहित होता हुआ स्त्री वेद और नपुंसक वेद का बन्ध नहीं करता, पूर्व बन्ध की निर्जरा कर देता है ॥५

निंदणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? निंदणयाए णं पच्छाणुतावं जणयइ, पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुणसेढिं पडिवज्जइ, करणगुणसेढीपडिवन्ने य णं अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ ॥६॥

हे भगवन्! आत्म निन्दा से जीव क्या पाता है? आत्म निन्दा से पश्चात्ताप होता है। पश्चात्ताप से वैराग्यवन्त होकर क्षपक श्रेणी प्राप्त करता है। क्षपक श्रेणी पानेवाला अनगार, मोहनीय कर्म का नाश करता है ॥६॥

गरहणयाए णं! भंते जीवे किं जणयइ? गरहणयाए अपुरक्कारं जणयइ, अपुरक्कारगए णं जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ, पसत्थे य पडिवज्जइ, पसत्थजोगपडिवन्ने य णं अणगारे अणंतघाइपज्जवे खवेइ ॥७॥

हे भगवन् ! गर्हा से जीव क्या फल पाता है ? गर्हा से आत्म नम्रता पाता है । आत्म नम्रता से अप्रशस्त योगों से निवृत्त होकर प्रशस्त योगों को प्राप्त करता है । प्रशस्त योग पाकर अनगार अनन्त घाती पर्यायों का क्षय कर देता है ॥७॥

सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सामाइएणं सावज्ज जोगविरइं जणयइ ॥८॥

हे भगवन् ! सामायिक से जीव क्या पाता है ? सामायिक से सावद्य योगों की निवृत्ति होती है ॥८॥

चउव्वीसत्थएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चउव्वीसत्थ-एणं दंसणविसोहिं जणयइ ॥९॥

हे भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव करने से क्या फल होता है ? चतुर्विंशतिस्तव से दर्शन विशुद्धि होती है ॥९॥

वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं कम्मं निबंधइ, सोहग्गं च णं अपडि-हयं आणाफलं निव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ ॥१०॥

हे भगवन् ! वन्दना करने से क्या फल पाता है ? वन्दना से नीच गोत्र कर्म का क्षय होकर ऊँच गोत्र कर्म बँधता है । अविच्छिन्न सौभाग्य तथा आज्ञाफल (हुकूमत) प्राप्त करता है और विश्ववल्लभ होता है ॥१०॥

पडिक्कमणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिक्कमणेणं वय-

छिद्दाणि पिहेइ, पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे असबल-चरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहुत्ते सुप्पणिहिए विहरइ ॥११॥

हे भ० ! प्रतिक्रमण करने से जीव को क्या फल मिलता ह ? प्र० से व्रत में हुए छिद्रों को ढंकता है । फिर शुद्ध व्रतधारी होकर आश्रवों को रोकता है । आठ प्रवचन माता में सावधान होता है । शुद्ध चारित्र पालता हुआ समाधि पूर्वक संयम में विचरता है ॥११॥

काउस्सग्गेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? काउस्सग्गेणं तीयपडुप्पन्नपायच्छित्तं विसोहेइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुयहियए ओहरियभरो व्व भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहं सुहेणं विहरइ ॥१२॥

हे भ० ! कायोत्सर्ग का क्या फल है ? कायोत्सर्ग से भूत और वर्त्तमान काल के अतिचारों की शुद्धि होती है । इस शुद्धि से बोझ रहित-हल्का, निश्चिन्त और प्रशस्त ध्यान युक्त होकर सुख पूर्वक विचरता है ॥१२॥

पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुंभइ, पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ, इच्छानिरोहं गए य णं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीइ-भूए विहरइ ॥१३॥

हे भ० ! प्रत्याख्यान से जीव क्या पाता है ? प्र० से

आश्रवद्वारों को बन्द कर देता है, इच्छा का निरोध होता है। इच्छानिरोध होने से जीव, सभी द्रव्यों में तृष्णा रहित होकर शान्ति से विचरता है ॥१३॥

थवथुइमंगलेणं भंते! जीवे किं जणयइ? थवथुइमंगलेणं नाणदंसणचरित्तबोहिलाभं जणयइ, नाणदंसणचरित्तबोहिलाभसंपन्ने य णं जीवे अंतकिरियं कप्पविमाणोववत्तियं आराहणं आराहेइ ॥१४॥

हे भगवन्! स्तव-स्तुति-मंगल करने से क्या फल मिलता है? स्त० से ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप बोधिलाभ पाता है। ऐसा बोधि-लब्ध जीव, या तो मोक्ष पाता है, या कल्प विमान में उत्पन्न होकर आराधक होता है ॥१४॥

कालपडिलेहणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? कालपडिलेहणयाए नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥१५॥

हे भ०! काल की प्रतिलेखना से जीव क्या प्राप्त करता है? का० से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है।

पायच्छित्तकरणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? पायच्छित्तकरणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ, निरइयारे यावि भवइ, सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ, आयारं च आयारफलं च आराहेइ ॥१६॥

हे भ०! प्रायश्चित्त करने से क्या फल होता है?

तुलसी-काव्य-मीमांसा

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

प्रा० से पाप कर्म की विशुद्धि होती है। निर्दोषरूप से व्रत पलते हैं। सम्यक् प्रकार से प्रायश्चित्त करने से ज्ञान दर्शन और चारित्र मार्ग तथा इनके फल की विशुद्धि होकर सम्यक् आराधना होती है ॥१६॥

खमावणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ, पल्हायणभावमुवगए य सव्व-पाण भूयजीवसत्तेसु मित्तीभावमुप्पाएइ मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काऊण निब्भए भवइ ॥१७॥

हे भ० ! क्षमापना से क्या फल मिलता है? क्षमापना से चित्त की प्रसन्नता होती है। फिर प्राणी मात्र से मैत्री भाव करके भाव विशुद्धि करता हुआ जीव, निर्भय हो जाता है।

सज्झाएणं भंते! जीवे किं जणयइ? सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥१८॥

हे भ० ! स्वाध्याय का क्या फल है? स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है ॥१८॥

वायणाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? वायणाए णं निज्जरं जणयइ, सुयस्स य अणुसज्जणाए अणासायणाए वट्टइ, सुयस्स अणुसज्जणाए अणासायणाए वट्टमाणे तित्थ-धम्मं अवलंबइ, तित्थधम्मं अवलंबमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ॥१९॥

हे भ० ! वाचना से किस गुण की प्राप्ति होती है ? वाचना से निर्जरा होती है। अनुवर्त्तना होने से श्रुत की आशातना नहीं होती। श्रुतकी आशातना नहीं करने से तीर्थ धर्म का अवलम्बन होता है और महान् निर्जरा होकर कर्मो का अन्त हो जाता है ॥१६॥

पडिपुच्छणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? पडिपुच्छणयाएणं सुत्तत्थतदुभयाइं विसोहेइ। कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिंदइ ॥२०॥

हे भ० ! प्रतिपृच्छना का क्या फल है ? प्र० से सूत्र अर्थ और दोनों की विशुद्धि होती है और कांक्षामोहनीय कर्म नष्ट हो जाता है ॥२०॥

परियट्टणाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? परियट्टणाए णं वंजणाइं जणयइ, वंजणलद्धिं च उप्पाएइ ॥२१॥

हे भ० ! पुनरावर्तन करने से क्या लाभ होता है ? पुनरावर्तन से व्यञ्जन लब्धि प्राप्त होती है ॥२१॥

अणुप्पेहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ? अणुप्पेहाए णं आउयवज्जाओ सत्तकम्मपयडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ, दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ, तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ, आउयं च णं

कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधई। असायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणइ, अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं खिप्पामेव वीईवयइ॥२२॥

हे भ० ! अनुप्रेक्षा का क्या फल है ? अनुप्रेक्षा से आयु को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृति के दृढ़ बन्धनों को शिथिल करता है। लम्बे समय की स्थितिवाले सातों कर्मों को थोड़े समय की स्थितिवाले बना देता है। तीव्र रसवालों को मन्द रसवाले कर देता है। बहुत प्रदेशोंवाली प्रकृतियों को अल्प प्रदेशवाली बना देता है। आयुकर्म का बंध कदाचित् होता है और नहीं भी होता है। असातावेदनीय कर्म बार बार नहीं बन्धता तथा अनादि अनन्त और दीर्घ मार्गवाले चतुर्गति रूप संसार अटवी को शीघ्र ही पार कर जाता है॥

धम्मकहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? धम्मकहाए णं निज्जरं जणयइ, धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ, पवयणपभावेणं जीवे आगमेसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ॥२३॥

हे भ० ! धर्मकथा कहने से कौनसा फल होता है ? धर्म कथा से कर्मों की निर्जरा और प्रवचन की प्रभावना होती है। प्रवचन प्रभावना से जीव, भविष्य में शुभ कर्मों का बन्ध करता है॥२३॥

सुयस्स आराहणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुयस्स आराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ, न य संकिलिस्सइ॥

हे भगवन् ! श्रुत की आराधना से क्या फल होता है ? श्रुतआराधना से अज्ञान का क्षय होता है। फिर उसे कभी क्लेश नहीं होता ॥२४॥

एगग्गमणसंनिवेसणयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? एगग्गमणसंनिवेसणयाए णं चित्तनिरोहं करेइ ॥२५॥

हे भगवन् ! मनकी एकाग्रता से कौनसा गुण होता है ? मनकी एकाग्रता से चित्त का निरोध होता है ॥२५

संजमेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ ॥२६॥

हे भ०! संयम से क्या लाभ होता है ? संयम से आस्रवों का निरोध होता है ॥२६॥

तवेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? तवेणं वोदाणं जणयइ ॥

हे भ० ! तप से क्या गुण होता है ? तप से पूर्व के बन्धे हुए कर्मो का क्षय होता है ॥२७॥

वोदाणेणं भंते जीवे किं जणयइ ? वोदाणेणं अकिरियं जणयइ, अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥२८॥

हे भ० ! व्यवदान (कर्मक्षय) से कौनसा गुण होता है ? व्यवदान से जीव अक्रिय होता है। अक्रिय होने के बाद सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर सभी दुखों का अन्त करता है ॥२८॥

सुहसाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ, अणुस्सुए णं जीवे अणुकंपए अणुब्भडे विगयसोगे चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ ॥२९॥

हे भ० ! वैषयिक सुखों को शान्त (त्याग) करने से क्या फल होता है ? उ०—निस्पृह हो जाता है। निस्पृही जीव, अनुकम्पा सहित, अभिमान तथा शृंगार से रहित होकर शोक रहित होता है और चारित्र मोहनीय कर्म को नष्ट कर देता है।

अप्पडिबद्धयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? अप्पडिबद्धयाए णं निस्संगत्तं जणयइ, निस्संगत्तेणं जीवे एगे एगग्गचित्ते दिया य राओ य असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावि विहरइ ॥३०॥

हे भ० ! अप्रतिबद्धता से क्या गुण होता है ? अप्रतिबद्धता से निःसंगता आती है। निःसंगता से एकाकीपन और चित्त की एकाग्रता होती है, और सदा अनासक्त रहता हुआ, सम्बन्ध रहित होकर विचरता है ॥३०॥

विवित्तसयणासणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? विवित्तसयणासणयाए णं चरित्तगुत्तिं जणयइ, चरित्तगुत्ते य णं जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते एगंतरए मोक्खभावपडिवन्ने अट्ठविहकम्मगंठिं निज्जरेइ ॥३१॥

हे भ० ! विविक्त शयनाशन—स्त्री आदि रहित स्थान

के सेवन से क्या लाभ होता है ? विवक्त शयनाशन से चारित्र गुप्ति होती है। चारित्र गुप्त जीव, विकृति रहित आहार करने वाला, दृढ़ चारित्रवान् एकान्त सेवी और मोक्ष भाव को पाकर आठों कर्मों की गांठ को तोड़ देता है ॥३१॥

विनियट्टणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? विनियट्टणयाएणं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुट्ठेइ, पुव्वबद्धाण य निज्जरणयाए पावं नियत्तेइ, तओ पच्छा चाउरंतं संसारकंतारं वीइवयइ ॥३२॥

हे भ० ! विषयों की निवृत्ति से क्या गुण होता है ? विषयों की निवृत्ति से जीव, पाप कर्मों की निवृत्ति करने में तत्पर होता है। पूर्व के बन्धे हुए पाप कर्मों की निर्जरा करता है। फिर चार गति रूप संसार अटवी को पार कर जाता है।

संभोगपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संभोगपच्चक्खाणेणं आलंबणाइं खवेइ, निरालंबणस्स य आयट्ठिया जोगा भवंति। सएणं लाभेणं संतुस्सइ, परलाभं नो आसाएइ, नो तक्केइ, नो पीहेइ, नो पत्थेइ, नो अभिलसइ, परस्सं लाभं अणासाएमाणे अतक्केमाणे अपीहेमाणे अपत्थेमाणे अणभिलसेमाणे दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥३३॥

हे भ० ! संभोग प्रत्याख्यान से क्या लाभ होता है ? संभोग प्रत्याख्यान से परावलम्बन छूट कर स्वालम्बी बन

तुलसी-काव्य-मीमांसा

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिवेक ।

वन जाता है । निरावलम्बी जीव की योग प्रवृत्ति आत्म हितार्थ—मोक्ष के लिए ही होती है । वह अपने लाभ में ही संतुष्ट रहता है, पर के लाभ का आस्वाद नहीं करता, नहीं चाहता, पर से लाभ पाने का प्रयत्न भी नहीं करता । इस प्रकार पर से लाभ पाने की इच्छा त्याग कर दूसरी सुखशय्या प्राप्त करके विचरता है ॥३३॥

उवहिपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? उवहि-पच्चक्खाणेणं अपलिमंथं जणयइ, निरुवहिए णं जीवे निकंखी उवहिमंतरेण य न संकिलिस्सइ ॥३४॥

हे भ० ! उपधि त्याग का क्या फल है ? उपधि त्याग से स्वाध्याय में निर्विघ्नता आती है । बाद में आकांक्षा रहित होकर क्लेश रहित हो जाता है ॥३४॥

आहारपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? आहार-पच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिंदइ, जीवियासंस-प्पओगे वोच्छिंदित्ता जीवे आहारमंतरेणं न संकिलिस्सइ ।

हे भ० ! आहार के त्याग से क्या गुण होता है ? आहार के त्याग से जीवन की आशा नष्ट हो जाती है, इससे आहार के बिना भी उसे क्लेश नहीं होता ॥३५॥

कसायपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कसाय-पच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ, वीयरागभावपडिवन्ने वि य णं जीवे समसुहदुक्खे भवइ ॥३६॥

हे भ० ! कषायों के त्याग से क्या फल होता है ? कषायों के त्याग से वीतराग भाव की प्राप्ति होती है । वीतरागी के सुख और दुःख दोनों एक समान होते हैं ॥३६॥

जोगपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? जोगपच्चक्खाणेणं अजोगयं जणयइ, अजोगी णं जीवे नवं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥३७॥

हे भ० ! योगों के त्याग का क्या फल है ? योग त्याग से अयोगीपन प्राप्त होता है । अयोगी जीव, नये कर्मों का बंध नहीं करता और पूर्वबद्ध कर्मों को नष्ट कर देता है ॥३७॥

सरीरपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सरीरपच्चक्खाणेणं सिद्धाइसयगुणत्तणं निव्वत्तेइ, सिद्धाइसयगुणसंपन्ने य णं जीवे लोगग्गभावमुवगए परमसुही भवइ ॥३८॥

हे भ० ! शरीर के त्याग से क्या गुण होता है ? शरीर के त्याग से सिद्धों के अतिशय गुणों को प्राप्त करता है । इन गुणों को पाकर वह लोक के अग्रभाग में पहुँच कर परम सुखी हो जाता है । ३८॥

सहायपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सहायपच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ एगीभावभूए य णं जीवे एगग्गं भावेमाणे अप्पसद्दे, अप्पझंझे, अप्पकलहे, अप्पकसाए, अप्पतुमंतुमे, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिए यावि भवइ ॥३९॥

तुलसी-काव्य-मीमांसा

...ति संयम हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक।

हे भ० ! सहायता का त्याग करने से जीव को क्या फल होता है? सहायता के त्याग से एकत्व भाव को प्राप्त होता है। एकाकी भाव वाला जीव, अल्प शब्द वाला, अल्प झंझट वाला होकर बहुत ही संयम, संवर समाधि वाला होता है ॥३९॥

भत्तपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? भत्तपच्चक्खाणेणं अणेगाइं भवसयाइं निरुंभइ ॥४०॥

हे भ० ! भक्त प्रत्याख्यान (आहार त्याग) का क्या फल है ? भक्त० सैकड़ों भवों का निरोध करता है ॥४०॥

सब्भावपच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सब्भावपच्चक्खाणेणं अणियट्टिं जणयइ। अनियट्टिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ, तंजहा–वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोयं। तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥४१॥

हे भगवन् ! सद्भाव प्रत्याख्यान से क्या गुण होता है ? सद्भाव प्रत्याख्यान से अनिवृत्तिकरण (शुक्ल ध्यान के चौथे भेद को) पाता है. फिर वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार अघातिकर्मों का नाश करता है। इसके बाद सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर सभी दुःखों का अन्त कर देता है ॥४१॥

पडिरूवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ। लघुभूए णं जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्वपाणभूयजीव-

सत्तेसु वीससणिज्जरूवे अप्पडिलेहे जिइंदिए विउलतवसमि-
इसमन्नागए यावि भवइ ॥४२॥

हेभ०! प्रतिरूपता से क्या लाभ होता है? प्रतिरूपता से लघुता आती है और प्रकट तथा प्रशस्त लिंग वाला होकर सम्यक्त्व को विशुद्ध करता है। सत्ववंत समितिवंत होकर समस्त प्राणियों का विश्वासी होता है। वह अल्प प्रतिलेखना वाला, जितेन्द्रिय, विपुल तप तथा समिति करके युक्त होता है।

वेयावच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? वेयावच्चेणं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं निबंधइ ॥४३॥

हे भ०! वैयावृत्य करने से जीव को क्या लाभ होता है? वैयावृत्य करने से तीर्थङ्कर नाम कर्म का बन्ध होता है।

सव्वगुणसंपण्णयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? सव्वगुणसंपण्णयाए णं अपुणरावित्तिं जणयइ। अपुणरावित्तिं पत्तए णं जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खाणं नो भागी भवइ।

हे भ०! सर्व गुण सम्पन्नता का क्या फल है? सर्व गुण सम्पन्नता से पुनरागमन नहीं होता और वह शारीरिक और मानसिक दुःखों से मुक्त हो जाता है ॥४४॥

वीयरागयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? वीयरागयाए णं नेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य वुच्छिंदइ, मणुण्णामणुण्णेसु सद्दरूवरसफरिसगंधेसु सचित्ताचित्तमीसएसु चेव विरज्जइ ॥४५॥

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

हे भ० ! वीतरागता से किस गुण की प्राप्ति होती है ? वी० से स्नेहानुबन्ध और तृष्णा के अनुबन्ध को काट देता है। फिर प्रिय अथवा अप्रिय शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श तथा सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों से विरक्त हो जाता है।

खंतीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? खंतीए णं परीसहे जिणेइ ॥४६॥

हे भ० ! क्षमा करने से जीव को क्या फल मिलता है ? क्षमा से परीषहों को जीतता है ॥४६॥

मुत्तीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ, अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं पुरिसाणं अपत्थणिज्जे भवइ ॥४७॥

हे भ० ! निर्लोभता से क्या गुण होता है ? निर्लोभता से अकिंचनता आती है। अकिंचन मनुष्य से धन के लोभी लोग दूर हो जाते हैं ॥४७॥

अज्जवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? अज्जवयाए णं काउज्जुययं भावुज्जुययं भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ, अविसंवायणसंपन्नयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ।

हे भ० ! आर्जवता (सरलता) से जीव क्या प्राप्त करता है ? आर्जवता से शरीर, वाणी और भावना से वह सरल हो जाता है। वह विसंवाद नहीं करता हुआ धर्म का आराधक होता है ॥४८॥

मद्दवयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? मद्दवयाए णं अणुस्सियत्तं जणयइ, अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउमद्दवसंपन्ने अट्ठ मयट्ठाणाइं निट्ठवेइ ॥४९॥

हे भ०! मार्दवता का क्या फल है? मार्दवता से उत्सुकता-चंचलता—से रहित होता है। वह कोमलता (मृदुता) पाकर आठों मद स्थानों को नष्ट कर देता है ॥४९॥

भावसच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? भावसच्चेणं भावविसोहिं जणयइ, भावविसोहिए वट्टमाणे जीवे अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ, अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोगधम्मस्स आराहए भवइ ॥५०॥

हे भ०! भाव-सत्य का क्या गुण है? भाव सत्य से भावों की शुद्धि होती है। शुद्ध भाववाला जीव, अरिहन्त प्रणीत धर्म की आराधना मे तत्पर होकर पारलौकिक धर्म का आराधक होता है। ॥५०॥

करणसच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ? करणसच्चेणं करणसत्तिं जणयइ, करणसच्चे वट्टमाणे जीवे जहावाई तहाकारी यावि भवइ ॥५१॥

हे भ०! कारणसत्य से जीव क्या पाता है? कारणसत्य से सद्प्रवृत्ति होती है। सद्प्रवृत्ति वाला जीव, जैसा कहता है, वैसा ही करनेवाला होता है ॥५१॥

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक ।

जोगसच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? जोगसच्चेणं जोगं विसोहेइ ॥५२॥

हे भ० ! योग सत्य से क्या फल होता है ? योग सत्य से योगों की विशुद्धि होती है ॥५२॥

मणगुत्तयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? मणगुत्तयाए णं एगग्गं जणयइ, एगग्गचित्तेणं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ ॥५३॥

हे भ० ! मनोगुप्ति से क्या फल मिलता है ? मनोगुप्ति से एकाग्रता होती है । एकाग्र चित्त वाला जीव, संयम का आराधक होता है ॥५३॥

वयगुत्तयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वयगुत्तयाए णं निव्विकारत्तं जणयइ, निव्विकारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोगसाहणजुत्ते यावि भवइ ॥५४॥

हे भ० ! वचन गुप्ति का क्या फल है ? वचन गुप्ति से निर्विकारिता आती है । निर्विकारी जीव, वचन गुप्त होने से आध्यात्मयोग साधने वाला होता है ॥५४॥

कायगुत्तयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कायगुत्तयाए णं संवरं जणयइ, संवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासवनिरोहं करेइ ॥५५॥

हे भ० ! कायगुप्ति से क्या गुण होता है । ? काय-

गुप्ति से संवर होता है। संवरवान् जीव, पापास्रवों का निरोध कर लेता है ॥५५॥

मणसमाहारणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? मणसमाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ, एगग्गं जणइत्ता नाणपज्जवे जणयइ, नाणपज्जवे जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ मिच्छत्तं च निज्जरेइ ॥५६॥

हे भ० ! मनसमाधारणा का क्या फल है? मनसमाधारणा से एकाग्रता और एकाग्रता से ज्ञान की पर्यायें प्रकट होती है। इससे सम्यक्त्व की शुद्धि और मिथ्यात्व की निर्जरा होती है।

वयसमाहारणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ ? वयसमाहारणयाएणं वयसाहारण दंसणपज्जवे विसोहेइ, वयसाहारण दंसणपज्जवे विसोहित्ता सुलहबोहियत्तं च निव्वत्तेइ, दुल्लहबोहियत्तं निज्जरेइ ॥५७॥

हे भ० ! वचनसमाधारणा से क्या गुण होता है ? वचनसमाधारणा से वचन योग्य दर्शन पर्यायों की शुद्धि होती है। फिर सुलभबोधि भाव प्राप्त कर, बोधि-दुर्लभता की निर्जरा कर देता है ॥५७॥

कायसमाहारणयाए णं भंते! जीवे किं जणयई ? कायसमाहारणयाए णं चरित्तपज्जवे विसोहेइ, चरित्तपज्जवे विसोहित्ता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ, अहक्खायचरित्तं विसो-

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक।

हित्ता चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥५८॥

—कायसमाधारणा से क्या फल होता है? कायसमाधारणा से चारित्र पर्यायों की शुद्धि होती है। इससे यथाख्यात चारित्र की विशुद्धि होती है। फिर चार घाति कर्मों का क्षय होता है, और सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर सभी दुःखों का अन्त हो जाता है ॥५८॥

नाणसंपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? नाणसंपन्नयाए णं जीवे सव्वभावाहिगमं जणयइ, नाणसंपन्ने णं जीवे चउरंते संसारकंतारे न विणस्सई—"जहा सूई ससुत्ता, पडियावि न विणस्सई। तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सई।" नाणविणयतवचरित्तजोगे संपाउणइ, ससमयपरसमयविसारए य असंघायणिज्जे भवइ ॥५९॥

—ज्ञान सम्पन्नता का क्या फल है? ज्ञान सम्पन्नता से सभी भावों का बोध होता है। जिस प्रकार धागे सहित सुई गुम नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञान सम्पन्न आत्मा का चार गति रूप संसार अटवी में विनाश नहीं होता, किन्तु विनय, तप और चारित्र योग को प्राप्त करता है और स्व समय, पर समय का विशारद होकर प्रामाणिक पुरुष हो जाता है ॥५९॥

दंसणसंपन्नयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? दंसणसंपन्नयाए णं भवमिच्छत्तछेयणं करेइ परं न विज्झायइ,

परं अविज्झाएमाणे अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥६०॥

—दर्शन सम्पन्नता का क्या फल है ? दर्शन सम्पन्नता से भव भ्रमण का हेतु ऐसे मिथ्यात्व का नाश कर देता है। उसका ज्ञान दीपक कभी नहीं बुझता। वह उत्कृष्ट ज्ञान दर्शन में आत्मा को जोड़ता हुआ समभाव युक्त विचरता है ॥६०॥

चरित्तसंपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चरित्त-संपन्नयाए णं सेलेसी भावं जणयइ, सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि कम्मंसे खवेइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वायइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥६१॥

—चारित्र सम्पन्नता का क्या फल है ? चारित्रसम्पन्नता से शैलेशी भाव प्राप्त होता है। शैलेशी भाववाले अनगार, चार अघातिक कर्म का क्षय करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर समस्त दुःखों का अन्त कर देते हैं ॥६१॥

सोइंदियनिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सोइंदिय-निग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु सद्देसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६२॥

—श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह का क्या फल है ? श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से प्रिय और अप्रिय शब्दों में राग द्वेष भाव—विकारी भावों का निग्रह हो जाता है। उस निमित्त से होने वाले कर्मों का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है ॥६२॥

तुलसी-काव्य-मीमांसा

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।
अनेक ॥[1]

चक्खिदियनिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? चक्खिंदियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रूवेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६३॥

—चक्षु इन्द्रिय के निग्रह से क्या गुण होता है ? चक्षु इन्द्रिय के निग्रह से प्रिय और अप्रिय रूपों में राग द्वेष नहीं होता और तज्जनित कर्म भी नहीं बंधते, पूर्व के बंधे हुए कर्म क्षय हो जाते है ॥६३॥

घाणिंदियनिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? घाणिंदियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु गंधेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६४॥

—घ्राणेन्द्रिय निग्रह का क्या फल है ? घ्रा० नि० मे सुगन्ध दुर्गन्ध में राग द्वेष नही रहता और वैसे कर्म भी नहीं बंधते तथा पहले के बंधे हुए कर्म होते हैं, वे क्षय हो जाते हैं।

जिब्भिदियनिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? जिब्भिंदियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं च णं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६५॥

—जिह्वेन्द्रिय निग्रह का क्या फल है ? जि० से अच्छे बुरे रसों में राग द्वेष का भाव नहीं होता, न वैसे कर्म बंधते हैं और जो पूर्वबद्ध कर्म होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं ॥६५॥

फासिंदियनिग्गहेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? फासिंदियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु फासेसु रागदोसनिग्गहं जण-

यइ, तप्पच्चइयं कम्मं न वंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६६॥

—स्पर्शेन्द्रिय निग्रह से क्या गुण होता है ? स्पर्शेन्द्रिय निग्रह से इच्छित अनिच्छित स्पर्शों से होनेवाले राग द्वेष का निरोध हो जाता है । निरोध हो जाने से वैसे कर्म नहीं बँधते, और पूर्वबद्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥६६॥

कोहविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? कोहविजएणं खंतिं जणयइ, कोहवेयणिज्जं कम्मं न वंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६७॥

—क्रोध के विजय का क्या फल है ? क्रोध से क्षमा गुण की प्राप्ति होती है; क्रोधजन्य कर्मो का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्म क्षय हो जाते हैं ॥६७॥

माणविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? माणविजएणं मद्दवं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं न वंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६८॥

—मान जीतने से क्या लाभ होता है ? मान जीतने से मृदुता आती है । मार्दव गुण सम्पन्न जीव, मान के द्वारा होने वाले कर्मो का बन्ध नहीं करता और बँधें हुए कर्मो को नष्ट कर देता है ॥६८॥

मायाविजएणं भंते जीवे ! किं जणयइ ? मायाविजएणं अज्जवं जणयइ, मायावेयणिज्जं कम्मं न वंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥६९॥

तुलसी-काव्य-मीमांसा

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक।

—माया विजय का क्या फल है? माया विजय से सरलता आती है, वैसे कर्म नहीं बन्धते और पूर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं।

लोभविजएणं भंते! जीवे किं जणयइ? लोभविजएणं संतोसं जणयइ, लोभवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥७०॥

—लोभ को जीत लेने से क्या लाभ होता है? लोभ को जीत लेने से सन्तोष लाभ होता है। और लोभ से होने वाले नूतन कर्मों का बन्ध न होकर पूर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं।

पिज्जदोसमिच्छादंसणविजएणं भंते! जीवे किं जणयइ? पिज्जदोसमिच्छादंसणविजएणं नाणदंसणचरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ, अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगंठिविमोयणयाए तप्पढमयाए जहाणुपुव्विं अट्ठावीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं नाणावरणिज्जं णवविहं दंसणावरणिज्जं पंचविहं अन्तरायं एए तिन्नि कम्मंसे जुगवं खवेइ, तओ पच्छा अणुत्तरं अणंतं कसिणं पडिपुण्णं निरावरणं वितिमिरं विसुद्धं लोगालोगप्पभावं केवलवरणाणदंसणं समुप्पाडेइ, जाव सजोगी हवइ ताव इरियावहियं कम्मं निबंधइ—सुहफरिसं दुसमयट्ठिइयं, तं जहा—पढमसमए बद्धं बिइयसमए वेइयं तइयसमए निज्जिण्णं, तं बद्धं पुट्ठं उदीरियं वेइयं निज्जिण्णं, सेयाले य अकम्मं यावि भवइ ॥७१॥

—प्रेम द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से क्या फल होता है ? प्रेम द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करने की तत्परता होती है। फिर आठ प्रकार के कर्मों की गांठ तोड़ने की शुरुआत होती है। उसमें पहले तो मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियों का क्षय होता है, फिर पाँच प्रकार के ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार के दर्शनावरणीय और पाँच प्रकार के अन्तराय कर्म, इन तीनों का एक साथ ही क्षय होता है। उसके बाद प्रधान, अनन्त, सम्पूर्ण, परिपूर्ण, आवरण रहित, विशुद्ध और लोकालोक प्रकाशक, प्रधान केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होता है। वे केवली भगवान् जबतक सयोगी होते हैं, तब तक ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। जो सुख रूप होकर दो समय की स्थितिवाली होती है। जैसे—प्रथम समय में बन्धती है, दूसरे समय में वेदी जाती है और तीसरे समय में क्षय हो जाती है। इस प्रकार बद्ध, स्पर्श, उदय और वेदित होकर क्षय होने पर कर्म से रहित हो जाते हैं।

अहाउयं पालइत्ता अंतोमुहुत्तद्धावसेसाए जोगनिरोहं करेमाणे सुहुमकिरियं अप्पडिवाइं सुक्कज्झाणं झायमाणे तप्पढमयाए मणजोगं निरुंभइ मणजोगं निरुंभित्ता वयजोगं निरुंभइ वयजोगं निरुंभित्ता कायजोगं निरुंभइ कायजोगं निरुंभित्ता आणापाणनिरोहं करेइ, आणापाणनिरोहं करित्ता, ईसिपंचहस्सक्खरुच्चारणद्धाए य णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अणियट्टिसुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं आउयं नामं

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक ।

गोत्तं च एए चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ ॥७२॥

फिर अवशेष रहे हुए आयुकर्म को भोगते हुए जब अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु शेष रह जाती है, तब योगों का निरोध करते हुए 'सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती' नाम के शुक्लध्यान के तीसरे पाद का ध्यान ध्याते हुए प्रथम मनोयोग का निरोध करते हैं । इसके बाद वचन काया और श्वासोच्छ्वास का निरोध करते हैं, इसके बाद पाँच ह्रस्वाक्षर के उच्चार करने जितने समय में वे अनगार 'समुच्छिन्नक्रियाअनिवृत्ति' नाम के शुक्लध्यान को ध्याते हुए, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, इन चार कर्मों को एक साथ क्षय कर देते हैं ॥७२॥

तओ ओरालिय तेय कम्माइं सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता उज्जुसेढिपत्ते अफुसमाणगई उड्ढं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ बुज्झइ जाव अंतं करेइ ॥७३॥

फिर औदारिक, तेजस और कार्मण शरीर को सर्वथा त्यागकर ऋजु श्रेणी को प्राप्त होता है और अव्याहत तथा अविग्रह एक समय की उर्ध्वगति से सिद्ध स्थान पाकर साकार ज्ञानोपयोग युक्त सिद्ध, बुद्ध, होकर समस्त दुःखों का अन्त कर देते हैं ॥७३॥

एए खलु सम्मत्तपरक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए पन्नविए परूविए दंसिए निदंसिए उवदंसिए ॥७४॥ त्ति बेमि ॥

इस प्रकार सम्यक्त्वपराक्रम अध्ययन का अर्थ, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रतिपादन किया, प्रज्ञापित निरूपित किया, दिखाया, उपदेश किया। ऐसा मैं कहता हूँ।७४।

॥:-:॥ उनतीसवां अध्ययन समाप्त ॥:-:॥

तवमग्गं तीसइमं अज्झयणं

-: ३० :-

जहा उ पावगं कम्मं, रागदोससमज्जियं।
खवेइ तवसा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण ॥१॥

हे शिष्य! राग द्वेष से उत्पन्न किये हुए पाप कर्मों को भिक्षु जिस तपस्या से क्षय करते हैं—उसे एकाग्र मन से सुनो।

पाणिवह-मुसावाया, अदत्त-मेहुण-परिग्हा विरओ।
राईभोयणविरओ, जीवो हवइ अणासवो ॥२॥

हिंसा, मृषा, अदत्त, मैथुन, परिग्रह और रात्रि-भोजन से विरत होने पर जीव अनाश्रवी होता है ॥२॥

पंचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइंदिओ।
अगारवो य निस्सल्लो, जीवो हवइ अणासवो ॥३॥

जो जीव पांचसमिति एवं तीनगुप्ति से युक्त, कषाय रहित, और जितेन्द्रिय होकर गर्व तथा शल्य से रहित होता है वह निराश्रवी हो जाता है ॥३॥

एएसिं तु विवच्चासे, रागदोससमज्जियं।
खवेइ उ जहा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण ॥४॥

उपरोक्त गुणों के विपरीत, राग द्वेष करके उपार्जित किये हुए पाप कर्म के क्षय करने की विधि मुझसे एकाग्र मन से सुनो।

जहा महातलागस्स, सन्निरुद्धे जलागमे।
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥५॥

एवं तु संजयस्सावि, पावकम्मनिरासवे।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा णिज्जरिज्जई ॥६॥

जिस प्रकार बड़े भारी तालाब में पानी आने के मार्ग को रोक कर, उसका जल उलीचने तथा सूर्य के ताप से क्रमशः सुखाया जाता है, उसी प्रकार संयमी पुरुष नवीन पाप कर्मों को रोक कर करोड़ों भवों के संचित कर्मों को तपस्या के द्वारा क्षय कर देते हैं ॥४–५॥

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भिंतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भिंतरो तवो ॥७॥

वह तप बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है। बाह्य तप छः प्रकार का है और आभ्यन्तर के भी छः भेद हैं

अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो संलीणया, य बज्झो तवो होइ ॥८॥

अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रस परित्याग कायक्लेश, और संलीनता, ये बाह्य तप के भेद हैं ॥८॥

इत्तरिय मरणकाला य, अणसणा दुविहा भवे।
इत्तरिया सावकंखा, निरवकंखा उ बिइज्जिया ॥९॥

अनशन के इत्वरिक (थोड़े समय का) और मृत्यु पर्यन्त ऐसे दो भेद हैं। इत्वरिक आकांक्षा सहित और मृत्यु पर्यन्त का आकांक्षा रहित है ॥९॥

जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छव्विहो।
सेढितवो पयरतवो, घणो य तह होइ वग्गो य ॥१०॥

तत्तो य वग्गवग्गो य, पंचमो छट्ठओ पइण्णतवो।
मणइच्छियचित्तत्थो, नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥११॥

इत्वरिक तप भी संक्षेप से छः प्रकार का है– १ श्रेणी तप २ प्रतरतप, ३ घनतप, ४ वर्गतप, ५ वर्गवर्गतप और ६ प्रकीर्णतप। इस तरह नाना प्रकार के मनोवाञ्छित फल देने वाला इत्वरिकतप होता है ॥१०–११॥

जा सा अणसणा मरणे, दुविहा सा वियाहिया।
सवियारमवियारा, कायचिट्ठं पई भवे ॥१२॥

मरणकाल पर्यन्त अनशन तप के भी सविचार (कायचेष्ठा सहित) और अविचार (कायचेष्ठा रहित) ऐसे दो भेद हैं ॥१२॥

अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया।
नीहारिमणीहारी, आहारच्छेओ य दोसु वि ॥१३॥

अथवा सपरिकर्म और अपरिकर्म तथा नीहारी और

आचार्यादि दस की यथा शक्ति वैयावृत्य करना 'वैयावृत्य' तप कहाता है ॥३३॥

वायणा पुच्छणा चेव, तहेव परियट्टणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ पंचहा भवे ॥३४॥

वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा ये 'स्वाध्याय' तप के पाँच भेद हैं ॥३४॥

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, झाइज्जा सुसमाहिए ।
धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु बुहा वए ॥३५॥

आर्त्त और रुद्रध्यान को छोड़कर समाधि सहित धर्म और शुक्लध्यान करे, उसे बुद्धिमानों ने 'ध्यान तप' कहा है।

सयणासण ठाणे वा, जे उ भिक्खू ण वावरे ।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥३६॥

सोते, बैठते या उठते समय जो भिक्षु, काया के व्यापारों को त्याग देता है, उसे 'कायोत्सर्ग' तप कहते हैं।

एवं तवं तु दुविहं, जे सम्मं आयरे मुणी ।
सो खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिओ ।३७।त्ति बेमि।

इस प्रकार दोनों तरह के तप का जो मुनि सम्यक् प्रकार से आचरण करते हैं, वे पण्डित शीघ्र ही संसार के समस्त बन्धनों से छूटजाते हैं ॥३७॥

—तीसवां अध्ययन समाप्त—

चरणविही एगतीसइमं अज्झयणं

-:३१:-

चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं ।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिन्ना संसारसागरं ॥१॥

जीवों को सुख देनेवाली चारित्र विधि कहता हूँ, जिसके आचरण से बहुत से जीव संसार सागर से तिर गये ।

एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥२॥

असंयमरूप एक स्थान से निवृत्ति करके संयमरूप एक स्थान में प्रवृत्ति करे ॥२॥

रागदोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे ।
जे भिक्खू रुंभइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥३॥

राग और द्वेष ये दो पाप ही पापकर्म का प्रवर्त्तन करते हैं। जो भिक्षु इनका संतत निरोध करता है, वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता ॥३॥

दंडाणं गारवाणं च, सल्लाणं च तियं तियं ।
जे भिक्खू चयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥४॥

जो भिक्षु तीन दण्ड, तीन गर्व और तीन शल्य को सदा के लिए त्याग देता है, वह संसार भ्रमण नहीं करता ॥४॥

दव्वे खेत्ते काले, भावम्मि य आहिया उ जे भावा।
एएहिं ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥२४॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से चारों प्रकार के नियम सहित जो साधु विचरता है, उसे 'पर्यवचर भिक्षु' कहते हैं।

अट्ठविह गोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा।
अभिग्गहा य जे अन्ने, भिक्खायरियमाहिया ॥२५॥

आठ प्रकार की गोचरी, सात प्रकार की एषणा और अन्य अभिग्रह को 'भिक्षाचरी तप' कहते हैं ॥२५॥

खीरदहिसप्पिमाई, पणीयं पाणभोयणं।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ॥२६॥

दूध, दही, घृत और पक्वान्न तथा रसयुक्त आहार के त्याग को 'रस परित्याग' तप कहते हैं ॥२६॥

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।
उग्गा जहा धरिज्जंति, कायकिलेसं तमाहियं ॥२७॥

वीरासनादि उग्र आसनों द्वारा कायस्थिति के भेद को धारण करना 'कायक्लेश' तप है ॥२७॥

एगंतमणावाए, इत्थीपसुविवज्जिए।
सयणासणसेवणया, विवित्तं सयणासणं ॥२८॥

एकान्त—जहां कोई आता जाता नहीं हो और स्त्री पशु करके रहित हो, ऐसे स्थान में शयनासन करना 'विविक्त शयनासन' तप है ॥२८॥

एसो बाहिरंग तवो, समासेण वियाहिओ ।
अब्भिंतरं तवो इत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥२६॥

इस प्रकार बाह्य तप का संक्षेप में वर्णन किया । अब आभ्यन्तर तप का क्रमशः वर्णन करूँगा ॥२६॥

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भिंतरो तवो ॥३०॥

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान तथा कायोत्सर्ग, ये छः भेद आभ्यन्तर तप के हैं ॥३०॥

आलोयणारिहाईयं, पायच्छित्तं तु दसविहं ।
जे भिक्खू वहई सम्मं, पायच्छित्तं तमाहियं ॥३१॥

आलोचना आदि दस प्रकार का प्रायश्चित्त है। जिसका सम्यक् प्रकार से आचरण करनेवाले भिक्षुक को 'प्रायश्चित्त' तप होता है ॥३१॥

अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं, तहेवासणदायणं ।
गुरुभत्ति भावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ॥३२॥

खड़ा होकर गुरुजनों को सन्मान देना, हाथ जोड़ना, आसन देना, गुरु भक्ति करना और भाव पूर्वक सेवा करना, इसे 'विनय तप' कहा है ॥३२॥

आयरियमाईए, वेयावच्चम्मि दसविहे ।
आसेवणं जहाथामं, वेयावच्चं तमाहियं ॥३३॥

अनीहारी, इस प्रकार यावत्कालिक अनशन के दो भेद हैं। इन दोनों में आहार का सर्वथा त्याग होता है ॥१३॥

ओमोयरणं पंचहा, समासेण वियाहियं ।
दव्वओ खेत्तकालेणं, भावेणं पज्जवेहि य ॥१४॥

ऊनोदरी तप के संक्षेप से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्याय ये पांच भेद कहे हैं ॥१४॥

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे ।
जहन्नेणेगसित्थाई, एवं दव्वेण ऊ भवे ॥१५॥

जिसका जितना आहार है, उसमें से कम से कम एक कवल भी कम खावे, वह 'द्रव्य ऊणोदरी' तप होता है ॥१५॥

गामे नगरे तह रायहाणि, निगमे य आगरे पल्ली ।
खेडे कव्वड-दोणमुह-पट्टण-मडंब-संबाहे ॥१६॥
आसमपए विहारे, सन्निवेसे समायघोसे य ।
थलिसेणाखंधारे, सत्थे संवट्टकोट्टे य ॥१७॥
वाडेसु य रत्थासु य, घरेसु वा एवमित्तियं खेत्तं ।
कप्पइ उ एवमाई, एवं खेत्तेण ऊ भवे ॥१८॥

ग्राम, नगर, राजधानी, निगम, आकर, पल्ली, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, पत्तन, संबाध, आश्रमपद, विहार, सन्निवेश समाज, घोष स्थल, सेना स्कन्धावार, सार्थ, संवर्त्त, कोट, घरों के समूह, गलियों और गृहों इत्यादि स्थानों में भिक्षाचरी करना कल्पता है। यह 'क्षेत्र ऊनोदरी' तप हुआ ॥१६–१८॥

पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्ति पयंगवीहिया चेव ।
संबुकावट्टायययगंतु, पच्चागया छट्ठा ॥१६॥

पेटिका, अर्धपेटिका, गोमूत्रिका, पतंग-विथिका, शंखावर्त्त और लम्बी दूर जाकर फिर आना, ये छः प्रकार भी 'क्षेत्र ऊनोदरी' तप के हैं ॥१६॥

दिवसस्स पोरिसीणं, चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो ।
एवं चरमाणो खलु, कालोमाणं मुणेयव्वं ॥२०॥

दिन के चार प्रहरों में से किसी अमुक प्रहर में ही भिक्षा लेने के अभिग्रह को 'काल ऊनोदरी' तप कहते हैं ॥२०॥

अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाए घासमेसंतो ।
चउभागूणाए वा, एवं कालेण ऊ भवे ॥२१॥

अथवा तीसरे प्रहर के प्रथम भाग, चौथे या पांचवें भाग में भिक्षार्थ जाने की प्रतिज्ञा को 'काल ऊनोदरी तप' कहते हैं।

इत्थी वा पुरिसो वा, अलंकिओ वाऽणलंकिओ वा वि ।
अण्णयरवयत्थो वा, अन्नयरेणं व वत्थेणं ॥२२॥

अण्णेण विसेसेणं, वण्णेणं भावमणुमुयंते उ ।
एवं चरमाणो खलु, भावोमाणं मुणेयव्वं ॥२३॥

स्त्री अथवा पुरुष, अलंकार सहित या रहित, अमुक वय वाला, अमुक वस्त्र वाला, अमुक वर्ण वाला अथवा अमुक भाव वाले दाता से ही भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा को भावऊनोदरी तप'०

तुलसी-काव्य-मीमांसा

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

दिव्वे य जे उवसग्गे, तहा तेरिच्छ-माणुसे।
जे भिक्खू सहई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥५॥

जो भिक्षु, देव मनुष्य और तिर्यञ्च संबंधी उपसर्ग को सहन करता है, वह संसार में नहीं भटकता ॥५॥

विगहा-कसाय-सन्नाणं, झाणाणं च दुयं तहा।
जे भिक्खू वज्जई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥६॥

जो मुनि, चार विकथा, चार कषाय, चार संज्ञा, और दो ध्यान, को त्याग देता है, वह संसार में नहीं रुलता ॥७॥

वएसु इंदियत्थेसु, समिईसु किरियासु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥७॥

पांच व्रतों और पांच समितियों के पालन तथा पांच इन्द्रियों के विषयों के तथा पांच क्रिया के त्याग में जो संयति, नित्य परिश्रम करता है, वह संसार में नहीं रहता ॥७॥

लेसासु छसु काएसु, छक्के आहारकारणे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥८॥

छः लेश्या, छः काय, और आहार करने के छः कारणों में जो साधु सदा यतनावंत रहता है, वह भव भ्रमण नहीं करता।

पिंडोग्गहपडिमासु, भयट्ठाणेसु सत्तसु।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥९॥

आहार लेने की सात प्रतिमाओं, और सात भय स्थानों

में जो भिक्षु सदैव यत्नवन्त रहता है, वह संसार में नहीं फँसता।

मएसु बंभगुत्तीसु, भिक्खुधम्मम्मि दसविहे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१०॥

आठ मदों के त्याग में, नौ ब्रह्मचर्य गुप्ति तथा दस प्रकार के भिक्षु धर्म के पालन में जो साधु सदा उद्यमी रहता है, वह संसार में नहीं डूबता ॥१०॥

उवासगाणं पडिमासु, भिक्खूणं पडिमासु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥११॥

उपासकों की ग्यारह प्रतिमा और भिक्षुओं की बारह प्रतिमाओं में जो श्रमण सदैव उपयोग रखता है, वह संसार चक्र में नहीं पड़ता ॥११॥

किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१२॥

तेरह प्रकार के क्रिया स्थानों, चौदह भूतग्रामों और पन्द्रह प्रकार के परमाधामी देवों में जो भिक्षु सदा विवेक रखता है, वह संसार भ्रमण नहीं करता ॥१२॥

गाहासोलसएहिं, तहा असंजमम्मि य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१३॥

जो भिक्षु प्रथम सूत्रकृतांग के सोलह अध्ययन और सतरह प्रकार के असंयम में यत्न रखता है, वह भव भ्रमण नहीं करता ॥१३॥

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक ।

बंभम्मि नायज्झयणेसु, ठाणेसु असमाहिए ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१४॥

ब्रह्मचर्य के अठारह स्थानों और ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के उन्नीस अध्ययनों तथा असमाधि के बीस स्थानों में जो मुनि सदा यतना रखता है, वह संसार में नहीं रुलता ॥१४॥

एगवीसाए सबले, बावीसाए परीसहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१५॥

इकवीस सबल दोषों को त्यागने और बावीस परीषहों को जीतने में जो भिक्षु सदैव उपयोग रखता है, वह संसार....

तेवीसाए सूयगडे, रूवाहिएसु सुरेसु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१६॥

जो मुनि सूत्रकृतांग के तेवीस अध्ययनों में और अधिक रूप वाले चोवीस प्रकार के देवों में, सदैव उपयोग रखता है....

पणवीस भावणासु, उद्देसेसु दसाइणं ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१७॥

जो साधु, पच्चीस प्रकार की भावना में और दशाश्रुत-स्कन्ध, बृहद्कल्प और व्यवहार के २६ उद्देशों में सदा यतन रखता है, वह संसार में नहीं रुलता ॥१७॥

अणगारगुणेहिं च, पगप्पम्मि तहेव य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१८॥

जो भिक्षु, अनगार के सत्तावीस गुणों में और अट्ठाईस आचारप्रकल्प में सावधान रहता है, वह संसार में नहीं रुलता।

पावसुयप्पसंगेसु, मोहट्ठाणेसु चेव य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥१६॥

जो भिक्षु उनतीस प्रकार के पापश्रुत प्रसंगों में और मोहनीय के तीस स्थानों में सतर्क रहता है, वह संसार में०

सिद्धाइगुणजोगेसु, तेत्तीसाऽसायणासु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥२०॥

जो साधु, सिद्धों के इकत्तीस गुणों में, बत्तीस योग संग्रहों में और तेतीस प्रकार की आशातनाओं में सदा यतना रखता है, वह संसार परिभ्रमण नहीं करता ॥२०॥

इइ एएसु ठाणेसु, जे भिक्खू जयई सया ।
खिप्पं से सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिओ।२१। त्ति बेमि।

इन पूर्वोक्त स्थानों में जो पिंडत भिक्षु, सदैव यतना रखता है, वह शीघ्र ही संसार के समस्त बन्धनों को काटकर मुक्त हो जाता है ॥२१॥

॥-: इकत्तीसवां अध्ययन समाप्त :-॥



तुलसी-काव्य-मीमांसा

ुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

पमायट्ठाणं बत्तीसइमं अज्झयणं

:३२:

अच्चंतकालस्स समूलगस्स, सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो।
तं भासओ मे पडिपुण्णचित्ता, सुणेह एगंतहियं हियत्थं ॥१॥

हे भव्य जीवो ! मिथ्यात्व-मोहनीय आदि मूल के साथ रहे हुए दुःख, अनादिकाल से जीव को दुःखी कर रहे हैं। इन सभी दुःखो से सर्वथा मुक्त करके एकान्त हित करनेवाला कल्याणकारी उपाय बताता हूँ। एकाग्र मन से सुनो ॥१॥

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥२॥

राग-द्वेष के सर्वथा क्षय एव अज्ञान और मोह के सर्वथा त्याग से सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश होता है। इससे वह जीव, एकान्त सुखरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥२॥

तस्सेस मग्गो गुरु-विद्धसेवा, विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झायएगंतनिसेवणा य, सुत्तऽत्थसंचिंतणया धिई य ॥३॥

बाल जीवों के संग को त्यागकर दूर रहना, वृद्ध तथा गुरुजनों की सेवा करना, एकान्त में धीरज के साथ स्वाध्याय करना और सूत्र अर्थ का चिन्तन करना, यही मोक्ष का मार्ग है।

आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं, सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धिं।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोगं, समाहिकामे समणे तवस्सी ॥४॥

समाधि के इच्छुक तपस्वी साधु को परिमित शुद्ध आहार ग्रहण करना चाहिए और निपुणार्थ बुद्धिवाला सहायक लेना चाहिए तथा एकान्त स्थान में रहना ही पसन्द करना चाहिए।

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा।
एगो वि पावाइं विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो।५।

यदि अपने से गुणों में अधिक अथवा समान निपुण (कुशल) सहायक नहीं मिले, तो समस्त पापों का त्याग करके, काम भोगादि में आसक्त न होता हुआ, अकेला ही विचरे।

जहा य अंडप्पभवा बलागा, अंडं बलागप्पभवं जहा य।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयंति ॥६॥

जिस प्रकार अण्डे की उत्पत्ति पक्षी से और पक्षी की उत्पत्ति अण्डे से होती है, उसी प्रकार मोह की उत्पत्ति तृष्णा से और तृष्णा की उत्पत्ति मोह से होती है ॥६॥

रागो य दोसो वि य कम्मवीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई-मरणं वयंति ॥७॥

राग और द्वेष, ये दोनों कर्म के बीज हैं। कर्म, मोह से उत्पन्न होते हैं। कर्म ही जन्म मरण का मूल है और जन्म मरण ही दुःख है ॥७॥

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो-मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥

तुलसी-काव्य-मीमांसा

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक ।

जिसके मोह नहीं है, उसके दुःख भी नष्ट हो जाते हैं। मोह का नाश करनेवाले के तृष्णा नहीं होती । जिसने तृष्णा का नाश कर दिया, उसके लोभ नहीं होता और लोभ का नाश कर देने पर अकिंचन हो जाता है ॥८॥

रागं च दोसं च तहेव मोहं, उद्धत्तुकामेण समूलजालं ।
जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा, ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं ॥९॥

राग द्वेष और मोह की जाल को जड़ से उखाड़ कर, फेंकने की इच्छावालों को क्या उपाय करने चाहिए, यह मैं अनुक्रम से कहता हूँ ॥९॥

रसा पगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणं ।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥

रसों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए। क्योंकि रस मनुष्यों में प्रायः दीप्ति-उत्तेजना पैदा करते हैं। जिस प्रकार स्वादिष्ट फलवाले वृक्ष को पक्षी दुखी करते हैं, उसी प्रकार रसों के सेवन से पैदा हुई उत्तेजना और उत्पन्न हुआ काम, साधु को पराजित कर देता है ॥१०॥

जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे, समारुओ नोवसमं उवेइ ।
एविंदियग्गी वि पगामभोइणो, न बंभयारिस्स हियाय कस्सई ॥

जिस प्रकार बहुत इन्धनवाले वन में लगी तथा वायु द्वारा प्रेरित हुई दावाग्नि शान्त नहीं होती, उसी प्रकार

सरस आहार करनेवाले ब्रह्मचारी की इन्द्रियरूपी अग्नि शान्त नहीं होती ।।११।।

विवित्तसिज्जासणजंतियाणं, ओमासणाणं दमिइंदियाणं ।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवोसहेहिं ।।१२।।

जिस प्रकार उत्तम ओषधियों से दूर हुई व्याधि, पुनः उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार एकान्त सेवी, अल्पाहारी और इन्द्रियों का दमन करनेवाले को रागरूपी शत्रु नहीं जीत सकता ।।१२।।

जहा विरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था ।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे, न बंभयारिस्स खमो निवासो ।।

जिस प्रकार बिल्लियों के स्थान के समीप चूहों का रहना अच्छा नहीं है, उसी प्रकार स्त्रियों के स्थान के समीप, ब्रह्मचारियों का रहना हितकर नहीं है ।।१३।।

न रूव-लावण्ण-विलास-हासं, न जंपियं इंगिय पेहियं वा ।
इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता, दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी ।।

तपस्वी श्रमण, स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, प्रिय-भाषण, संकेत और कटाक्षपूर्वक अवलोकन को अपने मन में स्थान नहीं दे, न वैसे अध्यवसाय ही लावे ।।१४।।

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिंतणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थीजणस्सारियझाणजुग्गं, हियं सया बंभवए रयाणं ।।

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक।

ब्रह्मचर्य व्रत में लीन और आर्य (धर्म) ध्यान के योग्य साधु स्त्रियों का दर्शन, उनकी वाञ्छा, कीर्त्तन और चिंतन नहीं करे, इसी में उनका हित है ॥१५॥

कामं तु देवीहिं विभूसियाहिं, न चाइया खोभइउं तिगुत्ता ।
तहा वि एगंतहियं ति नच्चा, विवित्तवासो मुणिणं पसत्थो ॥

मन, वचन और काया से गुप्त रहनेवाले परम संयमी मुनि को सुन्दर वेषभूषा से युक्त देवांगनाएं भी चलित नहीं कर सकती, किन्तु उन्हें भी एकान्तवास ही परम हितकारी और प्रशस्त है ॥१६॥

मोक्खाभिकंखिस्स उ माणवस्स, संसार भीरुस्स ठियस्स धम्मे ।
नेयारिसं दुत्तरमत्थि लोए, जहित्थिओ बालमणोहराओ ॥

मोक्षाभिलाषी, संसार से डरनेवाले और धर्म में स्थिर रहने वाले पुरुषों को संसार में और कोई कठिन काम नहीं है- जितना कठिन बाल जीवों के मन को हरण करनेवाली स्त्रियों का त्याग करना है ॥१७॥

एए य संगे समइक्कमित्ता, सुदुत्तरा चेव भवंति सेसा ।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा ॥१८॥

जिस प्रकार महासागर को तिर जानेवाले के लिये गंगा नदी का तैरना सुगम है, उसी प्रकार स्त्री संग के त्यागी महात्मा के लिये अन्य त्याग सरल हो जाते हैं ॥१८॥

कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ।
जं काइयं माणसियं च किंचि, तस्संतगं गच्छइ वीयरागो ॥

स्वर्गादि समस्त लोक में जो भी मानसिक, वाचिक और कायिक दुःख है, वे सब काम भोगों की अभिलाषा से ही उत्पन्न हुए हैं। वीतराग पुरुष ही इन दुखों का अन्त करते हैं।

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा।
ते खुद्दए जीविय पच्चमाणा,एओवमा कामगुणा विवागे।२०।

जिस प्रकार किंपाक वृक्ष के फल सुन्दर, मीठे और मन भावने होते हैं, पर उन्हें खाने से जीवन का नाश हो जाता है। उसी प्रकार काम भोगों का भी कटु परिणाम होता है ॥२०॥

जे इंदियाणं विसया मणुन्ना, न तेसु भावं निसिरे कयाई।
न यामणुन्नेसु मणं पि कुज्जा,समाहिकामे समणे तवस्सी।२१।

समाधि चाहनेवाला तपस्वी, इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों में राग और अमनोज्ञ विषयों में द्वेष नहीं करे ॥२१॥

चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु,समो य जो तेसु स वीयरागो।२२।

आँखें, रूप को ग्रहण करती हैं, यदि रूप सुन्दर हो तो राग का कारण होता है और बुरा हो तो द्वेष का हेतु होता है। इन दोनों प्रकार के रूपों में जो समभाव रखते हैं, वे वीतराग हैं ॥२१॥

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक ।

रूवस्स चक्खुं गहणं वयंति, चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥२३॥

रूप को ग्रहण करनेवाली चक्षु इन्द्रिय है और रूप, चक्षु इन्द्रिय के ग्रहण होने योग्य है। प्रिय रूप राग का और अप्रिय रूप द्वेष का कारण है ॥२३॥

रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ सो विणासं ।
रागाउरे से जह वा पयंगे, आलोयलोले समुवेइ मच्चुं ।२४।

जिस प्रकार दृष्टि के राग में आतुर होकर पतंगा मृत्यु पाता है, उसी प्रकार रूप में अत्यन्त आसक्त होकर जीव, अकाल में ही मृत्यु पाते है ॥२४॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि रूवं अवरज्झई से ।२५।

जो जीव, अरुचिकर रूप देखकर सदैव द्वेष करता है, वह उसी क्षण में दुःख का अनुभव करता है। वह अपने ही दोष से दुखी होता है। इसमें रूप का कोई दोष नहीं है ॥२५॥

एगंतरत्ते रुइरंसि रूवे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पइ तेण मुणी विरागो ।

जो जीव, मनोहर रूप में एकान्त राग करता है और अरुचिकर रूप में द्वेष करता है, वह अज्ञानी; दुःख समूह को प्राप्त करता है, किन्तु वीतरागी मुनि, राग-द्वेष में लिप्त नहीं होता। इससे वह दुःखी भी नहीं होता ॥२६॥

रूवाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे।
चित्तेहिं ते परियावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे ॥

रूप की आशा के वश पड़ा हुआ गुरुकर्मी अज्ञानी जीव, त्रस और स्थावर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, परिताप उत्पन्न करता है तथा पीड़ित करता है ॥२७॥

रूवाणुवाए ण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥

रूप में मूर्छित जीव, उन पदार्थों के उत्पादन, रक्षण एवं व्यय में और वियोग की चिन्ता में लगा रहता है। उसे सुख कहां है ? वह संभोग काल में अतृप्त ही रहता है ॥२८॥

रूवे अतित्ते अ परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ।२९।

मनोज्ञ रूप के ग्रहण में गृद्ध जीव, अतृप्त ही रहता है। उसकी आसक्ति बढ़ती ही जाती है। फिर वह दूसरे की सुन्दर वस्तु का लोभी होकर अदत्त ग्रहण करता है ॥२९॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रूवे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थाऽवि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

तृष्णा के वश हुआ जीव, चोरी करता है और झूठ तथा कपट की वृद्धि करता हुआ अतृप्त ही रहता है। फिर भी वह दुःख से छुटकारा नहीं पाता ॥३०॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते
एवं अदत्ताणि समाययंतो, रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥

वह दुष्ट जीव झूठ बोलने के पहले, पीछे और झूठ बोलते समय दुखी होता है। अदत्त ग्रहण करते हुए भी वह रूप में अतृप्त और असहाय होकर सदैव दुःखी ही रहता है॥३१॥

रूवाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं॥

रूप में आसक्त मनुष्य को थोड़ा भी सुख नहीं होता, जिस वस्तु की प्राप्ति में उसने दुःख उठाया, उसके उपभोग के समय भी वह दुःख पाता है॥३२॥

एमेव रूवम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥

इसी प्रकार अमनोज्ञ रूप में द्वेष करनेवाला जीव भी दुखों की परम्परा बढ़ा लेता है और दुष्ट चित्त से कर्मों का उपार्जन कर लेता है। वह कर्म भोगते समय दुःख उठाता है।

रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पुक्खरिणीपलासं॥

रूप से विरक्त हुआ मनुष्य, शोक रहित हो जाता है। जिस प्रकार जल में रहते हुए भी कमल का पत्ता लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी वह विरक्त पुरुष दुःख समूह से लिप्त नहीं होता॥३४॥

सोयस्स सद्दं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

शब्द, कान का विषय है। मनोज्ञ शब्द राग और अमनोज्ञ द्वेष का कारण है। जो दोनों प्रकार के शब्दों में समभाव रखता है, वही वीतरागी है ॥३५॥

सद्दस्स सोयं गहणं वयंति, सोयस्स सद्दं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ।३६।

श्रोतेन्द्रिय शब्द का ग्राहक ओर शब्द श्रोत का ग्राह्य है। प्रिय शब्द राग का और अप्रिय शब्द द्वेष का कारण है।

सद्देसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे हरिणमिए व्व मुद्धे, सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं ॥

जिस प्रकार शब्द के राग में गृद्ध तथा मुग्ध बना हुआ मृग संतोषित न होता हुआ मृत्यु पा लेता है; उसी प्रकार शब्दों के विषय में अत्यन्त मूछित होने वाला जीव, अकाल में ही नष्ट हो जाता है ॥३७॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि सद्दं अवरज्झई से ।३८।

जो अप्रिय शब्द सुनकर तीव्र द्वेष करता है, वह अपने ही किये हुए भयङ्कर दोष से उसी समय दुःख पाता है, किन्तु शद्व किसी को दुःखित नहीं करते ॥३८॥

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक ।

एगंतरत्ते रुइरंसि सद्दे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

जो अज्ञानी जीव मनोहर शब्द में एकान्त अनुरक्त होता है और अप्रिय शब्द में द्वेष करता है, वह दुःख को प्राप्त होता है । किन्तु वीतरागी मुनि उसमें लिप्त नहीं होते ।

सद्दाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ।
चित्तेहिं ते परियावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठ गुरू किलिट्ठे ।४०।

शब्द की आशा के वश हुआ भारीकर्मी जीव, अज्ञानी होकर त्रस और स्थावर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, परिताप उत्पन्न करता है और पीड़ा देता है ॥४०॥

सद्दाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥

शब्द में मूर्छित हुआ जीव, मनोहर शब्दवाले पदार्थों की प्राप्ति, रक्षण एवं व्यय में तथा वियोग की चिंता में लगा रहता है, वह संभोगकाल में भी अतृप्त ही रहता है, फिर उसे सुख कहां है ? ॥४१॥

सद्दे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ।४२।

प्रिय शब्द के ग्रहण में गृद्ध जीव, अतृप्त ही रहता है। उसकी मूर्च्छा बढ़ती जाती है । वह दूसरों की वस्तु पर ललचा कर चोरी करने लग जाता है ॥४२॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से॥

तृष्णा के वश पड़ा हुआ वह जीव, चोरी करता है तथा झूठ और कपट की वृद्धि करता हुआ अतृप्त ही रहता है, किन्तु दुःख से नहीं छूट सकता ॥४३॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, सद्दे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥

वह झूठ बोलने के पहले, और पीछे तथा झूठ बोलते समय दुःखी होता है। अदत्त ग्रहण करते हुए भी वह शब्द मे संतोष नही पाता तथा सदैव दुःखी रहता है। उसका कोई सहायक नहीं होता ॥४४॥

सद्दाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं हुज्ज कयाइ किंचि।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तए जस्स कए ण दुक्खं॥

शब्द में गृद्ध मनुष्य को कुछ भी सुख नहीं मिलता। वह मनोहर शब्द के उपभोग के समय भी दुःख और क्लेश ही उत्पन्न करता है ॥४५॥

एमेव सद्दम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ।
पउट्ठचित्तो य चिणेइ कम्मं, जंसे पुणो होइ दुहं विवागे॥

इसी तरह अप्रिय शब्द में द्वेष करनेवाला जीव भी दुःख परम्परा बढ़ाता है और दुष्ट चित्त से कर्मो का उपार्जन कर लेता है, जो भोगते समय दुःख दायक होते हैं ॥४६॥

सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पुक्खरिणीपलासं ॥

शब्द से विरक्त हुआ मनुष्य, शोक रहित होता है। जिस प्रकार जल में रहा हुआ कमल का पत्ता अलिप्त रहता है, उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी विरक्त पुरुष, श्रोतेन्द्रिय के विषय और उससे होनेवाले दुःखों से निर्लिप्त रहता है॥४७॥

घाणस्स गंधं गहणं वयंति, तं रागहेउं समणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥४८॥

गंध, घ्राण का विषय है, सुगंन्ध राग और दुर्गन्ध द्वेष का कारण है। जो जीव, दोनो प्रकार के गन्ध में समभाव रखता है, वही वीतरागी है ॥४८॥

गंधस्स घाणं गहणं वयंति, घाणस्स गंधं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥४९॥

गन्ध को नासिका ग्रहण करती है और गन्ध नासिका का ग्राह्य है। सुगन्ध राग का कारण है और दुर्गन्ध द्वेष का कारण है ॥४९॥

गंधस्स जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे ओसहिगंधगिद्धे, सप्पे बिलाओ विव निक्खमंतो ॥

जिस प्रकार औषधि की सुगन्ध में मूर्छित हुआ सर्प, बाम्बी से बाहर निकल कर मारा जाता है, उसी प्रकार गन्ध में अत्यन्त आसक्त जीव, अकाल में ही मृत्यु पा लेता है॥५०॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू , न किंचि गंधं अवरज्झई से ।५१।

जो दुर्गन्ध से तीव्र द्वेष करता है, वह उसी समय दुःख का अनुभव करता है और अपने ही द्वेष से दुखित होता है। इसमें गंध का कोई दोष नहीं ॥५१॥

एगंतरत्ते रुइरंसि गंधे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले,न लिप्पई तेण मुणी विरागो ।५२।

जो अज्ञानी, सुगन्ध में सर्वथा आसक्त हो जाता है और दुर्गन्ध से घृणा करता है, वह दुःख पाता है; किन्तु वीत-रागी मुनि लिप्त नहीं होता ॥५२॥

गंधाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ।
चित्तेहिं ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे ।५३।

सुगन्ध के वशीभूत होकर बाल जीव, अनेक प्रकार से त्रस और स्थावर जीवों की घात करता है, उन्हें दुःख देता है।

गंधाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥

सुगन्ध में आसक्त हुआ जीव, सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति, रक्षण, व्यय तथा वियोग की चिन्ता में ही लगा रहता है। वह संभोगकाल में भी अतृप्त रहता है। फिर उसे सुख कहां ? ॥५४॥

तुलसी-काव्य-मीमांसा

श्रुति संमत हरि भगति पथ संजुत विरति विवेक।

गंधे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं।५५।

सुगन्ध के ग्रहण में जीव, अतृप्त रहता है। उसकी तृष्णा बढ़ती है। वह दूसरों की वस्तु पर ललचाकर अदत्त ग्रहण करता है ॥५५॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, गंधे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

तृष्णा से दबा हुआ जीव, चोरी करता है और झूठ तथा कपट को परम्परा बढ़ाता हुआ भी असंतुष्ट हो रहता है। वह कष्टों से मुक्त नहीं हो सकता ॥५६॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, गंधे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

वह झूठ बोलने के पहले और पीछे तथा झूठ बोलते समय दुःखी होता है। अदत्त ग्रहण करते हुए भी वह गन्ध में सन्तोष नहीं पाता हुआ सदा दुःखी ही रहता है ॥५७॥

गंधाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

गन्ध में आसक्त हुए जीव को कुछ भी सुख नहीं होता। वह सुगन्ध के उपभोग के समय भी दुःख एवं क्लेश ही पाता है।

एमेव गंधम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

इसी प्रकार दुर्गन्ध में द्वेष करनेवाला जीव भी दुःख परम्परा बढ़ाता है और दुष्टता से कर्मों का उपार्जन कर लेता है, जो भोगते समय दुःखदायक होते हैं ॥५६॥

गंधे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

गन्ध से विरक्त मनुष्य, शोक रहित होता है। जिस प्रकार कमल पत्र, जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी विरक्त पुरुष, घ्राण के विषय और उसके परिणाम से अलिप्त ही रहता है ॥६०॥

जिब्भाए रसं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

जीभ, रस को ग्रहण करती है। प्रिय रस, राग का कारण है और अप्रिय रस, द्वेष का हेतु है. किंतु जो दोनों प्रकार के रसों में समभाव रखता है, वह वीतराग है ॥६१॥

रसस्स जिब्भं गहणं वयंति, जिब्भाए रसं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ।६२।

रस को जीभ ग्रहण करती है और रस, जीभ का ग्राह्य है। मनपसन्द रस, राग का कारण है। और मन के प्रतिकूल रस, द्वेष का कारण कहा गया है ॥६२॥

श्रति संमत हरि भगति पथ संजुत बिरति विवेक ।

रसेसु, जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे वडिस विभिन्नकाए, मच्छे जहा आमिसभोग गिद्धे ॥

जिस प्रकार मांस खाने के लालच में फँसा हुआ मच्छ, काँटे में फँस कर मारा जाता है, उसी प्रकार रसों में अत्यन्त गृद्ध जीव, अकाल में मृत्यु का ग्रास बन जाता है ॥६३॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि रसं अवरज्झई से ।६४।

रस किसी को दुःखी नहीं करते, किन्तु जीव स्वयं अमनोज्ञ रसों में द्वेष करके अपने ही किये हुए भयंकर द्वेष से दुःखी होता है ॥६४॥

एगंतरत्ते रुइरे रसम्मि, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपिलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

मनोज्ञ रस में अत्यन्त आसक्त और अमनोज्ञ रस में एकान्त द्वेषी बना हुआ बाल जीव, दुःख से अत्यन्त पीड़ित होता है। जो वीतराग मुनि हैं, वे विषयों और दुःखों से अलिप्त ही रहते हैं ॥६५॥

रसाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे ।६६।

रसों के लालच में डूबा हुआ अज्ञानी जीव, अनेक प्रकार से त्रस और स्थावर जीवों की घात करता है। उन्हें कई प्रकार से पीड़ा पहुँचाता है ॥६६॥

रसाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे॥

रस में आसक्त हुआ अज्ञानी जीव, रसों की प्राप्ति, रक्षण, व्यय तथा नाश की चिन्ता में ही लगा रहता है। वह संभोग काल में भी अतृप्त रहता है। ऐसी दशा में उसे सुख कहाँ से मिले ? ॥६७॥

रसे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥६८॥

रसों से अतृप्त और उनके संचय में असंतुष्ट रहा हुआ लोभी जीव, दूसरों की वस्तु बिना दिये ही ले लेता है ॥६८॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रसे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से॥

अति तृष्णा से घिरा हुआ जीव, चोरी करता है तथा झूठ और कपट की परम्परा बढ़ाता है। फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं होता और दुःख में ही फँसा रहता है ॥६९॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥

झूठ बोलने से पहिले, पीछे और झूठ बोलते समय वह दुःखी होता है। अदत्त लेते हुए भी वह रसों में अतृप्त ही रहता है और निःसहाय होकर दुःख भोगता है ॥७०॥

रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तए जस्स कए ण दुक्खं॥

रसों से आसक्त जीव को कुछ भी सुख नहीं होता। वह रसभोग के समय भी दुःख और क्लेश ही पाता है ॥७१॥

एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे॥

इसी प्रकार अमनोज्ञ रसों में द्वेष करनेवाला जीव भी दुःख परम्परा बढ़ाता है और कलुषित मन से कर्मों का उपार्जन करके उनके दुःखप्रद फल को भोगता है ॥७२॥

रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पुक्खरिणीपलासं॥

रसों से विरक्त मनुष्य, शोक रहित हो जाता है। जिस प्रकार कमल पत्र, जल में रहते हुए भी लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी विरागी पुरुष, रसनेन्द्रिय के विषय और उसके कटु विपाक से अलिप्त रहता है ॥७३॥

कायस्स फासं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो।७४।

शरीर स्पर्श को ग्रहण करता है। सुखद स्पर्श राग का और दुःखद स्पर्श द्वेष का कारण है। जो दोनों प्रकार के स्पर्शों में समभाव रखते हैं वे वीतराग हैं ॥७४॥

फासस्स कायं गहणं वयंति, कायस्स फासं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥७५॥

शरीर, स्पर्श को ग्रहण करता है और स्पर्श, शरीर का ग्राह्य है । सुखद स्पर्श, राग का तथा दुःखद स्पर्श, द्वेष का कारण है ॥७५॥

फासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे सीयजलावसन्ने, गाहग्गहीए महिसे व रण्णे ।७६।

जो जीव, सुखद स्पर्शों में अति आसक्त होता है, वह जंगल के तालाब के ठंडे पानी में पड़े हुए और मगर द्वारा ग्रसे हुए भैंसे की तरह अकाल में ही मृत्यु पाता है ॥७६॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि फासं अवरज्झई से ।७७।

स्पर्श किसी को दुःखी नहीं करते, किन्तु जो असुहावने स्पर्श से तीव्र द्वेष करता है, वह अपने ही किये हुए भयंकर अपराधों से उसी समय दुःख पाता है ॥७७॥

एगंतरत्ते रुइरंसि फासे, अतालिसे से कुणइ पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

जो अज्ञानी, सुखद स्पर्श में एकान्त आसक्त हो जाता है और दुःखद स्पर्श से द्वेष करता है, वह दुःख को प्राप्त होता है, किन्तु वीतरागी पुरुष तो अलिप्त ही रहते हैं ॥७८॥

फासाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ णेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे ॥७९॥

स्पर्श की आशा मे पड़ा हुआ गुरुकर्मी जीव, चराचर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, उन्हें दुःख देता है।

फासाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥

सुखद स्पर्शो में मूर्च्छित हुआ प्राणी, इन वस्तुओं की प्राप्ति, रक्षण, व्यय एवं वियोग की चिन्ता में ही घुला करता है। भोग के समय भी वह तृप्त नहीं होता, फिर उसके लिये सुख कहां ? ॥८०॥

फासे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥८१॥

सुखद स्पर्शो में अनुरक्त जीव, कभी तृप्त नहीं होता। उसकी मूर्च्छा बढ़ती ही रहती है। वह अत्यन्त लोभी होकर अदत्त ग्रहण करने लग जाता है ॥८१॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, फासे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥

जीव, तृष्णा के वश होकर चोरी करता हुआ माया-मृषा को बढ़ाता रहता है, फिर भी उसे तृप्ति नहीं होती। वह दुःख से नहीं छूट सकता ॥८२॥

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

ऐसे दुष्ट जीव को झुठ बोलने के पूर्व, पश्चात् और झूठ बोलते समय कष्ट होता है। वह चोरी करते हुए भी सदा अतृप्त एवं असहाय होकर दुखी ही रहता है ॥८३॥

फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

स्पर्श में आसक्त जीवों को किंचित् भी सुख नहीं होता। जिस वस्तु की प्राप्ति क्लेश एवं दुःख से हुई, उसके भोग के समय भी कष्ट ही मिलता है ॥८४॥

एमेव फासम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

दुखद स्पर्श में द्वेष करनेवाला भी इसी प्रकार दुःख की परम्परा बढ़ाता है और मलिन भावना से कर्मों का उपार्जन करता है, जो भोगते समय कष्ट दायक होते हैं ॥८५॥

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

स्पर्श से विरक्त मनुष्य, शोक से रहित हो जाता है। जिस प्रकार जल में रहते हुए भी कमलपत्र अलिप्त है, उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी विरक्त पुरुष अलिप्त रहता है।

मणस्स भावं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥

भाव को मन ग्रहण करता है, मनोज्ञ भाव राग का कारण है और अमनोज्ञ भाव द्वेष का कारण है। जो समभाव रखता है वही वीतराग है ॥८७॥

भावस्स मणं गहणं वयंति, मणस्स भावं गहणं वयंति ।
रागस्स हेउ समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥८८॥

मन, भाव को ग्रहण करता है और भाव, मन का ग्राह्य है। मनोज्ञ भाव, राग के और अमनोज्ञ द्वेष के कारण हैं।

भावेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे, करेणुमग्गावहिए व नागे ॥८९॥

जिस प्रकार रागातुर और काम में गृद्ध हाथी, हथिनी को देखकर मार्ग भ्रष्ट होकर विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार जो मनुष्य, अत्यन्त राग भाव रखता है, वह अकाल में ही मृत्यु प्राप्त कर लेता है ॥८९॥

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू, न किंचि भावं अवरज्झई से ।९०।

जो अरुचिकर भावों में तीव्र द्वेष करता है, वह अपने खुद के किये हुए भयंकर दोषों से उसी समय दुखी होता है, किंतु भाव का निमित्त किसी को दुखी नहीं करता ॥९०॥

एगंतरत्ते रुइरंसि भावे, अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥

जो अज्ञानी प्राणी, प्रिय भावों में एकान्त राग करते हैं और अप्रिय भावों में द्वेष करते हैं, वे कष्ट उठाते हैं, किन्तु, वीतरागी मुनि तो अलिप्त ही रहते हैं ॥९१॥

भावाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥९२॥

मनोहर भावों के आधीन हुआ भारीकर्मी जीव, चराचर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, उन्हें दुःख और क्लेश उत्पन्न करता है ॥९२॥

भावाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से, संभोगकाले य अतित्तलाभे ॥

मनोज्ञ भाव वाली वस्तुओं में आसक्त जीव, उनकी प्राप्ति रक्षण, व्यय और विनाश की चिन्ता में ही लगा रहता है, वह सम्भोग के समय भी अतृप्त रहता है, फिर उसे सुख कहां से मिले? ॥९३॥

भावे अतित्ते य परिग्गहम्मि, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ।९४।

भावों में अनुरक्त जीव, अतृप्त रहता है, उसकी आसक्ति बढ़ती रहती है, वह अत्यन्त लोभी होकर अदत्त ग्रहण करता है ॥९४॥

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, भावे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चइ से ॥

तृष्णा के अधीन हुआ जीव, चोरी करता है। वह माया मृषावाद का सेवन करता ही रहता है। इतना होते हुए भी उसकी तृप्ति नहीं होती, न वह कष्ट से मुक्त ही होता है।

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओग काले य दुही दुरंते ।
एवं अदत्ताणि समाययंतो, भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥

वह दुष्ट प्राणी, झूठ बोलने के पूर्व, पश्चात् और झूठ बोलते समय भी दुःख पाता है। चोरी करते हुए भी सदा अतृप्त एवं असहाय होकर दुखी रहता है ॥९६॥

भावाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥

मनोहर भावों में गृद्ध मनुष्य को कुछ भी सुख नहीं मिलता। जिस वस्तु की प्राप्ति में उसने दुःख पाया, उसके उपभोग के समय भी वह दुःख ही पाता है ९७॥

एमेव भावम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोह परंपराओ ।
पदुट्ठ चित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥

अमनोज्ञ भावों में द्वेष करने वाला भी इसी प्रकार दुःख परम्परा बढ़ाता है और कलुषित हृदय से कर्मों का उपार्जन करता है, जो भोगते समय दुःखदायी होते हैं ॥९८॥

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोह परंपरेण ।
ण लिप्पइ भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥

भावों से विरक्त जीव, शोक रहित हो जाता है। वह जल में अलिप्त रहे हुए कमल पत्र की तरह, संसार में रहते हुए भी लिप्त नहीं होता ॥९९॥

एविंदियत्था य मणस्स अत्था, दुक्खस्स हेऊं मणुयस्स रागिणो।
ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्खं, न वीयरागस्स करेंति किंचि ॥

इन्द्रियों और मन के विषय, रागी पुरुषों के लिए ही दुःख के कारण होते हैं। ये विषय, वीतरागियों को कुछ भी दुःख नहीं दे सकते ॥१००॥

न कामभोगा समयं उवेंति, न यावि भोगा विगइं उवेंति ।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥

काम भोग किसी को भी संतोषित नहीं कर सकते, न किसी में विकार ही पैदा कर सकते हैं, किन्तु जो विषयों में राग द्वेष करता है, वही राग द्वेष से विकृत हो जाता है ॥१०१॥

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोहं दुगुच्छं अरइं रइं च ।
हासं भयं सोग पुमित्थिवेयं, नपुंसवेयं विविहे य भावे ।१०२।
आवज्जई एवमणेगरूवे, एवंविहे कामगुणेसु सत्तो ।
अन्ने य एयप्पभवे विसेसे, कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से ॥

काम गुणों में आसक्त जीव, क्रोध, मान, माया, लोभ,

घृणा, राग, द्वेष, हास्य, भय, शोक, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद तथा अनेक प्रकार के भाव और अनेक प्रकार के रूपों को प्राप्त होता है और परिणाम स्वरूप नरकादि दुःखों को भुगतता है तथा विषयासक्ति से अत्यन्त दीन, लज्जित, करुणाजनक स्थितिवाला होकर घृणा का पात्र बन जाता है ।

कप्पं न इच्छिज्ज सहायलिच्छू, पच्छाणुतावेण तवप्पभावं ।
एवं वियारे अमियप्पयारे, आवज्जई इंदियचोरवस्से ॥१०४॥

अपनी सेवा के लिए योग्य सहायक की भी इच्छा नहीं करे । दीक्षा लेने के बाद पछतावे नहीं, तप के प्रभाव की इच्छा नहीं करे । जो इनके विपरीत आचरण करता है, वह इन्द्रियरूपी चोरों के वश होकर अनेक प्रकार के विकारों को प्राप्त होता है ॥१०४

तओ से जायंति पओयणाइं, निमज्जिउं मोहमहण्णवम्मि ।
सुहेसिणो दुक्खविणोयणट्ठा, तप्पच्चयं उज्जमए य रागी ॥

फिर उसे विषयादि सेवन करने की लालसा उत्पन्न होती है और वह मोह सागर में डूब जाता है तथा सुख की इच्छा और दुःख से वंचित होने के लिए विषयादि की प्राप्ति में ही उद्यम करता है ॥१०५॥

विरज्जमाणस्स य इंदियत्था, सद्दाइया तावइयप्पगारा ।
न तस्स सव्वे वि मणुन्नयं वा, निव्वत्तयंति अमणुन्नयं वा ॥

इन्द्रियों के शब्दादि मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञ विषय, विरागी मनुष्य के मन में राग द्वेष उत्पन्न नहीं कर सकते ।

एवं ससंकप्पविकप्पणासुं, संजायई समयमुवट्ठियस्स ।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥

राग द्वेष और मोह के अध्यवसाय दोष रूप हैं । इस प्रकार की भावना में सावधान हुए संयती को माध्यस्थ भाव की प्राप्ति होती है । वह विषयों में शुभ विचार करके तृष्णा को नष्ट कर देता है ॥१०७॥

स वीयरागो कयसव्वकिच्चो, खवेइ नाणावरणं खणेणं ।
तहेव जं दंसणमावरेइ, जं चंतरायं पकरेइ कम्मं ॥१०८॥

वे वीतरागी, ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म का क्षय करके कृतकृत्य हो जाते हैं ॥१०८॥

सव्वं तओ जाणइ पासई य, अमोहणे होइ निरंतराए ।
अणासवे झाणसमाहिजुत्ते, आउक्खए मोक्खमुवेइ सुद्धे ॥

वे मोह, अन्तराय और आस्रवों से रहित वीतराग, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाते हैं । वे शुक्लध्यान तथा सुसमाधि सहित होते हैं और आयुष्य के क्षय होने पर परम शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥१०९॥

सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को, जं बाहई सययं जंतुमेयं ।
दीहामयं विप्पमुक्को पसत्थो, तो होइ अच्चंतसुही कयत्थो ॥

फिर वह मुक्तात्मा, समस्त रोगों एवं दुःखों से–जो संसारी जीव को सदा पीड़ित करते रहते हैं, सर्वथा मुक्त होकर कृतकृत्य हो जाती है और प्रशंसनीय होकर सदा के लिए परम सुखी हो जाती है ॥११०॥

श्रणाइकालप्पभवस्स एसो, सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो।
वियाहिश्रो जं समुविच्च सत्ता, कमेण अच्चंतसुही भवंति ॥
॥१११। त्ति बेमि ॥

अनादिकाल से जीव के साथ लगे हुए समस्त दुःखों से मुक्त होने का भगवान् ने यह मार्ग बताया है, जिसे सम्यग् प्रकार से अंगीकार करके जीव अत्यन्त सुखी हो जाते हैं १११

॥–बत्तीसवां अध्ययन समाप्त–॥

कम्मप्पयडी तेत्तीसइमं अज्झयणं

:३३:

अट्ठ कम्माइं वोच्छामि, श्राणुपुव्विं जहक्कमं।
जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिवट्टई ॥१॥

जिन आठ कर्मों से बन्धा हुआ जीव, ससार में परिवर्तित होता रहता है, उनका स्वरूप मैं क्रमानुसार कहता हूँ।

नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ॥२॥

नामकम्मं च गोयं च, अंतरायं तहेव य।
एवमेयाइं कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ ॥३॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म, इस प्रकार संक्षेप में आठ कर्म कहे हैं ॥२-३॥

नाणावरणं पंचविहं, सुयं आभिणिबोहियं।
ओहिनाणं च तइयं, मणनाणं च केवलं ॥४॥

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान, इस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकार का है ॥४॥

निद्दा तहेव पयला, निद्दानिद्दा पयलपयला य।
तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा ॥५॥

निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, और सत्यानगृद्धि, इस प्रकार निद्रा के पांच प्रकार है ॥ ५ ॥

चक्खुमचक्खूओहिस्स, दंसणे केवले य आवरणे।
एवं तु नवविगप्पं, नायव्वं दंसणावरणं ॥६॥

चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण, इस प्रकार नौ भेद दर्शनावरण कर्म के हैं ॥६॥

वेयणीयं पि य दुविहं, सायमसायं च आहियं।
सायस्स उ बहू भेया, एमेव असायस्स वि ॥७॥

वेदनीय कर्म के दो भेद–सातावेदनीय और असाता वेदनीय, इन दोनों के अवान्तर भेद बहुत हैं ॥७॥

मोहणिज्जं पि दुविहं, दंसणे चरणे तहा ।
दंसणे तिविहं वुत्तं, चरणे दुविहं भवे ॥८॥

मोहनीय कर्म के दो भेद–दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय, फिर दर्शनमोहनीय के तीन और चारित्र मोहनीय के दो भेद हैं ॥८॥

सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं, सम्मामिच्छत्तमेव य ।
एयाओ तिन्नि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दंसणे ॥९॥

सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय, इस प्रकार दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियां है।

चरित्तमोहणं कम्मं, दुविहं तु वियाहियं ।
कसायमोहणिज्जं तु, नोकसायं तहेव य ॥१०॥

कषायमोहनीय और नोकषायमोहनीय, इस प्रकार चारित्र मोहनीय के दो प्रकार हैं ॥१०॥

सोलसविहभेएणं, कम्मं तु कसायजं ।
सत्तविह नवविहं वा, कम्मं च नोकसायजं ॥११॥

कषायमोहनीय के सोलह प्रकार और नोकषाय मोहनीय के सात अथवा नौ प्रकार हैं ॥११॥

नेरइ य तिरिक्खाउं, माणुस्साउं तहेव य ।
देवाउयं चउत्थं तु, आउकम्मं चउव्विहं ॥१२॥

नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु, यों आयु कर्म के चार प्रकार हैं ॥१२॥

नामकम्मं तु दुविहं, सुहमसुहं च आहियं ।
सुहस्स उ बहू भेया, एमेव असुभस्स वि ॥१३॥

शुभ नाम और अशुभ नाम, इस प्रकार नाम कर्म के दो प्रकार हैं। इन दोनों के अवान्तर भेद अनेक हैं ॥१३॥

गोयं कम्मं तु दुविहं, उच्चं नीयं च आहियं ।
उच्चं अट्ठविहं होइ, एवं नीयं पि आहियं ॥१४॥

ऊँच और नीच गोत्र, ये दो प्रकार गोत्र कर्म के हैं। हर एक के आठ आठ भेद हैं ॥१४॥

दाणे लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा ।
पंचविहमंतरायं, समासेण वियाहियं ॥१५॥

अन्तराय कर्म संक्षेप से पांच प्रकार का कहा है, यथा-दानान्तराय, लाभा० भोगा० उपभोगा० और वीर्यान्तराय।

एयाओ मूलपयडीओ, उत्तराओ य आहिया ।
पएसग्गं खेत्तकाले य, भावं च उत्तरं सुण ॥१६॥

इस प्रकार कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियां कही गई। अब तुम प्रदेश, क्षेत्र, काल और भाव का स्वरूप सुनो।

सव्वेसिं चेव कम्माणं, पएसग्गमणंतगं ।
गंठियसत्ताईयं, अंतो सिद्धाण आहियं ॥१७॥

सब कर्मों के प्रदेश अनन्त है, जो अभव्य जीवों मे अनन्त गुण और सिद्धों के अनन्तवें भाग मे है ॥१७॥

सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं ।
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं ॥१८॥

सभी जीवों के कर्म छहों दिशाओं में स्थित है और सभी दिशाओं से संग्रहित होते हैं। जीव के सभी प्रदेश, सभी प्रकार के कर्मो से बन्धे हुए है ॥१८॥

उदहीसरिसनामाणं, तीसई कोडिकोडीओ ।
उक्कोसिया ठिई होइ, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१९॥

आवरणिज्जाण दुण्हं पि, वेयणिज्जे तहेव य ।
अंतराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया ॥२०॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इन चार कर्मो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की होती है ॥१९-२०॥

उदहीसरिसनामाणं, सत्तरिं कोडिकोडीओ ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥२१॥

मोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सित्तर कोटाकोटि सागरोपम की है ॥२१॥

तेत्तीससागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया ।
ठिइ उ आउकम्मस्स, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥२२॥

आयु कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति तेंतीस सागरोपम की है ॥२२॥

उदहीसरिसनामाणं, वीसई कोडिकोडीओ ।
नामगोत्ताणं उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्ता जहन्निया ॥२३॥

नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त, और उत्कृष्ट बीस कोटाकोटि सागरोपम की है ॥२३॥

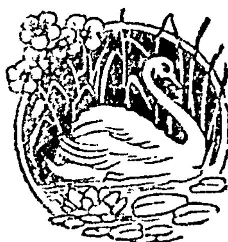
सिद्धाणणंतभागो य, अणुभागा हवंति उ ।
सव्वेसु वि पएसग्गं, सव्वजीवेसु इच्छियं ॥२४॥

सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण कर्मों का रस होता है, किन्तु सभी कर्मों के प्रदेश, सब जीवों से अधिक हैं ॥२४॥

तम्हा एएसिं कम्माणं, अणुभागा वियाणिया ।
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहो ॥२५॥ त्ति बेमि

इस प्रकार कर्मों के विपाक को जानकर बुद्धिमान् पुरुष इनका निरोध एवं क्षय करने का प्रयत्न करे ॥२५॥

—: तेतीसवां अध्ययन समाप्त :—



लेसा णाम चोत्तीसइमं अज्झयणं

-:३४:-

लेसज्झयणं पवक्खामि, आणुपुव्विं जहक्कमं ।
छण्हं पि कम्मलेसाणं, अणुभावे सुणेह मे ॥१॥

अब में लेश्या अध्ययन क्रमानुसार कहता हुँ । तुम छहों लेश्याओं के अनुभवों को मुझ से सुनो ॥१॥

नामाइं वण्ण-रस-गंधफासपरिणामलक्खणं ।
ठाणं ठिइं गइं चाउं, लेसाणं तु सुणेह मे ॥२॥

में लेश्याओं के नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयु के स्वरूप को कहता हूँ सो सुनो ॥२॥

किण्हा नीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य ।
सुक्कलेसा य छट्ठा य, नामाइं तु जहक्कमं ॥३॥

छः लेश्याओं के नाम क्रमानुसार इस प्रकार हैं—कृष्ण-लेश्या, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या ॥३॥

जीमूयनिद्धसंकासा, गवलरिट्ठगसन्निभा ।
खंजंजणनयणनिभा, किण्हलेसा उ वण्णओ ॥४॥

कृष्ण लेश्या का वर्ण, सजल मेघ, भैसे के सींग, अरीठा, गाड़ी की काजली, काजल और आंख की पुतली के समान है ॥४॥

नीलासोगसंकासा, चासपिच्छसमप्पभा ।
वेरुलियनिद्धसंकासा, नीललेसा उ वण्णओ ॥५॥

नील लेश्या का वर्ण–नीले अशोक वृक्ष के समान, चास पक्षी के पंख और स्निग्ध नीलमणि के समान है ॥५॥

अयसीपुप्फसंकासा, कोइलच्छदसन्निभा ।
पारेवयगीवनिभा, काऊलेसा उ वण्णओ ॥६॥

अलसी के फूल, कोयल के पंख और कबूतर की गर्दन के रंग के समान कापोत लेश्या का रंग होता है ॥६॥

हिंगुलधाउसंकासा, तरुणाइच्चसंनिभा ।
सुयतुंडपईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ ॥७॥

हिंगुल धातु, तरुण सूर्य, तोते की चोंच और दीप शिखा के समान तेजो लेश्या का वर्ण होता है ॥७॥

हरियालभेयसंकासा, हलिद्दाभेयसमप्पभा ।
सणासणकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥८॥

हरिताल, हल्दी का टुकड़ा, सण के फूल और असन के फूल के समान पीले वर्ण की पद्म लेश्या है ॥८॥

संखंककुंदसंकासा, खीरपुरसमप्पभा ।
रययहारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥९॥

शुक्ल लेश्या का शंख, अङ्क, मुचकुन्द के फूल, दूध की धारा के समान तथा चांदी के हार के समान श्वेत रंग होता है।

जह कडुयतुंबगरसो, निंबरसो कडुयरोहिणिरसो वा ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो य किण्हाए नायव्वो ॥१०॥

कडुआ तुम्बा, नीम और कटुरोहिणी जैसे कड़वी होती है, उससे भी अनन्त गुण कटु रस–कृष्ण लेश्या का होता है ।

जह तिगडुयस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ नीलाए नायव्वो ॥११॥

मिर्च, सोंठ और गजपीपल के रस, से भी अनन्त गुण तीक्ष्ण रस नील लेश्या का होता है ॥११॥

जह तरुणअंबगरसो, तुवरकविट्ठस्स वावि जारिसओ ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ काऊए नायव्वो ॥१२॥

कच्चे आम के रस, तुवर और कच्चे कपित्थ के रस से भी अनन्तगुण खट्टा रस कापोत लेश्या का है ॥१२॥

जह परिणयंबगरसो, पक्ककविट्ठस्स वावि जारिसओ ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ तेऊए नायव्वो ॥१३॥

पके हुए आम और पके हुए कवीट के रस से भी अनन्त गुण (खटमीठा) रस तेजो लेश्या का होता है ॥१३॥

वरवारुणीए व रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ ।
महुमेरयस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएणं ॥१४॥

प्रधान मदिरा, अनेक प्रकार के आसव, मधु और मेरक नामक मदिरा से भी अनन्तगुण अधिक रस, पद्म लेश्या का होता है ॥१४॥

खज्जूरमुद्दियरसो, खीररसो खंडसक्कररसो वा ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥१५॥

खजूर, द्राक्ष, दूध, खांड और शक्कर का जैसा रस होता है, उससे अनन्त गुण मधुर रस, शुक्ल लेश्या का होता है।

जह गोमडस्स गंधो, सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स ।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥१६॥

मृतक गाय, मरे हुए कुत्ते और मरे हुए सर्प की जैसी गन्ध होती है, उससे भी अनन्त गुणी दुर्गन्ध, अप्रशस्त लेश्याओं की होती है ॥१६॥

जह सुरहिकुसुमगंधो, गंधवासाण पिस्समाणाणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥१७॥

सुगन्धित पुष्पों और घिसे हुए सुगन्धित चन्दनादि पदार्थों की जैसी सुगन्ध होती है. उससे भी अनन्त गुणी सुगन्ध, तीन प्रशस्त लेश्याओं की होती है॥१७॥

जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए य सागपत्ताणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥१८॥

जैसा स्पर्श करवत, गाय की जीभ और शाकपत्रों का होता है, उससे भी अनन्त गुण अधिक स्पर्श—अप्रशस्त लेश्याओं का है ॥१८॥

जह बूरस्स व फासो, नवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं ।
एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥१९॥

बूर नामक वनस्पति, मक्खन और सिरीष के पुष्प से भी अनन्तगुण कोमल स्पर्श, तीन प्रशस्त लेश्याओं का होता है।

तिविहो व नवविहो वा, सत्तावीसइविहेक्कसिओ वा।
दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणामो ॥२०॥

छहों लेश्याओं के परिणाम क्रमशः तीन, नो, सत्तावीस, इक्यासी और दोसौ तेंतालीस प्रकार के होते हैं ॥२०॥

पंचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसुं अविरओ य।
तिव्वारंभपरिणओ, खुद्दो साहस्सिओ नरो ॥२१॥
निद्धंसपरिणामो, निस्संसो अजिइंदिओ।
एयजोगसमाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे ॥२२॥

पांचों आस्रवों में प्रवृत्त, तीन गुप्तियों से अगुप्त, छः काय की हिंसा में रत, तीव्र आरम्भ में वर्तनेवाला, क्षुद्र, साहसी, निर्दय, नृशंस, इन्द्रियों को खुली रखने वाला, दुराचारी पुरुष, कृष्ण लेश्या के परिणाम वाला होता है २१-२२

इस्सा अमरिस अतवो, अविज्जमाया अहीरिया य।
गेही पओसे य सढे, पमत्ते रसलोलुए सायगवेसए य ॥२३॥
आरंभाओ अविरओ, खुद्दो साहस्सिओ नरो।
एयजोगसमाउत्तो, नीललेसं तु परिणमे ॥२४॥

ईर्ष्यालु, कदाग्रही, असहिष्णु, तप करके रहित, अज्ञानी, मायावी, निर्लज्ज, विषयी, द्वेषी, रसलोलुप, आरामपसन्द,

आरम्भी, अविरत, क्षुद्र और साहसिक मनुष्य के नील लेश्या के परिणाम होते हैं ॥२३-२४॥

वंके वंकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए ।
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए ॥२५॥

उप्फालगदुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी ।
एयजोगसमाउत्तो, काऊलेसं तु परिणमे ॥२६॥

वक्र, विषम आचरणवाला, कपटी, असरल, अपने दोषों को छुपानेवाला, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, मर्म-भेदक, दुष्ट वचन बोलनेवाला, चोर, और जलनशील स्वभाववाला, कापोत लेश्या के परिणामवाला होता है ॥२५-२६॥

नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ।
विणीयविणए दंते, जोगवं उवहाणवं ॥२७॥

पियधम्मे दढधम्मे, अवज्जभीरू हिएसए ।
एयजोगसमाउत्तो, तेऊलेसं तु परिणमे ॥२८॥

नम्र, चपलता रहित, निष्कपट, कुतूहल से रहित, विनीत, इन्द्रियों को वश में रखनेवाला, स्वाध्याय तथा तप आदि करने वाला, प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी, पापभीरू और हितैषी जीव, तेजो लेश्या के परिणाम वाला होता है ॥२७-२८॥

पयणुकोहमाणे य, मायालोभे य पयणुए ।
पसंतचित्ते दंतप्पा, जोगवं उवहाणवं ॥२९॥

तहा पयणुवाई य, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, पम्हलेसं तु परिणमे ॥३०॥

जिसमें क्रोध, मान, माया, और लोभ स्वल्प हैं, जो प्रशांत चित्तवाला है, जो मन को वश में रखता है, जो ज्ञान, ध्यान और तप में लगा रहता है, जो थोड़ा बोलनेवाला, उपशान्त और जितेन्द्रिय होता है, उसमें पद्म लेश्या के परिणाम होते हैं ॥२९-३०॥

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्मसुक्काणि झायए।
पसंतचित्ते दंतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु ॥३१॥
सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे ॥३२॥

आर्त्त और रुद्र ध्यान को त्याग कर जो धर्म और शुक्ल ध्यान का चिन्तन करता है, जिसका चित्त शान्त है, इन्द्रियों और मन पर जिसका अधिकार है, समिति तथा गुप्तिवन्त है, जो सराग है अथवा वीतराग है, उपशान्त और जितेन्द्रिय है; उसमें शुक्ल लेश्या के परिणाम होते हैं ॥३१-३२॥

असंखिज्जाणोसप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया।
संखाईया लोगा, लेसाण हवंति ठाणाइं ॥३३॥

असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के जितने समय होते हैं, तथा असंख्यात लोकाकाश के जितने प्रदेश होते हैं, उतने ही लेश्याओं के स्थान होते हैं ॥३३॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसा सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा किण्हलेसाए ॥३४॥

कृष्ण लेश्या की स्थिति कम से कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक तेंतीस सागरोपम और मुहूर्त अधिक होती है।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए ॥३५॥

नील लेश्या की स्थिति, जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दस सागरोपम की है।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा काउलेसाए ॥३६॥

कापोत लेश्या की स्थिति, जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन सागरोपम और पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक होती है ॥३६॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा तेउलेसाए ॥३७॥

तेजो लेश्या की स्थिति कम से कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दो सागरोपम की होती है ॥३७॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही होइ मुहुत्तमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए ॥३८॥

पद्म लेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम की जाननी चाहिए ॥३८॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥३९॥

शुक्ल लेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेंतीस सागरोपम की होती है ॥३९॥

एसा खलु लेसाणं, ओहेण ठिई वण्णिया होइ ।
चउसु वि गईसु एत्तो, लेसाण ठिई तु वोच्छामि ।४०।

इस प्रकार सामान्य रूप से लेश्याओं की स्थिति का वर्णन किया । अब मैं चार गति की अपेक्षा से लेश्या की स्थिति का वर्णन करता हूँ ॥४०॥

दसवाससहस्साइं, काउए ठिई जहन्निया होइ ।
तिण्णुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ॥४१॥

कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की होती है ॥४१॥

तिण्णुदही पलिओवम, असंखभागो जहन्नेण नीलठिई ।
दसउदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ॥४२॥

नील लेश्या की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम और उ० पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की होती है ॥४२॥

दसउदही पलिओवम, असंखभागं जहन्निया होइ ।
तेत्तीससागराइं, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥४३॥

कृष्ण लेश्या की स्थिति ज० पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम और उ० तेंतीस सागरोपम की होती है ॥४३॥

एसा नेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि, तिरियमणुस्साण देवाणं ॥४४॥

इस प्रकार नरक के जीवों की लेश्या स्थिति कही गई । अब तिर्यंच मनुष्य और देवों की लेश्या स्थिति का वर्णन करता हूँ ॥४४॥

अंतोमुहुत्तमद्धं, लेसाण ठिई जहिं जहिं जाउ ।
तिरियाण नराणं वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ॥४५॥

तिर्यंच और मनुष्यों में, शुक्ल लेश्या को छोड़कर जहाँ जो लेश्याएँ हैं । उन लेश्याओं की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥४५॥

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडीओ ।
नवहिं वरिसेहिं ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥४६॥

शुक्ल लेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० नौ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व की होती है ॥४६॥

एसा तिरियनराणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि, लेसाण ठिई उ देवाणं ॥४७॥

यह वर्णन तिर्यंच और मनुष्य की लेश्याओं का हुआ, अब देवों की लेश्याओं की स्थिति कहता हूँ ॥४७॥

दसवाससहस्साइं, किण्हाए ठिई जहन्निया होइ।
पलियमसंखिज्जइमो, उक्कोसो होइ किण्हाए ॥४८॥

कृष्ण लेश्या की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है ॥४८॥

जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेण नीलाए, पलिमसंखं च उक्कोसा ॥४९॥

नील लेश्या की ज० स्थिति तो कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति से एक समय अधिक है और उ० स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है ॥४९॥

जा नीलाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा ॥५०॥

कापोत लेश्या की ज० स्थिति, नील लेश्या की उ० स्थिति से एक समय अधिक और उ० पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है ॥५०॥

तेण परं वोच्छामि, तेऊलेसा जहा सुरगणाणं।
भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणियाणं च ॥५१॥

अब आगे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की तेजो लेश्या की स्थिति कहता हूँ ॥५१॥

पलिओवमं जहन्ना, उक्कोसा सागराओ दुन्नहिया।
पलियमसंखेज्जणं, होइ भागेण तेऊए ॥५२॥

तेजो लेश्या की स्थिति ज० एक पल्योपम और उ० पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की (वैमानिक की) होती है।

दस वाससहस्साइं, तेऊए ठिई जहन्निया होइ।
दुन्नुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ॥५३॥

तेजो लेश्या की स्थिति ज० दस हजार वर्ष (भवनपति और व्यन्तर देवों की अपेक्षा) और उ० पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की होती है।

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं पम्हाए, दस उ मुहुत्ताहियाइ उक्कोसा ॥५४॥

जो उत्कृष्ट स्थिति तेजो लेश्या की है उससे एक समय अधिक पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति होती है और उ० अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम की है ॥५४॥

जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं सुक्काए, तेत्तीस मुहुत्तमब्भहिया ॥५५॥

जो उत्कृष्ट स्थिति पद्म लेश्या की है, उससे एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की ज० स्थिति होती है, और शुक्ल लेश्या की स्थिति उ० तेंतीस सागरोपम की होती है ॥५५॥

किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जइ ॥५६॥

कृष्ण, नील और कापोत ये तीनों अधर्म लेश्याएँ हैं। इनसे जीव दुर्गति में जाता है ॥५६॥

तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जइ ॥५७॥

तेजो पद्म और शुक्ल ये तीन धर्म लेश्याएं हैं । इनसे जीव सुगति में उत्पन्न होता है ॥५७॥

लेसाहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।
न हु कस्सइ उववाओ, परेभवे अत्थि जीवस्स ॥५८॥

सभी लेश्याओं की प्रथम समय की परिणति में किसी भी जीव की परभव मे उत्पत्ति नहीं होती ॥५८॥

लेसाहिं सव्वाहिं, चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।
न हु कस्सइ उववाओ, परेभवे होइ जीवस्स ॥५९॥

सभी लेश्याओं की अन्तिम समय की परिणति में किसी भी जीव की परभव में उत्पत्ति नहीं होती ॥५९॥

अंतमुहुत्तम्मि गए, अंतमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छंति परलोयं ॥६०॥

लेश्या की परिणति के बाद अन्तर्मुहूर्त के बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव, परलोक में जाता है ।६०।

तम्हा एयासि लेसाणं, अणुभावे वियाणिया ।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओऽहिट्ठिए मुणी । त्ति बेमि ।

इसलिए साधु लेश्याओं के अनुभाव-रस को जानकर अप्रशस्त लेश्याओं को छोड़कर प्रशस्त लेश्या अंगीकार करे।६१

॥ चौतीसवां अध्ययन समाप्त ॥

पंचतीसइमं अणगारज्झयणं

:३५:

सुणेह मे एगग्गमणा, मग्गं बुद्धेहि देसियं ।
जमायरंतो भिक्खू, दुक्खाणंतकरे भवे ॥१॥

हे शिष्यों ! सर्वज्ञों द्वारा उपदिष्ट उस मार्ग को एकाग्र मन से मुझ से सुनो, जिसका आचरण करता हुआ भिक्षु, सभी प्रकार के दुःखों का अन्त कर देता है॥१॥

गिहवासं परिच्चज्ज, पवज्जामस्सिए मुणी ।
इमे संगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जंति माणवा ॥२॥

गृहवास का त्यागकर प्रव्रज्या के आश्रय में रहा हुआ मुनि, इन संगों को जाने-जिनमें मनुष्य फँसे हुए हैं ॥२॥

तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अब्बंभ सेवणं ।
इच्छा कामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए ॥३॥

साधु हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, अप्राप्त की इच्छा और लोभ को त्याग देवे ॥३॥

मणोहरं चित्तघरं, मल्लधूवेण वासियं।
सकवाडं पंडुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥४॥

जो घर मनोहर हो, चित्रों से शोभित हो, माला और धूपादि से वासित हो, वस्त्रों से सज्जित तथा किवाड़ों वाला हो, मुनि ऐसे गृह की मन से भी इच्छा नहीं करे ॥४॥

इंदियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए।
दुक्कराइं निवारेउं, कामरागविवड्ढणे ॥५॥

ऐसे काम राग के बढ़ाने वाले उपाश्रय में, साधु के लिए इन्द्रियों को संयम में रखना कठिन है ॥५॥

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व एगओ।
पइरिक्के परकडे वा, वासं तत्थाभिरोयए ॥६॥

अतएव श्मशान, शून्य गृह, वृक्ष के नीचे अथवा दूसरों के लिए बनाये हुए स्थानों में रागद्वेष रहित होकर निवास करने की रुचि रक्खे ॥६॥

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परमसंजए ॥७॥

परम संयमी मुनि ऐसे ही स्थान में ठहरने का संकल्प करे, जो जीवादि की उत्पत्ति से रहित, शुद्ध, बाधाओं से रहित और स्त्रियों से वंचित हो ॥७॥

न सयं गिहाइं कुव्विज्जा, नेव अन्नेहिं कारए।
गिहकम्मसमारंभे, भूयाणं दिस्सए वहो ॥८॥

न तो स्वयं घर बनावे, न दूसरों से ही बनवावे, क्योंकि गृह निर्माण समारम्भ में अनेक जीवों की हिंसा होती है ॥८॥

तसाणं थावराणं च, सुहुमाणं बादराण य ।
तम्हा गिहसमारंभं, संजओ परिवज्जए ॥९॥

गृह निर्माण में त्रस, स्थावर, सूक्ष्म तथा बादर जीवों की हिंसा होती है, इसलिए संयमी मुनि, गृह समारम्भ को त्याग दे ॥९॥

तहेव भत्तपाणेसु, पयणे पयावणेसु य ।
पाणभूयदयट्ठाए, न पये न पयावए ॥१०॥

इसी प्रकार भोजन पानी का पचन पाचन भी हिंसा जनक है। प्राणियों की दया के लिए, न स्वयं भोजन पकावे और न दूसरों से ही पकवावे ॥१०॥

जलधन्ननिस्सिया जीवा, पुढवीकट्ठनिस्सिया ।
हम्मंति भत्तपाणेसु, तम्हा भिक्खू न पयावए ॥११॥

भोजन पकाने में जल और धान्य तथा पृथ्वी और काष्ठ के आश्रित अनेक जीवों की हिंसा होती है। इसलिये भिक्षु, दूसरे से भी नहीं पकवावे ॥११॥

विसप्पे सव्वओधारे, बहुपाणिविणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं न दीवए ॥१२॥

सर्वत्र जिसकी धाराएँ फैली हैं और जो बहुतसे प्राणियों का नाश करनेवाली है, जिसके समान दूसरा कोई शस्त्र नहीं है, ऐसी अग्नि को प्रज्वलित नहीं करे ॥१२॥

हिरण्णं जायरूवं च, मणसा वि न पत्थए ।
समलेट्ठु कंचणे भिक्खू, विरए कयविक्कए ॥१३॥

क्रय विक्रय से विरक्त और मिट्टी तथा स्वर्ण को समान समझने वाला साधु, क्रय विक्रय की इच्छा भी नहीं करे।

किणंतो कइओ होइ, विक्किणंतो य वाणिओ ।
कयविक्कयम्मि वट्टंतो, भिक्खू न भवइ तारिसो ॥१४॥

खरीदने वाला ग्राहक होता है और बेचने वाला वणिक। जो क्रय विक्रय करता है, वह साधु नहीं हो सकता।

भिक्खियव्वं न केयव्वं, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा ।
कयविक्कओ महादोसो, भिक्खवत्ती सुहावहा ॥१५॥

भिक्षु को भिक्षा ही करनी चाहिए, किन्तु मूल्य से कोई भी वस्तु नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि क्रय विक्रय में महा दोष रहे हैं, और भिक्षावृत्ति सुख देने वाली है ॥१५॥

समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिंदियं ।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिंडवायं चरे मुणी ॥१६॥

सूत्रानुसार सामुदानिक और अनिन्दित अनेक कुलों से थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करे और मिले या नहीं मिले, तो सन्तुष्ट रहकर भिक्षावृत्ति का पालन करे ॥१६॥

अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए ।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥१७॥

जिव्हा का लोलुपी नहीं होवे । रसों में गृद्ध नहीं बनें । जिव्हा को वश में रक्खे । मूर्च्छा रहित होवे । स्वाद के लिए भोजन नहीं करे, किन्तु संयम निर्वाह के लिए ही भोजन करे ।

अच्चणं रयणं चेव, वंदणं पूयणं तहा ।
इड्ढीसक्कारसम्माणं, मणसा वि न पत्थए ॥१८॥

साधु अर्चना, रचना, वन्दना, पूजा, ऋद्धि, सत्कार और सन्मान को मन से भी इच्छा नहीं करे । १८॥

सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अणियाणे अकिंचणे ।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥१९॥

साधु मृत्यु पर्यन्त अपरिग्रही, निदान रहित और काया का ममत्व त्यागकर, शुक्ल ध्यान ध्याता हुआ विचरता रहे ।

निज्जूहिऊण आहारं, कालधम्मे उवट्ठिए ।
चइऊण माणुसं बोन्दिं, पहू दुक्खा विमुच्चई ॥२०॥

इस प्रकार सामर्थ्यवान् मुनि, मृत्यु समय आने पर आहारादि के त्याग पूर्वक, मनुष्य शरीर को छोड़कर सभी दुखों से मुक्त हो जाता है ॥२०॥

निम्ममे निरहंकारे, वीयरागो अणासवो ।
संपत्तो केवलं नाणं, सासयं परिणिव्वुए ।२१। त्ति बेमि

वह ममत्व रहित, अहंकार से शून्य, वीतरागी और निरास्रवी होकर तथा केवलज्ञान पाकर सदा के लिए सुखी हो जाता है ॥२१॥

॥:॥ पैंतीसवां अध्ययन समाप्त ॥:॥

जीवाजीवविभत्ती णाम छत्तीसइमं अज्झयणं

-:३६:-

जीवाजीवविभत्तिं मे, सुणेह एगमणा इओ ।
जं जाणिऊण भिक्खू, सम्मं जयइ संजमे ॥१॥

हे शिष्यों ! तुम जीव और अजीव के भेद को मुझ से सुनो। जिसके जानने से भिक्षु, संयम में यत्न करता है ॥१॥

जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए ।
अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए ॥२॥

यह लोक, जीव और अजीवमय कहा गया है और जहां केवल अजीव का देशरूप आकाश ही है, वह अलोक कहा है ॥

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा ।
परूवणा तेसिं भवे, जीवाणमजीवाण य ॥३॥

जीव और अजीव द्रव्य का प्रतिपादन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन चार प्रकार से होता है ॥३॥

रूविणो चेव रूवी य, अजीवा दुविहा भवे ।
अरूवी दसहा वुत्ता, रूविणो य चउव्विहा ॥४॥

अजीव दो प्रकार के हैं—रूपी और अरूपी। अरूपी अजीव दस प्रकार के और रूपी अजीव चार प्रकार के होते हैं।

धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए ।
अहम्मे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए ॥५॥

आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए ।
अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे ॥६॥

धर्मास्तिकाय का १ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का १ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश, आकाशास्तिकाय के १ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश, यों तीनों के ९ और दसवां काल—यों अरूपी अजीव के १० भेद हुए ॥५-६॥

धम्माधम्मे य दो चेव, लोगमित्ता वियाहिया ।
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए ॥७॥

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, लोक प्रमाण कही गई। आकाश, लोक और अलोक में भी है और समय, समय क्षेत्र प्रमाण है ॥७॥

धम्माधम्मागासा तिन्नि वि एए अणाइया ।
अपज्जवसिया चेव, सव्वद्धं तु वियाहिया ॥८॥

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाशास्तिकाय,

ये तीनों द्रव्य, सर्व कालिक और अनादि अनन्त कहे हैं ॥८॥

समए वि संतइं पप्प, एवमेव वियाहिया ।
आएसं पप्प साईए, सपज्जवसिए वि य ॥९॥

समय, संतति की अपेक्षा अनादि अनन्त हैं और आदेश की अपेक्षा सादिसान्त है ॥९॥

खंधा य खंधदेसा य, तप्पएसा तहेव य ।
परमाणुणो य बोधव्वा, रूविणो य चउव्विहा ॥१०॥

रूपी द्रव्य के स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु–ये चार भेद हैं ॥१०॥

एगत्तेण पुहुत्तेण, खंधा य परमाणु य ।
लोएगदेसे लोए य, भइयव्वा ते उ खेत्तओ ॥
(सुहमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा–पठांतर)
एत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥११॥

परमाणुओं के परस्पर मिलने से स्कन्ध होता है, और भिन्न-भिन्न होने से परमाणु कहाते हैं। क्षेत्रापेक्षा स्कन्ध, लोक के एक देश में होता है और परमाणु सम्पूर्ण लोक व्यापी होता है। अब काल की दृष्टि से चार भेद कहते हैं (यह गाथा षट्-पाद गाथा भी कहलाती है) ॥११॥

संतइं पप्प तेऽणाई, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१२॥

स्कन्ध और परमाणु, सन्तति की अपेक्षा अनादि अनन्त तथा स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त है ॥१२॥

असंखकालमुक्कोसं, एक्कं समयं जहन्नयं ।
अजीवाण य रूवीणं, ठिई एसा वियाहिया ॥१३॥

रूपी अजीव द्रव्य की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यातकाल की है ॥१३॥

अणंतकालमुक्कोसं, एक्कं समयं जहन्नयं ।
अजीवाण य रूवीण, अंतरेयं वियाहियं ॥१४॥

रूपी अजीव द्रव्यों का अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अनन्तकाल का कहा है ॥१४॥

वण्णओ गंधओ चेव, रसओ फासओ तहा ।
संठाणओ य विन्नेओ, परिणामो तेसिं पंचहा ॥१५॥

स्कन्ध और परमाणु का स्वभाव, वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से पांच प्रकार का है १५

वण्णओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया ।
किण्हा नीला य लोहिया, हलिद्दा सुक्किला तहा ॥१६॥

वर्ण परिणति पांच प्रकार की होती है—काला, नीला, लाल, पीला और श्वेत ॥१६॥

गंधओ परिणया जे उ, दुविहा ते वियाहिया ।
सुब्भिगंधपरिणामा, दुब्भिगंधा तहेव य ॥१७॥

गन्ध परिणति दो प्रकार की—सुगन्ध परिणति और दुर्गन्ध परिणति ॥१७॥

रसओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया ।
तित्तकडुयकसाया, अंबिला महुरा तहा ॥१८॥

पुद्गल की रस परिणति पांच प्रकार की होती है—तीक्ष्ण, कटु, कसैला, खट्टा और मीठा ॥१८॥

फासओ परिणया जे उ, अट्ठहा ते पकित्तिया ।
कक्खडा मउया चेव, गरुया लहुया तहा ॥१९॥

सीया उण्हा य निद्धा य, तहा लुक्खा य आहिया ।
इय फासपरिणया एए, पुग्गला समुदाहिया ॥२०॥

पुद्गलों की स्पर्श परिणति आठ प्रकार की कही है—यथा—कर्कश, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष ॥१९-२०॥

संठाणओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया ।
परिमंडला य वट्टा य, तंसा चउरंसमायया ॥२१॥

संस्थान परिणति पांच प्रकार की—परिमण्डल, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और लम्बा ॥२१॥

वण्णओ जे भवे किण्हे, भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२२॥

जो पुद्गल काले वर्ण का है, उसमें गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की भजना है ॥२२॥

वण्णओ जे भवे नीले, भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२३॥

जो नील वर्ण वाले पुद्गल हैं, उनमें (पूर्ववत्) ।२३।

वण्णओ लोहिए जे उ, भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२४॥

जो लाल वर्ण के पुद्गल हैं० ॥२४॥

वण्णओ पीयए जे उ, भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२५॥

जो पीत वर्ण के पुद्गल हैं ॥२५॥

वण्णओ सुक्किले जे उ, भइए से उ गंधओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२६॥

जो शुक्ल वर्ण के पुद्गल हैं ॥२६॥

गंधओ जे भवे सुब्भी, भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२७॥

जो सुगन्धित पुद्गल हैं, उनमें वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान की भजना होती है ॥२७॥

गंधओ जे भवे दुब्भी, भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२८॥

जो दुर्गन्ध वाले द्रव्य हैं, उनमें (पूर्ववत्) ॥२८॥

रसओ तित्तए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२९॥

जो तिक्त रसवाले पुद्गल हैं उनमें वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान की भजना है ॥२९॥

रसओ कडुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३०॥

जो कटु रसवाले पुद्गल हैं ॥३०॥

रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३१॥

जो कषाय रसवाले द्रव्य हैं० ॥३१॥

रसओ अंबिले जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३२॥

जो आम्ल रस वाले पदार्थ हैं० ॥३२॥

रसओ महुरए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३३॥

जो मधुर रसवाले द्रव्य हैं० ॥३३॥

फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३४॥

जो कठोर स्पर्श वाले पुद्गल हैं, उनमें गन्ध, रस और संस्थान की भजना है ॥३४॥

फासओ मउए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३५॥

जो कोमल स्पर्श वाले० ॥३५॥

फासओ गुरुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३६॥

जो भारी स्पर्श वाले० ॥३६॥

फासओ लहुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३७॥

जो हल्के स्पर्श वाले० ॥३७॥

फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३८॥

जो शीत स्पर्श वाले० ॥३८॥

फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३९॥

जो उष्ण स्पर्श वाले० ॥३९॥

फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥४०॥

जो स्निग्ध स्पर्श वाले० ॥४०॥

फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥४१॥

जो रूक्ष स्पर्श वाले० ॥४१॥

परिमंडलसंठाणे, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४२॥

जो परिमण्डल संस्थान वाले पुद्गल हैं, उनमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की भजना है ॥४२॥

संठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४३॥

जो वृत्ताकर संस्थान वाले० ॥४३॥

संठाणओ भवे तंसे, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४४॥

जो त्रिकोण संस्थान वाले० ॥४४॥

संठाणओ जे चउरंसे, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४५॥

जो चोरस संस्थान वाले० ॥४५॥

जे आययसंठाणे, भइए से उ वण्णओ ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४६॥

जो लम्बे संस्थान वाले ॥४६॥

एसा अजीवविभत्ती, समासेण वियाहिया।
इत्तो जीवविभत्तिं, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥४७॥

इस प्रकार अजीव द्रव्य विभाग का वर्णन संक्षेप से किया, अब जीव विभाग का वर्णन अनुक्रम से करता हूँ।४७।

संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया।
सिद्धा णेगविहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥४८॥

जीव दो प्रकार के हैं-संसार में रहने वाले और सिद्ध। सिद्ध अनेक प्रकार के हैं। उनके भेद मुझ से सुनो ॥४८॥

इत्थीपुरिससिद्धा य, तहेव य नपुंसगा ।
सलिंगे अन्नलिंगे य, गिहिलिंगे तहेव य ॥४९॥

स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंग सिद्ध, नपुंसकलिंग सिद्ध, सलिंग सिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध और गृहलिंग सिद्ध, आदि ॥४९॥

उक्कोसोगाहणाए य, जहन्नमज्झिमाइ य।
उड्ढं अहे य तिरियं च, समुद्दम्मि जलम्मि य ॥५०॥

जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना से ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग् लोक से सिद्ध हो सकते हैं। समुद्र और जलाशय से भी सिद्ध हो सकते हैं ॥५०॥

दस य नपुंसएसुं, वीसं इत्थियासु य।
पुरिसेसु य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥५१॥

एक समय में नपुंसकलिंगी दस, स्त्रीलिंगी बीस, पुरुष लिंगी एकसोआठ सिद्ध हो सकते हैं ॥५१॥

चत्तारि य गिहिलिंगे, अन्नलिंगे दसेव य।
सलिंगेण अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥५२॥

एक समय में गृहलिंग म चार, अन्यलिंग में दस, सलिंग में एकसोआठ, सिद्ध हो सकते हैं ॥५२॥

उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झंने जुगवं दुवे।
चत्तारि य जहन्नाए, जवमज्झट्ठुत्तरं सयं ॥५३॥

एक समय में जघन्य अवगाहना से चार, उत्कृष्ट अवगाहना से दो और मध्यम अवगाहना से एकसोआठ सिद्ध हो सकते हैं ॥५३॥

चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेव य।
सयं च अट्ठुत्तरं तिरियलोए, समएणेगेण सिज्झई धुवं।५४।

एक समय में ऊर्ध्व लोक में चार, समुद्र में से दो, नदी आदि जलाशय में से तीन, अधोलोक में से बीस और तिर्यक् लोक में से १०८, निश्चय ही सिद्ध होते हैं ॥५४॥

कहिं पडिहया सिद्धा ?, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ?
कहिं बोंदिं चइत्ताणं ?, कत्थ गंतूण सिज्झई ? ।५५।

प्रश्न—सिद्ध कहां जाकर रुकते हैं ? कहां ठहरते हैं ? शरीर का त्याग कहां करते हैं और कहां जाकर सिद्ध होते हैं?

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोंदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झई ॥५६॥

उत्तर-सिद्ध अलोक की सीमा पर रुकते हैं और लोक के अग्रभाग पर ठहरते हैं। यहां-मनुष्य लोक में शरीर छोड़ कर लोकाग्र पर जाकर सिद्ध होते हैं ॥५६॥

बारसहिं जोयणेहिं, सव्वट्ठस्सुवरिं भवे।
ईसीपब्भारनामा उ, पुढवी छत्त संठिया ॥५७॥

सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर, छत्र के आकार वाली ईषत्प्राग्भार नामक पृथ्वी है ॥५७॥

पणयालसयसहस्सा, जोयणाणं तु आयया।
तावइयं चेव वित्थिण्णा, तिगुणो तस्सेव परिरओ।५८।

वह पेंतालीसलाख योजन की लम्बी, इतनी ही चौड़ी और तीन गुने से अधिक परिधि वाली है ॥५८॥

अट्ठजोयणबाहल्ला, सा मज्झम्मि वियाहिया।
परिहायंती चरिमंते, मच्छिपत्ताउ तणुयरी ॥५९॥

वह पृथ्वी, मध्य में आठ योजन जाड़ी है और फिर कमी होते होते अन्त में मक्खी के पंख के समान पतली है।

अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी निम्मला सहावेणं।
उत्ताणगच्छत्तयसंठिया य, भणिया जिणवरेहिं ॥६०॥

वह ईषत्प्राग्भार पृथ्वी, स्वभाव से श्वेत, निर्मल और अर्जुन नामक श्वेत स्वर्ण जैसी है। उल्टे छत्र के समान उसका आकार है, ऐसा जिनेश्वर ने कहा है ॥६०॥

संखंककुंदसंकासा, पंडुरा निम्मला सुहा ।
सीयाए जोयणे तत्तो, लोयंतो उ वियाहिश्रो ॥६१॥

वह सिद्धशिला पृथ्वी, शंख, अंक, रत्न और मुचकुन्द के पुष्प के समान अत्यन्त श्वेत, निर्मल और सुहावनी है। उसके ऊपर लोकान्त कहा है ॥६१॥

जोयणस्स उ जो तत्थ, कोसो उवरिमो भवे ।
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६२॥

उस एक योजन के ऊपर के कोस के छठे भाग में सिद्ध भगवान् रहे हुए हैं ॥६२॥

तत्थ सिद्धा महाभागा, लोयग्गम्मि पइट्ठिया ।
भवप्पवंचउम्मुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥६३॥

सर्वोत्तम सिद्ध स्थान को प्राप्त होने वाले महा भाग्य-शाली जीव, इस संसार-चक्र के प्रपञ्च से मुक्त होकर लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित हुए हैं ॥६३॥

उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि य ।
तिभागहीणो तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६४॥

जो अवगाहना अन्तिम शरीर की होती है, उससे तीसरे भाग में कम अवगाहना सिद्धों की होती है ॥६४॥

एगत्तेण साईया, अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाईया, अपज्जवसिया वि य ॥६५॥

वहां एक सिद्ध की अपेक्षा से सादि अनन्त काल है, किन्तु समस्त सिद्धों की अपेक्षा अनादि अनन्त काल है ।६५।

अरूविणो जीवघणा, णाणदंसणसण्णिया ।
अउलं सुहं संपत्ता, उवमा जस्स णत्थि उ ॥६६॥

वे सिद्ध भगवान्, घनरूप, ज्ञान और दर्शन के उपयोग वाले तथा उपमा रहित हैं। वे अतुल सुख को प्राप्त हो गये हैं, जिनके लिए कोई उपमा नहीं है ॥६६॥

लोगेगदेसे ते सव्वे, णाणदंसणसन्निया ।
संसारपारनित्थिण्णा, सिद्धिं वरगइं गया ॥६७॥

वे सभी सिद्ध भगवान् संसार के उस पार पहुँचकर ज्ञान दर्शन के उपयोग से सर्वोत्तम सिद्ध गति को प्राप्त होकर एक देश में ही रहे हुए हैं ॥६७॥

संसारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया ।
तसा य थावरा चेव, थावरा तिविहा तहिं ॥६८॥

संसारी जीव त्रस और स्थावर ऐसे दो प्रकार के हैं। इनमें स्थावर जीव के तीन भेद कहे हैं ॥६८॥

पुढवी आउजीवा य, तहेव य वणस्सई ।
इच्चेए थावरा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥६९॥

पृथ्वी, अप और वनस्पति काय, इस प्रकार स्थावर काय के तीन भेद हैं। अब इनके भेदों को सुनो ॥६९॥

दुविहा पुढवीजीवा य, सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेव दुहा पुणो ॥७०॥

पृथ्वीकाय के दो भेद-सूक्ष्म और बादर । इनके प्रत्येक के पुनः पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं ॥७०॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ।
सण्हा खरा य बोधव्वा, सण्हा सत्तविहा तहिं ॥७१॥

पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय जीवों के दो भेद हैं—कोमल और कठोर । इनमें से कोमल के सात भेद हैं ॥७१॥

किण्हा नीला य रुहिरा य, हालिद्दा सुक्किला तहा ।
पंडुपणगमट्टिया, खरा छत्तीसईविहा ॥७२॥

काली, नीली, लाल, पीली, श्वेत, पाण्डु तथा पनक—मृतिका । कठोर पृथ्वीकाय के छत्तीस प्रकार हैं ॥७२॥

पुढवी य सक्करा वालुया य, उवले सिला य लोणूसे ।
अय तंब तउय-सीसग-रुप्प-सुवण्णे य वइरे य ॥७३॥
हरियाले हिंगुलुए, मणोसिला सासगंजणपवाले ।
अब्भपडलब्भवालुय, बायरकाए मणिविहाणा ॥७४॥
गोमेज्जए य रुयगे, अंके फलिहे य लोहिअक्खे य ।
मरगय-मसारगल्ले, भुयमोयग इंदनीले य ॥७५॥
चंदण गेरुय हंसगब्भे, पुलए सोगंधिए य बोधव्वे ।
चंदप्पह वेरुलिए, जलकंते सूरकंते य ॥७६॥

१ शुद्ध पृथ्वी २ शर्करा ३ वालुका ४ उपल ५ शिला ६ लवण ७ खारी मिट्टी ८ लोहा ९ तरुआ १० ताम्बा ११ सीसा १२ रूपा १३ सोना १४ वज्र १५ हरिताल १६ हिंगुलु १७ मनसिल १८ सासक १९ अंजन २० प्रवाल २१ अभ्रक और २२ अभ्रवालुक। मणियों के भेद—२३ गोमेदक, २४ रुचक २५ अंक रत्न २६ स्फटिक एवं लोहिताक्ष रत्न २७ मरकत और मसारगल्ल २८ भुजमोचक २९ इन्द्रनील ३० चन्दन गेरुक हंसगर्भ ३१ पुलक ३२ सौगन्धिक ३३ चन्द्रप्रभः ३४ वैडूर्य ३५ जलकान्त और ३६ सूर्य—कान्तमणि ॥७३ से ७६॥

एए खरपुढवीए, भेया छत्तीसमाहिया ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥७७॥

ये छत्तीस भेद कठिन पृथ्वीकाय के कहे, किन्तु इन दोनों में सूक्ष्मकाय का तो एक ही भेद कहा है ॥७७॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥७८॥

सूक्ष्म पृथ्वीकाय समस्त लोक में व्याप्त है, किन्तु बादर तो लोक के देश भाग में ही है। अब इनका काल विभाग चार प्रकार से कहता हूँ ॥७८॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥७९॥

पृथ्वीकाय, संतति की अपेक्षा अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त है ॥७९॥

बावीससहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ।
आउठिई पुढवीणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥८०॥

पृथ्वीकाय के जीवों की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीसहजार वर्ष की है ॥८०॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायठिई पुढवीणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥८१॥

पृथ्वीकाय के जीवों की काय स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त उ० उसी काय में जन्म मरण करता रहे, तो असंख्य काल की है।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, पुढवीजीवाण अंतरं ॥८२॥

स्वकाय की अपेक्षा पृथ्वीकाय के जीवों का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्त काल का है ॥८२॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥८३॥

इन जीवों के वर्ण से, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से हजारों भेद होते हैं ॥८३॥

दुविहा आउजीवा उ, सुहुमाबायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेव दुहा पुणो ॥८४॥

अपकाय के जीव, सूक्ष्म और बादर यों दो प्रकार के हैं, फिर प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद भी हैं ॥८४॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया ।
सुद्धोदए य उस्से, हरतणु महिया हिमे ॥८५॥

बादर अपकाय के पांच प्रकार हैं,-शुद्धोदक, ओस, तृण के ऊपर आने वाला-हरतनु, धूंवर और बर्फ़ का पानी ।

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोयम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥८६॥

सूक्ष्म अपकाय के जीव, भेद रहित मात्र एक ही प्रकार के होते हैं और वे समस्त लोक में व्याप्त हैं । बादर अपकाय लोक के एक हिस्से में स्थित है ॥८६॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥८७॥

अपकाय, प्रवाह की अपेक्षा अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा आदि अन्त सहित हैं ॥८७॥

सत्तेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ।
आउठिई आऊणं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ॥८८॥

अपकाय के जीवों की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० सात हजार वर्ष की है ॥८८॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायठिई आऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥८९॥

काय स्थिति—उसी काय में रहने की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० असंख्य काल की होती है ॥८६॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, आउजीवाण अंतरं ॥६०॥

स्वकाय छोड़कर दूसरी काय में जाने और पुनः अप-काय में आने का समयान्तर ज० अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्त काल का है ॥६०॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥६१॥

अपकाय के जीवों के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश से हजारों विधान—प्रकार होते हैं ॥६१॥

दुविहा वणस्सईजीवा, सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेव दुहा पुणो ॥६२॥

वनस्पति जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर । इन के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो प्रकार होते हैं ॥६२॥

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ।
साहारणसरीरा य, पत्तेगा य तहेव य ॥६३॥

पर्याप्त बादर वनस्पतिकाय के दो भेद कहे गये हैं—साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर ॥६३॥

पत्तेयसरीरा उ, णेगहा ते पकित्तिया ।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य, लया वल्ली तणा तहा ॥६४॥

प्रत्येक शरीर वनस्पति काय के अनेक प्रकार हैं। जैसे—वृक्ष, गुच्छे, गुल्म, लता, वेलि और तृण आदि ॥९४॥

वलया पव्वया कुहुणा, जलरुहा ओसही तणा।
हरियकाया य बोधव्वा, पत्तेगाइ वियाहिया ॥९५॥

वलय, पर्वज, कुहण, जलरुह, ओषधि, तृण और हरितकाय इत्यादि भेद प्रत्येक शरीर वनस्पतिकाय के कहे हैं।

साहारणसरीरा उ, गोगहा ते पकित्तिया।
आलुए मूलए चेव, सिंगबेरे तहेव य ॥९६॥

साधारण शरीर वनस्पति काय के अनेक भेद कहे हैं, जैसे आलू, मूली, और शृंगबेर—अदरक आदि ॥९६॥

हिरिली सिरिली, सिस्सिरिली जावई केयकंदली।
पलंडु-लसणकंदे य, कंदली य कुहुव्वए ॥९७॥
लोहिणी हुयथी हुय, कुहगा य तहेव य।
कण्हे य वज्जकंदे य, कंदे सूरणए तहा ॥९८॥
अस्सकण्णी य बोधव्वा, सीहकण्णी तहेव य।
मुसुंढी य हलिद्दा य, णेगहा एवमायओ ॥९९॥

हरिली, सिरिली, सिस्सिरिली, यावतिक, कन्दली, पलांडु, लशुन, कन्दली, कुहुव्रत, लोहिनी, हुताक्षी, हूत, कुहक, कृष्ण, वज्रकन्द, सूरणकन्द, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुंढी और हरिद्राकन्द इत्यादि अनेक प्रकार की साधारण शरीर वनस्पति काय होती है ॥९७–९९॥

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥१००॥

सूक्ष्म वनस्पति काय के जीव, भेद रहित मात्र एक ही प्रकार के होते हैं और वे समस्त लोक में व्याप्त हैं । बादर जीव, लोक के अमुक हिस्से में है ॥१००॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१०१॥

प्रवाह की अपेक्षा वनस्पतिकाय, आदि अन्त रहित और स्थिति की अपेक्षा आदि अन्त सहित हैं ॥१०१॥

दस चेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ।
वणस्सईणं आउं तु, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ॥१०२॥

वनस्पतिकाय के जीवों की आयुस्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त उ० दसहजार वर्ष की होती है ॥१०२॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ।
कायठिई पणगाणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥१०३॥

वनस्पतिकाय के जीवों की कायस्थिति, उसी काय में जन्म मरण करते रहने की अपेक्षा ज० अन्तर्मुहूर्त, उ० अनन्त काल है ॥१०३॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, पणगजीवाण अंतरं ॥१०४॥

स्वकाय छोड़कर पुनः उत्पन्न होने का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० असंख्यात काल का है ॥१०४॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१०५॥

वनस्पतिकाय के जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश से हजारों विधान हैं ॥१०५॥

इच्चेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया ।
इत्तो उ तसे तिविहे, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥१०६॥

इस प्रकार तीन स्थावरकाय का संक्षेप से वर्णन किया, अब तीन प्रकार के त्रस जीवों का क्रमशः वर्णन करूँगा ।

तेऊ वाऊ य बोधव्वा, उराला य तसा तहा ।
इच्चेए तसा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१०७॥

तेजसकाय, वायुकाय और प्रधान त्रसकाय, इस तरह तीन प्रकार के त्रसकाय हैं । इनके भेद मुझसे सुनो ॥१०७॥

दुविहा तेउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेव दुहा पुणो १०८॥

तेजसकाय के जीव, सूक्ष्म और बादर-ऐसे दो प्रकार के हैं । इनमें भी प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं ।

बायरा जे उ पज्जत्ता, णेगहा ते वियाहिया ।
इंगाले मुम्मुरे अगणी, अच्चिं जाला तहेव य ॥१०९॥

उक्का विज्जू य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया ११०॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥१११॥

पर्याप्त बादर अग्निकाय अनेक प्रकार से कही है। जैसे- अंगार, चिनगारियां, अग्नि, दीपशिखा, मूल रहित अग्नि शिखा, उल्का और विद्युत इत्यादि अनेक भेद हैं। इसमें सूक्ष्म तो भेद रहित मात्र एक ही प्रकार की है और समस्त लोक में व्याप्त है तथा बादर तेजसकाय लोक के किसी हिस्से में होती है। अब इनका काल विभाग चार प्रकार से कहता हूं।

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥११२॥

अग्निकाय के जीव, प्रवाह की अपेक्षा अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सादिसान्त है ॥११२॥

तिण्णेव अहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया ।
आउठिई तेऊणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥११३॥

अग्निकाय के जीवों की आयु स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० तीन दिन रात की होती है ॥११३॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ।
कायठिई तेऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥११४॥

कायस्थिति, सततवास रहने पर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० असंख्यकाल की होती है ॥११४॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, तेउजीवाण अंतरं ॥११५॥

तेजस्काय को छोड़कर जीव, पुनः उसीमें जन्मे, तो इसमें अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्तकाल का होता है।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥११६॥

इनके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश से हजारों विधान होते हैं ॥११६॥

दुविहा वाउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेम दुहा पुणो ॥११७॥

वायुकाय के जीव, सूक्ष्म और बादर-ऐसे दो प्रकार के होते हैं। इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं।

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया ।
उक्कलिया-मंडलिया घण-गुंजा-सुद्धवाया य ॥११८॥

पर्याप्त बादर वायुकाय के पांच प्रकार हैं १ ठहर-ठहर कर चलने वाली, २ चक्राकार, ३ घनवायु, ४ गुंजने वाली और ५ शुद्ध वायु ॥११८॥

संवट्टगवाया य, णेगहा एवमायओ ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥११९॥

तथा संवर्तक वायु इत्यादि अनेक भेद हैं। सुक्ष्म वायु काय भेदों से रहित मात्र एक ही प्रकार की होती है ॥११९॥

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥१२०॥

सूक्ष्म वायु, समस्त लोक में है और बादर वायु लोक के एक देश में है। अब इनके काल विभाग का चार प्रकार से वर्णन करूँगा ॥१२०॥

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१२१॥

प्रवाहापेक्षा वायुकाय अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त है ॥१२१॥

तिण्णेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।
आउठिई वाऊणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१२२॥

वायुकाय के जीवों की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उ० तीन हजार वर्ष की होती है ॥१२२॥

असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया।
कायठिई वाऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥१२३॥

वायुकाय के जीवों की काय स्थिति इसी काय में लगातार रहने की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उ० असंख्य काल की है ॥१२३॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, वाऊजीवाण अंतरं ॥१२४॥

वायुकाय को छोड़कर पुनः उसी में उत्पन्न होने का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्तकाल का है ॥१२४॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१२५॥

वायु जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश से हजारों विधान होते हैं ॥१२५॥

ओराला तसा जे उ, चउहा ते पकित्तिया ।
बेइंदिया तेइंदिया, चउरो पंचिंदिया चेव ॥१२६॥

बड़े त्रसकाय जीवों के चार प्रकार कहे हैं,—दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ॥१२६॥

बेइंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१२७॥

दो इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं। इनके उत्तर भेद मुझ से सुनो ॥१२७॥

किमिणो सोमंगला चेव, अलसा माइवाहया ।
वासीमुहा य सिप्पीया, संखा संखणगा तहा ॥१२८॥
पल्लोयाणुल्लया चेव, तहेव य वराडगा ।
जलूगा जालगा चेव, चंदणा य तहेव य ॥१२९॥

कृमि, सुमंगल, अलसिया, मातृवाहक, वासीमुख, सीप, शंख, और लघुशंख आदि। पल्लक, अनुपल्लक, कपर्दिका, जोंक, जालक और चन्दनिया आदि अनेक प्रकार के दो इन्द्रिय वाले जीव कहे गये हैं ॥१२८-१२९॥

इह बेइंदिया एए, णेगहा एवमायओ ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥१३०॥

ये द्वीन्द्रिय जीव, अनेक प्रकार के हैं और लोक के अमुक विभाग में ही रहते हैं, सर्वत्र नहीं ॥१३०

संतइं पप्पणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१३१॥

ये जीव, प्रवाह की अपेक्षा से आदि अन्त रहित हैं और स्थिति की अपेक्षा से आदि अन्त सहित हैं ॥१३१॥

वासाइं बारसाचेव उक्कोसेण वियाहिया ।
बेइंदियआउठिई, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१३२॥

बेइन्द्रिय जीवों की आयुस्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष की है ॥१३२॥

संखेज्जकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ।
बेइंदियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥१३३॥

सतत निवास की अपेक्षा बेन्द्रिय जीवों को काय स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० संख्यात काल की है।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
बेइन्दियजीवाणं, अंतरं च वियाहियं ॥१३४॥

यह शरीर छोड़ कर पुनः बेन्द्रिय काय में जन्म लेने का अन्तरकाल ज० अन्तर्मुहूर्त, उ० अनन्त काल का है ।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१३५॥

इनके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा हजारों भेद होते हैं ॥१३५॥

तेइन्दिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१३६॥

तेइन्द्रिय जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं । अब इनके उत्तर भेद मुझ से सुनो ॥१३६॥

कुंथुपिवीलिउड्डंसा, उक्कलुदेहिया तहा ।
तणहारा कट्ठहारा य, मालुगा पत्तहारगा ॥१३७॥
कप्पासट्ठिमिंजा य, तिंदुगा तउसमिंजगा ।
सदावरी य गुम्मी य, बोधव्वा इन्दगाइया ॥१३८॥
इन्दगोवगमाईया, णेगहा एवमायओ ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥१३९॥

कुन्थू, पिपीलिका, उद्दंसा, उपदेहिका, तृणहारक, काष्ठहारक, मालुका, पत्राहारक, कापासिक, अस्थिजात,

तिन्दुक, त्रपुष, मिजग, शतावरी, गुल्मी, इन्द्रकायिक तथा इन्द्रगोपक इत्यादि अनेक प्रकार के तेइन्द्रिय जीव हैं। ये लोक के एक भाग में ही रहते हैं, सर्वत्र नहीं ॥१३७ से १३९॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१४०॥

तेइन्द्रियकाय प्रवाह की अपेक्षा आदि अन्त रहित और स्थिति की अपेक्षा आदि अन्त सहित हैं ॥१४०॥

एगूणपण्णहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
तेइन्दियआउठिई, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१४१॥

तेइन्द्रिय जीवों की आयु स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० उनचास दिन रात की होती है ॥१४१॥

संखिज्जकालमुक्कोसा, अंतोमुहुत्तं जहन्निया।
तेइन्दियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥१४२॥

सतत निवास की अपेक्षा तेइन्द्रिय जीवों की कायस्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त, उ० संख्यात काल की है ॥१४२॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
तेइन्दियजीवाणं, अंतरं तु वियाहियं ॥१४३॥

इनके अन्य काय में जन्म लेकर पुनः तेइन्द्रिय काय में उत्पन्न होने का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त, उ० अनन्त काल का है।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१४४॥

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश से तेइन्द्रिय जीवों के हजारों भेद होते हैं ॥१४४॥

चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१४५॥

पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार चार इन्द्रिय वाले जीवों के दो भेद हैं। अब इनके उत्तर भेद सुनो ॥१४५॥

अंधिया पोत्तिया चेव, मच्छिया मसगा तहा।
भमरे कीडपयंगे य, ढिंकुणे कुंकुणे तहा ॥१४६॥
कुक्कुडे सिंगरीडी य, नंदावत्ते य विच्छिए।
डोले भिंगिरीडी य, विरिली अच्छिवेहए ॥१४७॥
अच्छिले माहए अच्छि-विचित्ते चित्तपत्तए।
उहिंजलिया जलकारी य, नियया तंबगाइया ॥१४८॥
इय चउरिंदिया एए, णेगहा एवमायओ।
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे परिकित्तिया ॥१४९॥

अन्धक, पौतिक, मक्षिका, मशक, भ्रमर, कीट, पतंग, ढिकण, कुंकण, कुकुंट, सिगरीटी, नन्द्यावर्त बिच्छु, डोल, भृंग रीटक, अक्षिवेधक, अक्षिल, मागध, अक्षिरोड़क, विचित्र, चित्र-पत्रक, उपधिजलका, जलकारी, नीचक और ताम्रक आदि अनेक प्रकार के चार इन्द्रिय वाले जीव कहे हैं। ये सब लोक के एक हिस्से में रहते हैं ॥१४६ से १४९॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१५०॥

प्रवाह की अपेक्षा से जीव आदि अन्त से रहित हैं और स्थिति की अपेक्षा आदि अन्त सहित है ॥१५०॥

छच्चेव य मासा उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
चउरिंदियआउठिई, अंतोमुहुत्तं जहन्निया १५१॥

चारइन्द्रिय वाले जीवों की आयु स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० छः महीने की कही है ॥१५१॥

संखिज्जकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
चउरिंदियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥१५२॥

चतुरेन्द्रिय काय में ही निरन्तर जीव रहे, तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उ० संख्यात काल तक रहता है ॥१५२॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, अंतरेयं वियाहियं ॥१५३॥

अन्य काय में उत्पन्न होकर पुनः चतुरेन्द्रिय काय में जन्म लेने का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त, उ० अनंतकाल का है ।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१५४॥

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा चतुरेन्द्रिय जीवों के हजारों भेद होते हैं ॥१५४॥

पंचिंदिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते, वियाहिया ।
णेरइया तिरिक्खा य, मणुया देवा य आहिया ॥१५५॥

पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के कहे हैं, यथा–नैरयिक, तिर्यच, मनुष्य और देव ॥१५५॥

नेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तसु भवे ।
रयणाभसक्कराभा, वालुयाभा य आहिया ॥१५६॥
पंकाभा धूमाभा, तमा तमतमा तहा ।
इइ नेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया * ॥१५७॥

रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और तमतमाप्रभा । इन सात पृथ्वियों में रहने वाले नैरियक जीव सात प्रकार के हैं ॥१५६–१५७॥

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे उ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥१५८॥

ये सभी नारक जीव, लोक के एक विभाग में रहते हैं । अब कालकी अपेक्षा इनके चार भेद कहता हूँ ॥१५८॥

---

* धम्मा वंसगा सिला, तहा अंजणरिट्ठगा ।
मघा माघवई चेव, णारया य वियाहिया ॥१॥
रयणाई गोत्तओ चेव, तहा धम्माइ णामओ ।
इइ णेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया ॥२॥

उपरोक्त गाथा में नरकों के नाम बतायें गये हैं । इन गाथाओं को दीपिकाकार ने उद्धृत की है ।

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१५६॥

प्रवाह की अपेक्षा नारक आदि अन्त रहित हैं और स्थिति की अपेक्षा आदि अन्त सहित हैं ॥१५६॥

सागरोवममेगं तु, उक्कोसेण वियाहिया।
पढमाइ जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥१६०॥

पहली नारकी में स्थिति ज० दस हजार वर्ष की और उ० एक सागरोपम की है ॥१६०॥

तिण्णेव सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
दुच्चाए जहन्नेणं, एगं तु सागरोवमं ॥१६१॥

दूसरी नरक में स्थिति ज० एक सागरोपम और उ० तीन सागरोपम की है ॥१६१॥

सत्तेव सागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
तइयाए जहन्नेणं, तिण्णेव सागरोवमा १६२॥

तीसरी नरक में आयु स्थिति ज० ३ सा० उ० ७ सा०।

दससागरोवमाऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
चउत्थीए जहन्नेणं, सत्तेव सागरोवमा ॥१६३॥

चौथी नरक में स्थिति ज० ७ सा० उ० १० सा० की।

सत्तरससागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
पंचमाए जहन्नेणं, दस चेव सागरोवमा ॥१६४॥

पांचवी नरक में ज० १० सा० उ० १७ सा० की।

बावीससागराऊ उक्कोसेण वियाहिया।
छट्ठीए जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥१६५॥

छठी नरक में ज० १७ सा० उ० २२ सा० की।

तेत्तीससागराऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
सत्तमाए जहन्नेणं, बावीसं सागरोवमा ॥१६६॥

सातवीं नरक में ज० २२ उ० ३३ सागरोपम की।

जा चेव आउठिई, नेरइयाणं वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे ॥१६७॥

नारक जीवों की जितनी आयु स्थिति है, उतनी ही जघन्य उत्कृष्ट काय स्थिति है ॥१६७॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए काए, नेरइयाणं तु अंतरं ॥१६८॥

नारक जीव, स्वकाय छोड़कर पुनः नारक हो, तो इसका अन्तर काल ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्तकाल का है।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१६९॥

इनके वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा हजारों भेद होते हैं ॥१६९॥

पंचिंदियतिरिक्खा उ, दुविहा ते वियाहिया ।
सम्मुच्छिमतिरिक्खा उ, गब्भवक्कंतिया तहा ॥१७०॥

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव, दो प्रकार के होते हैं,–१ सम्मूच्छिम और २ गर्भ से उत्पन्न होने वाले ॥१७०॥

दुविहा वि ते भवे तिविहा, जलयरा थलयरा तहा ।
नहयरा य बोधव्वा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१७१॥

इन दोनों प्रकार के तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों के तीन भेद हैं–जलचर, थलचर और नभचर । अब इनके भेदों को सुनो ।

मच्छा य कच्छभा य, गाहा य मगरा तहा ।
सुंसुमारा य बोधव्वा, पंचहा जलयरा हिया ॥१७२॥

मच्छ, कच्छ, ग्राह, मकर, और सुंसुमार ये पांच भेद जलचरों के हैं ॥१७२॥

लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥१७३॥

ये जीव, लोक के अमुक हिस्से में ही है–सर्वत्र नहीं । इनका काल विभाग चार प्रकार से है ॥१७३॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१७४॥

प्रवाह की अपेक्षा जलचर आदि अन्त रहित और स्थिति की अपेक्षा आदि अन्त

एगा य पुव्वकोडीओ, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई जलयराणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१७५॥

जलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों की आयु स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० एक करोड़ पूर्व की है ॥१७५॥

पुव्वकोडीपुहुत्तं तु, उक्कोसेण वियाहिया।
कायठिई जलयराणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१७६॥

जलचरों की कायस्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० दो से लगाकर नौ करोड़ पूर्व तक की होती है ॥१७६॥

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढम्मि सए काए, जलयराणं तु अंतरं ॥१७७॥

यदि जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय अन्यत्र जाकर पुनः स्व-काय में जन्मे, तो इसका अन्तर काल ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्त काल का होता है ॥१७७॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१७८॥

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा जलचरों के हजारों भेद होते हैं ॥१७८॥

चउप्पया य परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे।
चउप्पया चउव्विहा, ते मे कित्तयओ सुण ॥१७९॥

स्थलचर जीव दो प्रकार के हैं—१ चतुष्पाद और २ परि-सर्प। चतुष्पाद चार प्रकार के होते हैं। इनके भेदों को सुनो।

एगखुरा दुखुरा चेव, गंडीपय सणप्पया।
हयमाई गोणमाई, गयमाई सीहमाइणो ॥१८०॥

एक खुर वाले अश्वादि, दो खुर वाले गाय आदि, गंडीपद हाथी आदि और सनखपद सिंह आदि ॥१८०॥

भुओरगपरिसप्पा य, परिसप्पा दुविहा भवे।
गोहाई अहिमाई य, इक्केक्का णेगहा भवे ॥१८१॥

परिसर्प के दो भेद १ गोह आदि भुजपरिसर्प और २ सर्पादि उरपरिसर्प। इनके अनेक भेद हैं ॥१८१॥

लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वोच्छं चउव्विहं ॥१८२॥

ये जीव, लोक के देश भाग में ही हैं, सर्वत्र नहीं। काल की अपेक्षा इनके चार भेद कहता हूँ ॥१८२॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१८३॥

प्रवाह की अपेक्षा ये जीव अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त हैं ॥१८३॥

पलिओवमाइं तिन्नि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई थलयराणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१८४॥

स्थलचरों की आयु स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त, उ० तीन पल्योपम की है ॥१८४॥

पलिओवमाइं तिन्नि उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
पुव्वकोडिपुहुत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ।
कायठिई थलयराणं, अंतरं तेसिमं भवे ॥१८५॥

स्थलचरों की काय स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० तीन पल्योपम सहित दो से लगाकर नौकरोड़ पूर्व तक की कही गई।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, थलयराणं तु अंतरं ॥१८६॥

स्थलचरकाय में पुनः उत्पन्न होने का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है ॥१८६॥

चम्मे उ लोमपक्खी य, तइया समुग्गपक्खिया ।
वियपक्खी य बोधव्वा, पक्खिणो य चउव्विहा ।१८७।

चर्म पक्षी, रोमपक्षी, समुद्ग पक्षी और वितत पक्षी, इस प्रकार पक्षियों के चार भेद हैं ॥१८७॥

लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वोच्छं चउव्विहं ॥१८८॥

ये जीव, लोक के एक हिस्से में ही है, सर्वत्र नहीं। काल भेद से ये चार प्रकार के कहे गये हैं ॥१८८॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१८९॥

प्रवाह की अपेक्षा अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सादि सांत है ॥१८९॥

पलिओवमस्स भागो, असंखेज्जइमो भवे ।
आउठिई खहयराणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया १९०॥

इन खेचरों की आयु स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० पल्योपम के असंख्यात भाग प्रमाण हैं ॥१९०॥

असंखभागो पलियस्म, उक्कोसेण उ साहिया ।
पुव्वकोडिपुहुत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१९१॥
कायठिई खहयराणं, अंतरं तेसिमं भवे ।
अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ॥१९२॥

खेचर जीवों की कायस्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० पल्योपम के असंख्य भाग सहित दो से लगाकर नौ पूर्वकोटि की कही गई है। इनका अन्तर काल ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्त काल का है ॥१९१-१९२॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१९३॥

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रियों के हजारों भेद होते हैं ॥१९३॥

मणुया दुविह भेया उ, ते मे कित्तयओ सुण ।
सम्मुच्छिमा य मणुया, गब्भवक्कंतिया तहा ॥१९४॥

मनुष्य के संमूर्च्छिम और गर्भज, ऐसे दो भेद हैं।

गब्भवक्कंतिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया।
कम्मअकम्मभूमा य, अंतरद्दीवया तहा ॥१९५॥

गर्भोत्पन्न मनुष्यों के तीन प्रकार हैं—कर्मभूमिक, अकर्म भूमिक और अन्तरद्वीपक ॥१९५॥

पण्णरस-तीसविहा, भेया दुअट्ठवीसइं।
संखा उ कमसो तेसिं, इइ एसा वियाहिया ॥१९६॥

कर्मभूमि के १५, अकर्मभूमि के ३० और अन्तरद्वीप के मनुष्यों के ५६ भेद हैं ॥१९६॥

सम्मुच्छिमाण एसेव, भेओ होइ वियाहिओ।
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वेवि वियाहिया ॥१९७॥

गर्भज मनुष्यों के समान समूर्च्छिम मनुष्यों के भी भेद हैं। ये सभी मनुष्यलोक के एक देश में हैं ॥१९७

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१९८॥

मनुष्य, प्रवाहापेक्षा अनादि अनन्त और स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त हैं ॥१९८॥

पलिओवमाइं तिन्नि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई मणुयाणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥१९९॥

मनुष्यों की आयुस्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० तीन पल्योपम की है ॥१९९॥

पलिओवमाइं तिन्नि उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
पुव्वकोडिपुहुत्तेणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥२००॥

मनुष्यों की कायस्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० तीन पल्योपम सहित २ से ९ पूर्वकोटि की है ॥२००।

कायठिई मणुयाणं, अंतरं तेसिमं भवे ।
अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ॥२०१॥

मनुष्यों का उसी काय में पुनः उत्पन्न होने का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्त काल का होता है ॥२०१॥

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्सो ॥२०२॥

वर्ण, गंध; रस, स्पर्श, और संस्थान की अपेक्षा मनुष्यों के हजारों प्रकार हैं ॥२०२॥

देवा चउविहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण ।
भोमिज्ज वाणमंतर, जोइस वेमाणिया तहा ॥२०३॥

देवों के चार भेद हैं-भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ॥२०३॥

दसहा उ भवणवासी, अट्ठहा वणचारिणो ।
पंचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा ॥२०४॥

दस प्रकार के भवनपति, आठ प्रकार के व्यन्तर, पांच प्रकार के ज्योतिषी और दो प्रकार के वैमानिक देव हैं।

असुरा नाग सुवण्णा, विज्जू अग्गी य आहिया।
दीवोदही दिसा वाया, थणिया भवणवासिणो ॥२०५॥

असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युतकुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार–ये दस प्रकार के भवनपति देव हैं ॥२०५॥

पिसाय भूया जक्खा य, रक्खसा किन्नरा य किंपुरिसा।
महोरगा य गंधव्वा, अट्ठविहा वाणमंतरा ॥२०६॥

पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व–ये आठ प्रकार 'वाणव्यन्तर' देवों के हैं ॥२०६॥

चंदा सूरा य नक्खत्ता, गहा तारागणा तहा।
ठिया विचारिणो चेव, पंचहा जोइसालया ॥२०७॥

चन्द्र. सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और तारागण–ये पांच प्रकार के ज्योतिषी देव, मनुष्य लोक में चलते रहते हैं और मनुष्य लोक के बाहर स्थिर हैं ॥२०७॥

वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।
कप्पोवगा य बोधव्वा, कप्पाईया तहेव य ॥२०८॥

वैमानिक देवों के दो प्रकार हैं,–१ कल्पोत्पन्न और २ कल्पातीत ॥२०८॥

कप्पोवगा य बारसहा, सोहम्मिसाणगा तहा ।
सणंकुमारमाहिंदा, बंभलोगा य लंतगा ॥२०६॥

महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा ।
आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा ॥२१०॥

कल्पोत्पन्न वैमानिक देव बारह प्रकार के हैं, यथा—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ॥२०६–२१०॥

कप्पाइया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ।
गेविज्जाऽणुत्तरा चेव, गेविज्जा नवहा तहिं ॥२११॥

कल्पातीत देव दो प्रकार के कहे हैं,—ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी । ग्रैवेयक के नो प्रकार हैं ॥२११॥

हेट्ठिमा हेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमा मज्झिमा तहा ।
हेट्ठिमा उवरिमा चेव, मज्झिमा हेट्ठिमा तहा ॥२१२॥

मज्झिमा मज्झिमा चेव, मज्झिमा उवरिमा तहा ।
उवरिमा हेट्ठिमा चेव, उवरिमा मज्झिमा तहा ॥२१३॥

उवरिमा उवरिमा चेव, इइ गोविज्जगा सुरा ।

१ नीचे की त्रिक के नीचे के देवलोक २ नीचे की त्रिक के मध्य के देवलोक ३ नीचे की त्रिक के ऊपर के देवलोक ४ मध्य की त्रिक के नीचे के देवलोक ५ मध्य त्रिक के मध्य के देवलोक ६ मध्य त्रिक के ऊपर के देवलोक ७ ऊपर

की त्रिक के नीचे के देवलोक ८ ऊपर की त्रिक के मध्य के देवलोक और ९ ऊपर की त्रिक के ऊपर के देवलोक,—ये नौ भेद ग्रैवेयक देवों के हैं ॥२१२-२१३॥

विजया वेजयंता य, जयंता अपराजिया ॥२१४॥
सव्वट्ठसिद्धगा चेव, पंचहाणुत्तरा सुरा ।
इइ वेमाणिया एए, णेगहा एवमायओ ॥२१५॥

विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, और सर्वार्थसिद्ध,—ये पांच प्रकार अनुत्तरविमानवासी देवों के हैं । इस प्रकार वैमानिक देवों के अनेक प्रकार हैं ॥२१४-२१५॥

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वोच्छं चउव्विहं ॥२१६॥

ये सभी देव, लोक के एक भाग में रहते हैं । काल की अपेक्षा इन के चार भेद हैं ॥२१६॥

संतइं पप्प णाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥२१७॥

प्रवाह की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित और स्थिति की अपेक्षा सादि सपर्यवसित हैं ॥२१७॥

साहियं सागरं इक्कं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
भोमेज्जाण जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥२१८॥

भवनपतियों की स्थिति ज० दसहजार वर्ष और उ० कुछ अधिक एक सागरोपम की है ॥२१८॥

पलिओवममेगं तु उक्कोसेण ठिई भवे।
वंतराणं जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥२१६॥

व्यन्तरों की स्थिति ज० दसहजार वर्ष, उ० एक पल्योपम की है ॥२१६॥

पलिओवममेगं तु, वासलक्खेण साहियं।
पलिओवमऽट्ठभागो, जोइसेसु जहन्निया ॥२२०॥

ज्योतिषी देवों की स्थिति ज० पल्योपम के आठवें भाग और उ० लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है ॥२२०॥

दो चेव सागराइं, उक्कोसेण वियाहिया।
सोहम्मम्मि जहन्नेणं, एगं च पलिओवमं ॥२२१॥

सोधर्म देवों की स्थिति ज० एक पल्योपम की और उ० दो सागरोपम की है ॥२२१॥

सागरा साहिया दुन्नि, उक्कोसेण वियाहिया।
ईसाणम्मि जहन्नेणं, साहियं पलिओवमं ॥२२२॥

ईशान देवों की स्थिति ज० एक पल्योपम से कुछ अधिक और उ० दो सागरोपम से अधिक है ॥२२२॥

सागराणि य सत्तेव, उक्कोसेण ठिई भवे।
सणंकुमारे जहन्नेणं, दुन्नि ऊ सागरोवमा ॥२२३॥

सनत्कुमार देवों की स्थिति ज० दो सागरोपम, उ० सात सागरोपम की है ॥२२३॥

साहिया सागरा सत्त, उक्कोसेण ठिई भवे ।
माहिंदम्मि जहन्नेणं, साहिया दोन्नि सागरा ॥२२४॥

माहेन्द्र देवों की स्थिति ज० दो सागरोपम से अधिक और उ० सात सागरोपम से अधिक है ॥२२४॥

दस चेव सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
बंभलोए जहन्नेणं, सत्त उ सागरोवमा ॥२२५॥

ब्रह्मलोक के देवों की ज० ७ सा० उ० १० सा० ।

चउद्दस उ सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
लंतगम्मि जहन्नेणं, दस उ सागरोवमा ॥२२६॥

लान्तक देवों की ज० १० सा० उ० १४ सा० ।

सत्तरस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
महासुक्के जहन्नेणं, चउद्दस सागरोवमा ॥२२७॥

महाशुक्र देवों की ज० १४ सा० उ० १७ सा० ।

अट्ठारस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
सहस्सारे जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥२२८॥

सहस्रार देवों की ज० १७ सा० उ० १८ सा० ।

सागरा अउणवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
आणयम्मि जहन्नेणं, अट्ठारस सागरोवमा ॥२२९॥

आणत देवों की ज० १८ सा० उ० १९ सा० ।

वीसं तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
पाणयम्मि जहन्नेणं, सागरा अउणवीसई ॥२३०॥

प्राणत देवों की ज० १९ सा० उ० २० सा० ।

सागरा इक्कवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
आरणम्मि जहन्नेणं, वीसई सागरोवमा ॥२३१॥

आरण देवों की ज० २० सा० उ० २१ सा० ।

बावीसं सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
अच्चुयम्मि जहन्नेणं, सागरा इक्कवीसई ॥२३२॥

अच्युत देवों की ज० २१ सा० उ० २२ सा० ।

तेवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
पढमम्मि जहन्नेणं, बावीसं सागरोवमा ॥२३३॥

प्रथम ग्रैवेयक के देवलोक के देवों की स्थिति ज० २२ सागरोपम की और उ० २३ सागरोपम की है॥२३३॥

चउवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
बिइयम्मि जन्नेणं, तेवीसं सागरोवमा ॥२३४॥

दूसरे ग्रैवेयक के देवों की ज० २३ उ० २४ सा० ।

पणवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
तइयम्मि जहन्नेणं, चउवीसं सागरोवमा ॥२३५॥

तीसरे ग्रै० के देवों की ज० २४ उ० २५ सा० की ।

छव्वीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउत्थम्मि जहन्नेणं, सागरा पणवीसइ ॥२३६॥

चोथे ग्रै० के देवों की ज० २५ उ० २६ सा० की ।

सागरा सत्तवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
पंचमम्मि जहन्नेणं, सागरा उ छवीसई ॥२३७॥

पांचवे ग्रै० के देवों की ज० २६ उ० २७ सा० की ।

सागरा अट्ठवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
छट्ठम्मि जहन्नेण, सागरा सत्तवीसई ॥२३८॥

छठे ग्रै० के देवों की ज० २७ उ० २८ सागर की ।

सागरा अउणतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
सत्तमम्मि जहन्नेणं, सागरा अट्ठवीसई ॥२३९॥

सातवें ग्रै० के देवों की ज० २८ उ० २९ सागर की ।

तीसं तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
अट्ठमम्मि जहन्नेणं, सागरा अउणतीसइ ॥२४०॥

आठवें ग्रै० के देवों की ज० २९ उ० ३० सागर की ।

सागरा इक्कतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
नवमम्मि जहन्नेणं, तीसई सागरोवमा ॥२४१॥

नौवें ग्रै० के देवों की ज० ३० उ० ३१ सागर की ।

तेत्तीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउसुं पि विजयाईसु, जहन्ना एकतीसई ॥२४२॥

विजयादि चार अनुत्तर विमानों की स्थिति ज० ३१ उ० ३३ सागरोपम की है ॥२४२॥

अजहन्नमणुक्कोसं, तेत्तीसं सागरोवमा ।
महाविमाणसव्वट्ठे, ठिई एसा वियाहिया ॥२४३॥

सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देवों की स्थिति जघन्य और उत्कृष्टता से रहित मात्र तेंतीस सागरोपम की है ।

जा चेव उ आउठिई, देवाणं तु वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे ॥२४४॥

देवों की जो आयु स्थिति है, वही भव स्थिति है ।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, देवाणं हुज्ज अंतरं ॥२४५॥

पुनः देवकाय प्राप्त करने का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्तकाल का होता है ॥२४५॥

अणंतकालमुक्कोसं, वासपुहुत्तं जहन्नयं ।
आणयाईण देवाणं, गेविज्जाणं तु अंतरं २४६॥

आनत आदि देवों का अन्तर काल ज० दो से लगा कर नो वर्ष, और उ० अनन्तकाल का है ॥२४६॥

संखेज्ज सागरुक्कोसं, वासपुहुत्तं जहन्नयं ।
अणुत्तराणं देवाणं, अंतरेयं वियाहियं ॥२४७॥

अनुत्तर विमानवासी देवों का अन्तरकाल ज० दो से लगाकर नौ वर्ष, उ० संख्यात सागरोपम का होता है ।२४७।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥२४८॥

इन देवों के वर्ण, गंध, रस स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा हजारों प्रकार होते हैं ॥२४८॥

संसारत्था य सिद्धा य, इय जीवा वियाहिया ।
रूविणो चेव रूवी य, अजीवा दुविहावि य ॥२४६॥

इस प्रकार संसारस्थ और सिद्ध जीवों और रूपी तथा अरूपी ऐसे दो प्रकार के अजीवों का कथन किया गया ।

इय जीवमजीवे य, सोच्चा सद्दहिऊण य ।
सव्वनयाण अणुमए, रमेज्ज संजमे मुणी ॥२५०॥

मुनि इस प्रकार, जीव और अजीव का स्वरूप सुन कर तथा सभी नयों के अनुकूल श्रद्धान करके संयम में रमण करे ।

तओ बहूणि वासाणि, सामण्णमणुपालिया ।
इमेण कम्मजोगेण, अप्पाणं संलिहे मुणी ॥२५१॥

फिर बहुत वर्षों तक संयम का पालन करके इस क्रम के योग से मुनि अपनी आत्मा को कृश करे ॥२५१॥

बारसेव उ वासाइं, संलेहुक्कोसिया भवे ।
संवच्छरं मज्झिमिया, छम्मासा य जहन्निया ॥२५२॥

संलेखना जघन्य छः महीने की, मध्यम एक वर्ष की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की होती है ॥२५२॥

पढमे वासचउक्कम्मि, विगई निज्जूहणं करे।
विइए वासचउक्कम्मि, विचित्तं तु तवं चरे ॥२५३॥

प्रथम के चार वर्ष में विगय का त्याग करे और दूसरे चार वर्षों में विविध प्रकार का तप करे ॥२५३॥

एगंतरमायामं, कट्टु संवच्छरे दुवे।
तओ संवच्छरद्धं तु, नाइविगिट्ठं तवं चरे ॥२५४॥

आयम्बिल के पारणे से दो वर्ष तक एकान्तर तप करे फिर छः मास तक अति विकट तप नहीं करे ॥२५४॥

तओ संवच्छरद्धं तु, विगिट्ठं तु तवं चरे।
परिमियं चेव आयामं, तम्मि संवच्छरे करे ॥२५५॥

फिर छः मास तक विकट तप करे और पारणे में आयम्बिल तप करे ॥२५५॥

कोडीसहियमायामं, कट्टु संवच्छरे मुणी।
मासद्ध-मासिएणं तु, आहारेणं तवं चरे ॥२५६॥

एक वर्ष कोटी सहित तप करे और आयम्बिल से पारणा करे। फिर मास या अर्धमास तक आहार त्याग कर तपस्या करे ॥२५६॥

कंदप्पमाभिओगं च, किब्बिसियं मोहमासुरत्तं च।
एयाओ दुग्गईओ, मरणम्मि विराहिया हुंति ॥२५७॥

कन्दर्प, अभियोग, किल्विष, मोह, और आसुरी भावना, दुर्गति की हेतु है और मृत्यू समय में इन भावनाओं से जीव, विराधक हो जाते हैं ॥२५७॥

मिच्छादंसणरत्ता, सणियाणा हु हिंसगा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२५८॥

जो जीव, मिथ्यादर्शन में रक्त, हिंसक तथा निदान युक्त करणी करने वाले हैं, वे इन भावनाओं में मरकर दुर्लभ बोधि होते हैं ॥२५८॥

सम्मदंसणरत्ता, अणियाणा सुक्कलेसमोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं सुलहा भवे बोही ॥२५९॥

जो जीव, सम्यग्-दर्शन में अनुरक्त, अति शुक्ल लेश्या वाले और निदान रहित क्रिया करने वाले हैं, वे इस भावना में मरकर परलोक में सुलभ-बोधि होते हैं ॥२५९॥

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२६०॥

मिथ्यादर्शन में रक्त, निदान युक्त करणी करने वाले और गाढ़ कृष्ण लेश्यावाले जीव मरकर दुर्लभ-बोधि होते हैं।

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेण ।
अमला असंकिलिट्ठा, ते हुंति परित्तसंसारी ॥२६१॥

जो श्री जिन वचनों में अनुरक्त होकर जिनवचनानुसार

भाव-पूर्वक अनुष्ठान करते हैं, वे मिथ्यात्वादि मल और क्लेशों से रहित होकर, संसार को परिमित कर देते हैं ॥२६१॥

बालमरणाणि बहुसो, अकाममरणाणि चेव बहुयाणि ।
मरिहंति ते वराया, जिणवयणं जे न जाणंति ॥२६२॥

जो जीव, जिन वचनों को नहीं जानते, वे बहुत बार बाल-मरण और अकाममरण को प्राप्त होते हैं ॥२६२॥

बहुआगमविन्नाणा, समाहिउप्पायगा य गुणगाही ।
एएणं कारणेणं, अरिहा आलोयणं सोउं ॥२६३॥

जो जीव बहुत से आगमों के ज्ञाता, समाधि के उत्पन्न करने वाले और गुणग्राही हैं, वे इन कारणों से आलोचना सुनने के योग्य होते हैं ॥२६३॥

कंदप्प-कुक्कुयाइं तह, सील-सहाव-हास-विगहाहिं ।
विम्हावेंति य परं, कंदप्पं भावणं कुणइ ॥२६४॥

जो कन्दर्प, मुखविकारादि हँसी और विकथा से दूसरों को विस्मित करते हैं, वे कन्दर्प भावना का आचरण करते हैं।

मंताजोगं काउं, भूईकम्मं च जे पउंजंति ।
साय रस इड्ढिहेउं, अभिओगं भावणं कुणइ ॥२६५॥

जो जीव, साता, रस और ऋद्धि के लिये मन्त्र और भूतिकर्म करते हैं, वे अभियोगी भावना करते हैं ॥२६५॥

णाणस्स केवलीणं, धम्मायरियस्स संघसाहूणं।
माई अवण्णवाई, किब्बिसियं भावणं कुणइ ॥२६६॥

ज्ञान, केवलज्ञानी, धर्माचार्य, संघ और साधुओं की निन्दा करनेवाला, मायावी जीव, किल्विषी भावना उत्पन्न करता है।

अणुबद्धरोसपसरो, तह य निमित्तम्मि होइ पडिसेवी।
एएहिं कारणेहिं, आसुरियं भावणं कुणइ ॥२६७॥

निरन्तर रोष बढ़ाने वाला और त्रिकाल निमित्त का सेवन करने वाला, इन कारणों से आसुरी भावना उत्पन्न करता है।

सत्थग्गहणं विसभक्खणं च, जलणं च जलप्पवेसो य।
अणायारभंडसेवी, जम्मणमरणाणि बंधंति ॥२६८॥

शस्त्र मारकर, विष-भक्षण कर, अग्नि में जलकर और पानी में डूब कर तथा आचार भ्रष्टता आदि से जो जीव मरता है, वह जन्म मरण बढ़ाता है ॥२६८॥

इइ पाउकरे बुद्धे, णायए परिणिव्वुए।
छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धियसम्मए ॥२६९॥ त्ति बेमि॥

भवसिद्धक जीवों के सम्मत ऐसे उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन को प्रकट करके भ० श्री महावीर प्रभु, निर्वाण को प्राप्त हुए ॥२६९॥

* छत्तीसवाँ अध्ययन समाप्त *

श्री उत्तराध्ययन सूत्र सम्पूर्ण

वीरथुई



पुच्छिस्सु णं समणा माहणा य, अगारिणो या परतित्थिआ य ।
से केई णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥१॥

"मुझसे श्रमण, ब्राह्मण, गृहस्थ और अन्यमतावलम्बी जन पूछते हैं कि इस संसार से तिरानेवाला एकान्त हितकारी और अनुपम धर्म किसने कहा है ? इस प्रकार श्री जम्बूस्वामीजी ने आर्य सुधर्म गणधर से पूछा ॥१॥

कहं च णाणं कहं दंसणं से, सीलं कहं णायसुयस्स आसी ।
जाणासि णं भिक्खु ! जहातहेणं, अहासुयं बूहि जहा णिसंतं ।२।

उन भ० महावीर स्वामी का ज्ञान दर्शन कैसा था ? उनका आचार कैसा था ? हे भगवन् ! आप इस विषय में यथातथ्य जानते हैं और सुना भी है, सो कृपा करके फरमाइये ।

खेयन्नए से कुसले महेसी, अणंतणाणी य अणंतदंसी ।
जसंसिणो चक्खुपहे ठियस्स, जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ।३।

हे जम्बू ! भ० महावीर स्वामी संसारी जीवों के दुःखों को जानने में कुशल थे । वे महायशस्वी भगवान्, अनन्त ज्ञानी अनन्त दर्शी और महान् ऋषि थे । उनको अर्हन्त दशा में सूक्ष्म पदार्थ भी आँखों के समान देखनेवाले जानो और उनके धर्म तथा संयम की दृढ़ता को विचारो ॥३॥

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने, दीवेव धम्मं समियं उदाहु ।४।

उन केवलज्ञानी भगवान् नें ऊँची, नीची और तिरछी दिशा में जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनको नित्य और अनित्य रूप से जानकर, उनके आधार के लिये धर्मरूपी द्वीप का सम्यग् रूप से प्रतिपादन किया ॥४॥

से सव्वदंसी अभिभूय णाणी, णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्व-जगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ।५।

वे सर्वदर्शी भगवान् अप्रतिहत केवलज्ञानवाले और निर्दोष चारित्रवाले थे । वे परम धीर प्रभु, अपनी आत्मा में स्थिर, परिग्रह से रहित, निर्भय, आयु रहित और समस्त पदार्थों के उत्कृष्ट ज्ञाता थे ॥५॥

से भूइपण्णे अणिए अचारी, ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सूरिए वा, वइरोयणिंदे व तमं पगासे ॥६॥

वे महान् बुद्धिमान् प्रभु, अप्रतिबद्ध विहारी, संसार समुद्र से तिरने वाले, परम धीर और अनन्त ज्ञानवान् थे । वे सूर्य एवं वैरोचन अग्नि की तरह अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करके ज्ञान का प्रकाश करनेवाले थे ॥६॥

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, णेया मुणी कासव आसुपन्ने ।
इंदे व देवाण महाणुभावे, सहस्स णेता दिविणं विसिट्ठे ।७।

जिस प्रकार हजारों देवों में इन्द्र, रूप गुण और ऐश्वर्य में प्रधान होता है, उसी प्रकार काश्यप गोत्री भ० महावीर स्वामी, जिनेश्वरों के धर्म के सर्वोत्तम नेता थे ॥७॥

से पन्नया अक्खयसागरे वा, महोदही वावि अणंतपारे ।
अणाइले वा अकसाइ मुक्के, सक्के व देवाहिवई जुईमं ॥८॥

जिसका पार नहीं पा सके ऐसे स्वयंभूरमण महासमुद्र के शुद्ध एवं अक्षय जल की भांति भगवान् की प्रज्ञा विशुद्ध और अनन्त थी। वे कषायों से रहित, कर्मो से मुक्त तथा देवाधिपति शक्रेन्द्र की तरह दीप्तिमान् थे ॥८॥

से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए, सुदंसणे वा णगसव्वसेट्ठे ।
सुरालए वासि मुदागरे से, विरायए णेगगुणोववेए ॥९॥

जिस प्रकार सब पर्वतों में सुदर्शन पर्वत श्रेष्ठ एवं देवों को हर्ष उत्पन्न करनेवाला है, उसी प्रकार भगवान् अपने परिपूर्ण सामर्थ्य से, सब जीवों में श्रेष्ठ और सब को हर्ष उत्पन्न करने वाले थे ॥९॥

सयं सहस्साण उ जोयणाणं, तिकंडगे पंडगवेजयंते ।
से जोयणे णवणवति सहस्से, उद्धुस्सितो हेट्ठ सहस्समेगं ।१०।

सुमेरु पर्वत एक लाख योजन का है। उसके तीन भाग हैं। पाण्डुक वन उसकी ध्वजा रूप है। वह एक हजार योजन पृथ्वी में नीचे और निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है ॥१०॥

पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्ठिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयति ।
से हेमवन्ने बहुणंदणे य, जंसी रइं वेदयंति महिंदा ॥११॥

वह पर्वतराज, भूमि पर स्थित होकर आकाश को स्पर्श कर रहा है। सूर्य जिसकी प्रदक्षिणा करते हैं। जो सोने के समान कान्ति वाला है, जिस पर बहुत से (चार) नन्दन वन हैं, तथा देवेन्द्र वहां आकर रति सुख का अनुभव करते हैं।

से पव्वए सद्दमहप्पगासे, विरायई कंचणमट्ठवन्ने ।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, गिरिवरे से जलिए व भोमे।१२।

वह पर्वत, शब्दों से गुंजायमान् है। सोने के वर्ण से सुशोभित हो रहा है। वह सब पर्वतों में श्रेष्ठ होकर पर्वत मेखलादि के कारण दुर्गम है और भूमिपर दीपायमान हो रहा है।

महीइ मज्झम्मि ठिए णगिंदे, पन्नायते सूरिय सुद्धलेसे ।
एवं सिरीए उ स भूरिवण्णे, मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ।१३।

पृथ्वी के मध्य में रहा हुआ वह पर्वतेन्द्र, सूर्य के जैसा शुद्ध तेजोवन्त, अनेक प्रकार की लक्ष्मी युक्त और अनेक रत्नों से सुशोभित होकर सूर्य की तरह दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ लोक में प्रसिद्ध है ॥१३॥

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसणनाणसीले ॥१४॥

जिस प्रकार महान्, सुदर्शन पर्वत का यश कहा गया

है, उसी प्रकार—इन उपमाओं से श्रमण ज्ञातपुत्र भी जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील में सबसे उत्तम थे ॥१४॥

गिरिवरे वा निसहाऽऽययाणं, रुयए व सेट्ठे वलयायताणं।
तओवमे से जगभूइपन्ने, मुणीण मज्झे तमुदाहु पन्ने।१५।

जैसे लम्बे पर्वतों में निषध और गोल पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ है, वैसे ही भ० महावीर भी संसार में प्रभूत प्रज्ञा-वाले हैं। बुद्धिमानों ने उन्हें सभी मुनियों के मध्य में उत्कृष्ट कहा है ॥१५॥

अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता, अणुत्तरं झाणवरं झियाइ।
सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं, संखिंदुएगंतवदातसुक्कं ॥१६॥

भगवान् ने ऐसे ही धर्म का उपदेश किया जो समस्त धर्मों से श्रेष्ठ है। उन्होंने प्रधान शुक्लध्यान ध्याया, जो अर्जुन सोने, जल फेन, शंख और चन्द्रमा की तरह स्वच्छ है ॥१६॥

अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गते साइमणंत पत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण ॥१७॥

वे महर्षि, ज्ञान दर्शन और चारित्र से समस्त कर्मों को क्षय करके, सर्वोच्च लोकाग्र में स्थित होकर, सर्वोत्तम सादि अनन्त सिद्धि को प्राप्त हुए ॥१७

रुक्खेसु णाए जह सामली वा, जस्सिं रतिं वेदयंती सुवन्ना।
वणेसु वा नंदणमाहु सेट्ठं, नाणेण सीलेण य भूइपन्ने।१८।

जिस प्रकार वृक्षों में शालमली वृक्ष और वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ समझा जाता है, जिस पर सुवर्णकुमार देव, रति क्रीड़ा का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार भगवान् ज्ञान और चारित्र से श्रेष्ठ तथा अत्यन्त ज्ञानी कहे जाते हैं ॥१८॥

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चंदो व ताराण महाणुभावे ।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ॥१९॥

जिस प्रकार शब्दों में मेघ की गर्जना प्रधान है, तारागणों में चन्द्रमा मनोहर है और सुगन्धित पदार्थों में चन्दन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त मुनियों में, समस्त वासनाओं से रहित भगवान् श्रेष्ठ थे ॥१९॥

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे, नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणि वेजयंते ॥२०॥

जैसे समुद्रों में स्वयंभूरमण, नागकुमारों में धरणेन्द्र और रसों में इक्षुरस श्रेष्ठ है, वैसे ही तपस्वियों में भगवान् श्रेष्ठ थे ॥२०॥

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादी णिह णायपुत्ते ॥

हाथियों म ऐरावत, मृगों में सिंह, नदियों में गंगा और पक्षियों में वेणुदेव–गरुड़–प्रधान है, उसी प्रकार समस्त निर्वाण (मोक्ष) वादियों में भगवान् महावीर श्रेष्ठ थे ॥२१॥

जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥२२॥

योद्धाओं में चक्रवर्ती, पुष्पों में अरविंद कमल और क्षत्रियों में दन्तवाक्य–चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, उसी तरह समस्त ऋषियों में भगवान् वर्द्धमान श्रेष्ठ थे ॥२२॥

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ।
तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥२३॥

जिस प्रकार दानों में अभयदान, सत्य में निर्वद्य भाषा और तपस्याओं में ब्रह्मचर्य उत्तम कहा जाता है, उसी प्रकार श्रमण ज्ञातपुत्र प्रभु, समस्त लोक में उत्तम थे ॥२३॥

ठिईणं सेट्ठा लवसत्तमा वा, सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा ।
निव्वाण सेट्ठा जह सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि नाणी ॥

आयु में अनुत्तर विमान के देव, सभाओं में इन्द्र की सुधर्म सभा, और सब धर्मों में निर्वाण–मोक्ष धर्म श्रेष्ठ है, किन्तु भगवान् महावीर से उत्तम ज्ञानी तो कोई नहीं है ।

पुढोवमे धुणइ विगयगेही, न संणिहिं कुव्वइ आसुपन्ने ।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं, अभयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥

भ० महावीर, पृथ्वी के समान धीर एवं सहनशील थे, उन्होंने सब कर्मों को दूर कर दिये थे । वे द्रव्यादि का संचय नहीं करते थे । वे अनन्त ज्ञानी, समस्त जीवों को अभय देने वाले होकर संसाररूप महासमुद्र को तिर गये हैं ॥२५॥

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा ।
एआणि वंता अरहा महेसी, ण कुव्वई पाव ण कारवेइ ॥

भगवान् क्रोध, मान, माया और लोभरूप आत्मिक दोषों को त्याग कर अर्हन्त महर्षि हुए । उन्होंने न तो स्वयं पाप किया, न दूसरों से ही पाप करवाया ॥२६॥

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं ।
से सव्ववायं इति वेयइत्ता, उवट्ठिए संजम दीहरायं ॥२७॥

भगवान् क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञान वाद के पक्षों को जानकर तथा समस्त वादों के पक्ष को सम्यक् प्रकार से समझकर जीवन पर्यन्त संयम में सावधान रहे ।

से वारिया इत्थि सराइभत्तं, उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए ।
लोगं विदित्ता आरं परं च, सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ।२८।

भगवान् ने समस्त दुःखों को क्षय करने के लिये स्त्री सम्भोग तथा रात्रि भोजन आदि पापों को त्याग दिया और इस लोक तथा परलोक को जानकर सब का त्याग करके घोर तपस्वी हुए ॥२८॥

सोच्चा य धम्मं अरहंतभासियं, समाहियं अट्ठपदोवसुद्धं ।
तं सद्दहाणा य जणा अणाऊ, इंदा व देवाहिव आगमिस्संति ॥
॥२९॥ त्ति बेमि ॥

जो मनुष्य, अर्हन्त भगवान् द्वारा कहे हुए अर्थ और

पदों से शुद्ध ऐसे धर्म को सुनकर, सम्यक् प्रकार से श्रद्धान करते हैं, वे आयु और कर्म से रहित होकर सिद्ध होते हैं अथवा इन्द्रादि देव होते हैं और भविष्य में भी होंगे। ऐसा मैं कहता हूँ ॥२९॥

॥ वीरस्तुति समाप्त ॥

सिद्धाणं बुद्धाणं पारगयाणं, परंपरगयाणं।
लोअग्ग मुवगयाणं, नमो सया सव्वसिद्धाणं ।१।

जो देवाणविदेवो, जं देवा पंजली नमंसंति।
तं देवदेवमहिअं, सिरसा वंदे महावीरं ॥२॥

इक्कोवि नमुक्कारो, जिणवर वसहस्स वद्धमाणस्स।
संसार सागराउ, तारेइ नरं व नारिं वा ॥३॥

॥ तित्थयरा मे पसीयंतु ॥



सं० रक्षक संघ के प्रकाशन—

१. श्री सूयगडांग सूत्र मूल पाठ भावार्थ सहित,	मू० १) रु०	अप्राप्य
२. श्री दशवैकालिक सूत्र	मूल्य ०—५०	"
३. श्री अंतगड़दसा ,,	,, ०—५०	"
४. श्री उत्तराध्ययन सूत्र मूल और हिन्दी भावार्थ युक्त	मूल्य २—००	
५. श्री सुखविपाक ,, ,,	,, ०—२०	
६. श्री नन्दी सूत्र ,, ,,	,, १—००	
७. श्री मोक्ष मार्ग	,, ५—००	
८. स्त्री प्रधान धर्म	,, ०—२५	
९. सामायिक सूत्र	,, ०—०६	
१०. प्रतिक्रमण सूत्र	,, ०—१७	
११. आत्म साधना संग्रह	,, १—२५	
१२. उववाई सूत्र	छप रहा है।	

